शोध ग्रंथ

डॉ रेवतीसिह यादव – कवि पद्माकर आलोचनात्मक अध्ययन
(आगरा विश्व विद्यालय) १९५९

डॉ ब्रजनारायण सिह – पद्माकर और उनके समसामयिक कवि
(लखनऊ विश्वविद्यालय) १९५९

डॉ भारतेंदु सिन्हा – पद्माकर का काव्य
(नागपुर विश्वविद्यालय) १९६७

शोध कार्य

अलकार साहित्य: भामह से पद्माकर तक – (मगध विश्वविद्यालय)
पद्माकर के काव्यग्रन्थो का मूल्याकन सौ सुषमा शर्मा
(मराठवाडा विश्व विद्यालय)

प्रकाशित ग्रंथ

१ पद्माकर ग्रथावली आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
काशी नागरी प्रचारिणी सभा
२ पद्माकर की काव्य साधना अखौरी गगाप्रसाद सिह, साहित्य सेवासदन, काशी
३ पद्माकर कवि- श्री शुकदेव दुबे साहित्यभवन, प्रयाग
४ पद्माकर व्यक्ति, काव्य और युग –श्री उमाशकर शुक्ल,
५ कवि पद्माकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अभिनव साहित्य प्रकाशन सागर
६ पद्माकर–श्री डॉ भालचन्द्रराव तेलग, सुषमानिकुज, बेगमपुरा औरगाबाद

पद्माकर-श्री

'पद्माकर पद्मानिलय काव्यकलाकुशलेश'

— विद्याधर

डॉ. भालचन्द्रराव तैलंग

प्रकाशक पद्माकर अनुसधान शाला
सुषमा–निकुज
बेगमपुरा
औरगाबाद (महाराष्ट्र)

प्रथम संस्करण

\+ + +

गाधी जन्म दिवस
शताब्दी सन् १९६९ ई.
सवत २०२६ वि.
शके १८९१ प्रायः

मुद्रक जयहिंद प्रिंटिग प्रेस,
सन्मित्र कॉलनी
औरगाबाद (महाराष्ट्र)

रस-रीति ग्रन्थो के प्रणेता

डॉ. नगेन्द्र

के

कर—कमलो मे

पद्माकर-श्री

समर्पित

है

—भालचन्द्रराव तेलंग

'पद्माकर रससिद्ध कवीश्वर रसरत्नाकर।
तैलग भट्ट सुभट्ट काव्य–आचार्य गुनाकर ॥
पाय मान सन्मान राजदरबारनि भारी ।
भयो आप ही आप महाकवि–पद–अधिकारी ॥

\+ \+ \+ \+

'जगद्विनोद' लिखि काव्यकला कौशल दरसायो ।
'रामरसायन' विरचि-भक्ति-अमरित बरसायो ॥
अनुप्रास जमकादि कथन मे सबतें आगे ।
साँचहु याने पद्यमाधुरी मधु मे पागे ॥

–वियोगी हरि

परिधा....

कविराज पद्माकर की शतवर्षी—श्रद्धाजलि की सूचना 'माधुरी' ने अपने सवत् १९८६ के विशेषाक मे साढे तीन वर्ष पूर्व दी थी। काशी नागरी प्रचारिणी सभाने अपने दिनांक २९ भाद्रपद सवत् १९९० के सख्या ९८०।४१ के पत्र मे शतवर्षीया श्राद्धतिथि के अवसर पर एक उत्सव करने का विचार किया, किन्तु किन्ही कारणो से वह सम्पन्न न हो सका। मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ब्यौहार राजेन्द्रसिंह की अध्यक्षता में हुए सन् १९३९ के रायपुर-अधिवेशन के प्रस्ताव न ५ के आदेशानुसार 'पद्माकर-अनुसधान शाला' की स्थापना तथा उसके सयोजन का कार्यभार मेरे ऊपर रख दियागया। सन् १९-४२ के सागर-अधिवेशन ने इस ओर और भी अधिक ध्यान आकर्षित कराया था, जैसा कि प. पद्मनाभ जी. की तत्कालीन प्रकाशित सूचनाओ से पता चलता है। प ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी ने दिनाक १५ फरवरी सन १९४२ के लोकमत (नागपुर) मे पद्माकर—स्मारक का विशेष उल्लेख किया था।

सागर-विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री गणेश प्रसादभट्ट की स्वीकृति पर हिंदी विभाग ने आचार्य प. नन्ददुलारे वाजपेयी की अध्यक्षता मे सन् १९६४ मे पद्माकर जयन्ती का समारोह तथा दिनाक १६, १७ फरवरी के दिन पद्माकर— विचार गोष्ठी का आयोजन किया था जिसमे आचार्य विश्व—नाथ प्रसाद मिश्र, डॉ रामलालसिह, डॉ राममूर्ति त्रिपाठी आदि विद्वानो के शोधपूर्ण तथा समीक्षात्मक निबंध पढे गये, जो यहा साभार सकलित है।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मासिक विवरणिका अक-६ मार्च ६६ की सूचना के अनुसार समाचार मिला कि 'सागर मे चकराघाट पर कविवर पद्माकर की आदमकद मूर्त्ति की स्थापना नगरपालिका -अध्यक्ष सेठ डालचदजी की अध्यक्षता मे सेठ चिन्तामणराव गोदियावालो के द्वारा करतल-ध्वनि के मध्य सम्पन्न हुई। इस अवसर पर सेठ चितामणराव, श्री जयनारायण दुबे, सम्पादक 'आगामी कल' तथा नगर के वयोवृद्ध साहित्यिक (अब स्वर्गीय) श्री लोकनाथ सिलाकारी ने श्री पद्माकर की जीवनी पर प्रकाश डाला'। सागर की 'पद्माकर न पा उच्चमाध्यमिक शाला' उसी का स्मारक है तथा 'पद्म-पराग' उसी की नियतकालिक पत्रिका है।

कविवर पद्माकर के पूर्वजो की 'सप्तगोदावरम् से नार्मदकोटि तीर्थ' की यात्रा और वास्तव्य के भौगोलिक और ऐतिहासिक सदर्भो से आरभ कर यह वशपरम्परा आजतक के उनके वशजो का परिचय प्रस्तुत करती है। हिन्दी साहित्येतिहासो मे साहित्यकारोने अपने प्रस्तावित युग (सन् १८६३-१९१२) तथा निर्माण युग (सन् १९१३-१९२५) मे जिन पूर्वाग्रहो, समकालीन नाम-भ्रमो, द्विविधात्मक प्रकरणो, निराधार कल्पनाओ सदेहात्मक स्थलो का उल्लेख मिला है, उनका सप्रमाण खडन करने का आयास भी यहा उल्लेखनीय है। प्राप्त और प्रसारित विपरीतियो, भ्रान्तियो, अशुद्धियो का निरसन युगेतिहास के इतिहास पक्ष को तथा काल क्रमानुसार विकास पक्ष को समझने के हेतु यह रचना उपादेय सिद्ध होगी। कवि पद्मा-कर की काव्यकृतियाँ यद्यपि ऐतिहासिक कालक्रमानुसार सकलित की गई है, परतु इसमे उनके साहित्य का व्यावहारिक पक्ष अधिक स्पष्ट होता है, जहाँ रचनाकार और कृति का प्रवृत्ति-बोध उभरा है और युगीन प्रवृत्तियो के साथ उनके साहित्यबोध का निर्वर्तन अधिक निखरा है। इस प्रकार दाक्षि-णात्य विबुधो के धार्मिक अनुष्ठानो से काव्य-निर्माण के प्रतिष्ठानो तक का यह युगीन इतिहास अपना सास्कृतिक महत्त्व प्रतिष्ठापित करता है।

सम्प्रति हिन्दीविभागाध्यक्ष आचार्य प भगीरथ मिश्रजी का 'पद्माकर की काव्यमाधुरी' का रसनिष्यन्द भी भुलाया नही जा सका। माधुरी-सम्पादक प. मातादीन शुक्ल की गुणदोष भावापहरणवाली आलोचना की प्राचीन शैली को ताजा कर लेने के लोभ का भी सवरण नही किया जा सका। पद्माकर के कवित्त-सवैयो की पाठ करने की उनकी वह सुरस स्वर लहरी, काश! आज सुनने को मिलती ? प. आशुकरण गोस्वामीजी

विषय-सूची

१ महाकवि पद्माकर की वंशपरम्परा — पृष्ठ १-२८

२. महाकवि पद्माकर का जीवनवृत्त — पृष्ठ २९-१०२

३. कवि पद्माकर के वंशज पृष्ठ १०३–११४

वंश-परम्परा

सप्तगोदावर से नार्मदकोटितीर्थ

"वर्षे बाणरसारसेन्दुमिलिते श्रीमद्गढापत्तने
रम्ये नार्मदकोटितीर्थकलिते* दुर्गावती पालिते ।
मूगीपट्टनतोऽथवा मधुपुरी श्रीरंगकालेश्वरात्
संयाता किल दाक्षिणात्य विबुधा सार्ध शत सप्त च ।"

— वंशोपाख्यानम् ।

संस्कृत का यह श्लोक संकेत करता है कि संवत् १६१५ [बाण-५, रसा-१, रस-६, इंदु-१] में रानी दुर्गावती के शासनकाल में उनके राज्य-पालित रम्य नर्मदातटानुवर्त्ती गढापत्तन में ७५०[1] किंवा १५७[2] दाक्षिणात्य विबुधों का यह समुदाय मूगीपट्टन, मदुराई तथा श्रीरंगकालेश्वर आदि दक्षिण के स्थानों से तीर्थ-यात्रा करता हुआ आया । दाक्षिणात्य विबुधों के आगमन के ये भौगोलिक और ऐतिहासिक संकेत उल्लेखनीय हैं । महाकवि पद्माकर के पूर्वजों के आगमन के संकेतार्थ एक यह प्रमाण भी मिला है ।

दोहा

"विदित भट्ट मथुरास्थ बुध अत्रि सुरिषि तैलिंग
श्री मधुकर श्रीकृष्णपद पंकज मानस भृंग* ॥१॥
श्री रानी दुर्गावती सुगढ़ामंडलाधीस
धर्मनीति पालत प्रजा भक्ति सहित जगदीस ॥२॥
सोरह सै १६८२ व्यासी सरत जग्य माहि बुलवाय
श्री मधुकर गुरु मानि कै पूजे तिनके पाय ॥३॥

---

* पाठान्तर 'मिलिते' पद्माकर पं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रस्तावना, पृ ४१ ।

१ पं नकछेदी तिवारी [अजान], डा हीरालाल सागर सरोज, पृ ५८ तथा लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुरविरुदावली भूमिका पृ १ ।

२ पं विश्वनाथप्रसाद मिश्र पद्माकर प्रस्तावना पृ ४१ ।

* पाठान्तर 'पंकज सुमन सुरंग'

श्री पद्माकर पद्म पद, हृदय पद्म धरि ध्यान । कंमरसभा विनोद यह रचत ग्रंथ बुधवान ।
उनइसमैं चौतीस सुदि, कातिक तीज प्रमोद । सुकवि गदाधर ग्रंथ किय केसरसभाविनोद ॥
केसरसभाविनोद — कवि वंशावलि वर्णनम् तृतीयोल्लास पद्य १-३ ।

इस पद्य के अनुसार महाकवि पद्माकर के पूर्वज मधुकर भट्ट थे, जिन्हे गढामडला की महारानी दुर्गावती ने १६८२ मे यज्ञ मे बुलवाया और उनके पैर पूजकर उन्हे अपना गुरु माना। रानी दुर्गावती का राज्यकाल सवत् १६०६ से १६२१ तक[1] रहा है। अत यहाँ स० १६८२ गलत है। हो सकता है कि सवा तीन सौ सालो का व्यवधान होने के कारण वह सवत् चूक गया हो या आगमन के सवत् के उपरान्त की किसी घटना विशेष को सूचित करने के लिए यह अन्तर डाल दिया गया हो, पर इतना स्पष्ट है कि यह विबुध परिवार अपने यज्ञ और कर्मकाडकर्ता होने के कारण रानी दुर्गावती के द्वारा सम्मानित और पूजित हुआ था। इस आगमन की एक और घटना भी सुनी जाती है – विक्रम सवत् १६१५ के भाद्रपद मास मे इन पूर्वजो ने जब नार्मदतीर्थ मे गढामडला के पास मुकाम किया, तब यज्ञ के निमित्त अग्नि प्राप्त करने के लिए ये याज्ञिक जहाँ जहाँ सुनार, लुहार के यहाँ अग्नि देखते तो कहते 'अय्या! निप्पु कावाले ईपडा' पर न कोई इसका अर्थ समझता न कोई इन्हे यज्ञार्थ अग्नि देता। दैवात्, गढामडला नगर मे अग्नि की ज्वाला ही नष्ट हो गई। नगरनिवासी रानी दुर्गावती के पास पहुँचे। राज्य के दैवज्ञो के द्वारा ज्योही कारण ज्ञात हुआ तो रानी दुर्गावती ने अमात्यो द्वारा राजताल से इन्हे यज्ञार्थ बुलवाया और क्षमा माँगकर इन्हे अपना गुरु माना। यज्ञ होते ही नगर मे अग्नि के दर्शन हुए। इनके आगमन का दूसरा प्रमाण पद्माकर के वशवृक्ष विषयक वह कविता है[2] जिसे उनके पौत्र विद्याधर ने बनाई है –

छप्पय

मधुकर मधुकर सरिस सकल विद्यारस नायक,
वेदशास्त्र पौराण वैद्य ज्योतिष गुणगायक।
मीमांसिक मत कर्मकाण्डकर्ता यज्ञादिक,
दान धर्म मतिवत राजराजेन्द्र प्रमाणिक॥
पूजित सकल नरेन्द्रकुल दाक्षिणात्य तैलंगद्विज।
आत्रेय गोत्र पचद्रविड मथुरास्थिति हित गमन वृज॥

दोहा

"सवत् चन्द्रकला शतक तिथि बढि विक्रम जांन।
कियो वास तट नर्मदा, दुर्गावती निधान।"

चन्द्रकला शतक अर्थात् १६०० में तिथि [१५] बढा देने से १६१५ बनता है और 'विक्रम जान' से तात्पर्य है कि यह स० १६१५ विक्रमीय है, जब महाकवि पद्माकर के पूर्वज मधुकर भट्ट दक्षिण से रानी दुर्गावती के निधान नार्मदतीर्थ मे आकर निवास करने लगे। 'मथुरास्थिति हित, गमन वृज' से यह भी स्पष्ट है कि व्रजयात्रा के हेतु मथुरा में इन्होने स्थिति की थी। अत इस परिवार का 'मथुरास्थायि' अथवा 'मथुरास्थ'[1] लिखा जाना उचित है। 'सागर गजेटियर' में इस परिवार को 'गोकुलस्थ'[2] के नाम से अभिहित किया गया है। 'गोकुलस्थ' तथा 'मथुरास्थ' केवल स्थितिसूचक नाम है, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट होता है –

विदित वेदविद्या जहाँ दक्षिण दिशा पुनीत।
तहाँ बसत तैलंगकुल भट्ट परम युत प्रीत॥
ते मथुरामंडल विषै गोकुल में सुख दान।
'गोकुलस्थ', 'मथुरास्थ' यह पदवी पाइ सुजान॥[3]

श्रीमद्वल्लभाचार्य के कुल[4] से सबंधित होने के कारण ये लोग वेल्लनाटीय[5] शब्द से भी अभिज्ञात होते है। अत पद्माकर कवि के पूर्वज गोदावरीतीरस्थ सप्तगोदावर राजमहेन्द्रदागीर उडेवारु वेल्लनाटीय तैलग थे और आत्रेयार्चनसश्यावाश्वेति इति त्रिप्रवरान्वित आत्रेयगोत्रोत्पन्न यजुर्वेदान्तर्गत आपस्तम्भसूत्र के तैत्तिरीय शाखाध्यायी ब्राह्मण है।

---

१. प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पद्माकर प्रस्तावना पृ० ४१ तथा फुटनोट।

२ 'The District Contains a few Telugu Brahmins, who immigrated many generations ago and are locally called' 'GOKULSTAS' They now talk Hindi but traces of Telugu still remain in their speech The poet Padmakar, who was born in Saugar, describes himself as a Telugu poet, resident in Bundelkhand' —Saugar Gazetteer

३. 'गोकुले प्राक् स्थिता भट्टा गोकुलस्थास्ततो मता' परमानन्दकृत 'राज्य कल्पद्रुम' (हस्तलिखित) प्राप्तिस्थान परमानन्द निकेतन, अजयगढ।

४ श्री आचार्यजी महाप्रभु तैलग कुल — घरूवार्ता

५ द्विजानामान्ध्रदेश्याना शुद्धवेल्लनाट सज्ञया..
'अभ्रिमधारणात्' से 'आन्ध्र' शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।
पृ० १६ – वल्लभदिग्विजय

'विल्वनाट तैलगकुल नारायणद्विज नन्द'।
– सम्प्रदाय कल्पद्रुम

दाक्षिणात्य विबुधा – इन दाक्षिणात्य विबुधो मे महाकवि पद्माकर के पूर्वज **मधुकर भट्ट** थे जिनके पुत्र का नाम **गगाराम** था –

तिहि तनुज सु गगाराम जान ।
सनमान लियव काशी सुथान ।।[1]

से यह पता चलता है कि गढामडला आने के वाद उनके पुत्र **गगाराम** ने काशी मे सन्मान प्राप्त किया और वे वही रहने लगे,

तिनके सुत भे तत्सदृश गगाजल अभिराम ।
नामधेय विख्यात महिमडल गगाराम ।।[2]

गंगाराम के पुत्र **मोहन** तथा उनके पुत्र का नाम **गोविद** था ।

मोहन सुनन्द तिहि श्री गुविन्द
विख्यात विबुध बुध कुमुद चन्द ।।४।।[3]

इसका समर्थन मनहरण छद की इन पक्तियो से भी होता है –

तिनके सुवन भये मोहन महत मति
तासु सुत श्रीमत श्री गोविंद सुनामा है ।
तिनके सुवन शुभ प्रगटे जनारदन
देव द्विज सेवी गुणनिधि सिधिकामा है ।।[4]

पद्माकर कवि के पौत्र गदाधर भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'केसरसभाविनोद'[5] मे **जनार्दन** का परिचय इन दो उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण पद्यो मे इस प्रकार किया है –

गोविन्दनन्द पडित प्रवीण
मडित सुबुद्धि प्रतिभा नवीन ।
जगविदित जनार्दन तासु नाम
किय सप्तशती सुरगिराधाम ।।५।।

श्री रामचन्द्र नखशिख सुवेश
बर्निय सुध्यान पूजा विशेष ।

जित्तिय जु सभा जिन नगरनाग
धन पाय किये जिन धर्मयाग ॥६॥.

इन दो पदो से निम्नलिखित कथ्य सामने आते है –

जनार्दन का जगविदित होना, संस्कृत भाषा मे सप्तशती की रचना करना, श्री रामचन्द्र (भगवान् किंवा नरेश) का नखशिख वर्णन करना तथा नागपुर नगर मे जाकर राजसभा मे विजय प्राप्त कर धन प्राप्त करना और उसे वहा धर्मयज्ञ मे दान देना ।

जनार्दन भट्ट . जनार्दन भट्ट

हिन्दी साहित्येतिहासकार फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने अपने ७० कवियो म जनार्दन भट्ट का नाम प्रथम बार उल्लिखित किया है ।[२] सवत् १९४० मे रचित शिवसिंह सरोज मे सख्या २७८ पर 'जनार्दन कवि' का उल्लेख किया है और सवत १७१८ में उपस्थित बतलाया है । डा ग्रियर्सन ने अपने 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' मे सख्या २८८ पर 'जनार्दन कवि' का नामोल्लेख करते हुए सवत् १७१८ के उपस्थिति काल को ईस्वी सन् १६६१ मे परिवर्तित कर उसे जनार्दन कवि का जन्मकाल माना है ।[३] जनार्दन भट्ट का उल्लेख डा ग्रियर्सन ने सख्या ८२७ पर किया है, और इन्हे वैद्यरत्न नामक औषधि ग्रथ का रचयिता लिखा है । डा किशोरीलाल गुप्त ने अपनी सर्वेक्षण टिप्पणी (२७८[४]) मे शृङ्गारी कवि जनार्दन को पद्माकर का पितामह और मोहनलाल का पिता माना है । सवत् १७४३ मे इन्हे उपस्थित लिख इसी वर्ष को मोहनलाल का जन्म सवत् कहा है और सन १६६१ ई को जनार्दन कवि का प्रारंभिक रचनाकाल माना है, न कि जन्मकाल । सख्या ८२७ जनारदन भट्ट की सर्वेक्षण टिप्पणी २७९[५] मे उनकी रचना वैद्यरत्न का रचनाकाल

---

१ केसरम्भा विनोद गदाधर भट्ट (ह ले सवत १९३४) पृ १४ तथा अन्त्र्यैव फोटो स्टेट कापी ।

२ डा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिन्दुस्साहित्य (१९०३) जनार्दनभट्ट (गोस्वामी) वैद्यक पर पद्यबद्ध रचना 'वद्य रत्न' दवाइयो का रत्न के रचयिता है, आगरे मे मुद्रित (१८६४) २२–२२ पक्तियों के अठपेजी ९२ पृष्ठ, जिसका एक प्रति मेरे निजी सग्रह में है ।

३ डा ग्रियर्सन माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, सख्या २८८

४ डा किशोरीलाल गुप्त ग्रि हि प्र इतिहास, प्रथम सस्करण पृ १९०, ३१४.

५ डॉ. किशोरीलाल गुप्त ग्रि हि प्र. इ (प्रथम सस्करण) पृ० १९० ३१४ ।

स० १७४९ माघ सुदी ६ दिया है। इससे यह पता चलता है कि **जनार्दन कवि** तथा **जनार्दन भट्ट** समकालीन है। मिश्रबन्धुविनोद द्वितीय भाग मे सख्या ५२७ पर केवल **जनार्दन**[1] लिखा है तथा जन्मकाल १७१५ और रचना काल १७४५ दिया है। अपने तृतीय भाग मे वे सख्या १९२५ पर **जनार्दन भट्ट**[2] का नाम लिखकर उनका कविताकाल १९०० के प्रथम बतलाते है। प० नलिन-विलोचन शर्मा ने अपने 'साहित्य का इतिहास दर्शन'[3] ग्रथ मे सख्या २७४ पर **जनार्दन कवि** तथा सख्या २७५ पर **जनार्दन भट्ट** का नामोल्लेख किया है। आश्चर्य यह है कि इन दिये हुए नामो मे जहाँ **जनार्दन** के आगे भट्ट नही लगा है वहाँ वे पद्माकर भट्ट के पितामह बतलाये गये है और जहाँ 'भट्ट' शब्द लगा है वहाँ वे पद्माकर भट्ट के पूर्वज नही कहे गये। मिश्रबन्धु के केवल **जनार्दन** लिख देने से, ग्रथ का कोई नाम न देने से, जन्मकाल तथा रचनाकाल मे क्रमश तीन और चार वर्ष का अन्तर डाल देने से, एक तीसरे जनार्दन की शका हो गई है। कदाचित् इसी भ्रम, शका और सन्देह के कारण आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने **जनार्दन** नाम देकर **भट्ट** को कोष्टक में बद कर आगे डेश लगाकर फिर कोष्टको के भीतर प्रश्नवाचक चिन्ह लिख दिया है। देखिये[4]। मिश्रबन्धु विनोद मे दिये गये सवतो को न मानकर उनकी रचनाओ के आधार पर यदि विचार करे तो ये दो **जनार्दन भट्ट** प्रतीत होते है गार्सां द तासी के **जनार्दन भट्ट**, डा० ग्रियर्सन की सख्या ८२७ पर, मिश्रबन्धुविनोद की सख्या १९२५ पर, पडित नलिनविलोचन शर्मा की सख्या २७५ पर तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको के विवरण के प्रथम खड के पृष्ठ ३२७ पर निर्दिष्ट 'जनार्दन भट्ट **गोस्वामी**' है। शिवसिंह सरोज की सख्या २७८ पर डॉ. ग्रियर्सन की सख्या २८८ पर मिश्रबन्धुविनोद की सख्या ५२७ पर तथा नलिनविलोचन शर्मा की सख्या २७४ पर लिखे गये **जनार्दन** कवि भट्ट तैलग है जो कवि पद्माकर के पितामह है। व्यक्तिश ये दोनो जनार्दन भट्ट दाक्षिणात्य विबुध है, तेलग जाति के भट्ट है, अत्रिगोत्रीय बुन्देलाधिपति पूज्य ब्राह्मण है, सस्कृत सप्तशतीकार है तथा सवत् १७४९ मे जीवित रहने के कारण समकालीन समजातीय है। व्यक्तित गार्सां द तासी के

---

१ मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग (१९८४) सख्या ५२७, पृ० ५१६।

वंशपरम्परा

जनार्दनभट्ट गोस्वामी की वंशपरंपरा[1] इस प्रकार दी जाती है –

षड्शास्त्रवित् समरपुंगव दीक्षित

|

योगतरंगिणी तथा वैद्यचन्द्रोदय

के

रचयिता

सोमाध्वरीभुव तिरुमल्ल दीक्षित

|

श्रीनिकेतन इति प्रथितोऽध्वरीन्द्र

|

भैरवार्चापारिजात, श्री सौभाग्यरत्नाकर, सपर्याक्रमकल्पवल्ली, शिवार्चनचन्द्रिका

के

रचयिता

श्रीनिवास गोस्वामी

|

जगन्निवास गोस्वामी

|

शिवानन्द शिरोमणि | **गोस्वामी जनार्दन** | **चक्रपाणि**

इस दीक्षितवंश के गोस्वामीवंश होने का ऐतिहासिक संकेत यह है कि श्री श्रीनिवास यात्राप्रसंग से जालंधरपीठ नामक तीर्थस्थान गये वहाँ इन्होंने श्री सुन्दराचार्य से श्रीविद्या की उपासना की दीक्षा तथा अभिषेक लिया, और इनका नाम श्री विद्यानन्दनाथ रखा गया तथा इन्हें 'गोस्वामी' पदसे विभूषित किया गया। उनके पुत्र श्री जगन्निवास बुन्देलाधिपति महाराज

१. प. फाल्गुन गोस्वामी बीकानेर का गोस्वामी समाज प्रकाशित राजस्थान भारती भाग-७, अंक ४, पृ. ५.

'श्री श्रीनिवासतनयस्तु जगन्निवास ' जनार्दन रचित मन्त्र चन्द्रिका देखिये 'सरोजसर्वेक्षण' (१९६७) संख्या २७९/२४९ प. ३१३—३१४

देवीसिह के राजगुरु हुए और उन्होने उन्हे पाच गाव दिये 'श्री गुसाँई जगन्निवास जू एते महाराजाधिराज राजा श्री देवीसिह देव आपर पादारविद मे मोजे गाव पाच पादारविंद दये (शुक्रे आश्विन सुदी १५, सवत् १६९१)। गोस्वामी जनार्दन इन्ही के पुत्र थे जैसा कि उनके 'शृगारशतक' की इस पुष्पिका के इन शब्दो से '**इतिश्री गोस्वामिजगन्निवासात्मजगोस्वामि जनार्दन भट्ट कृत शृगारशतक सम्पूर्णम्**'[2] स्पष्ट होता है। जनार्दन भट्ट गोस्वामी की निम्नलिखित रचनाए प्रसिद्ध है –

(१) वालविवेक, (२) भापा वैदरत्न[3], (३) शालिहोत्र अथवा 'हाथी को शालिहोत्र, (४) कविरत्न, (५) मन्त्र चन्द्रिका, (६) शृगारशतकम्–वैराग्यशतकम्, (७) शृगारकलिका[4]। प फाल्गुन गोस्वामी ने 'पूज्य सर्वनृपाणा चेदिजयपुरविक्रमेशानाम्' चरण 'जनार्दनभट्ट' की 'सभेदार्यासप्तशती' से उद्धृत किया है, जिसका लिपिकाल सवत् १७४५ के लगभग है। परन्तु सस्कृत सप्तशतीकार मातुल जनार्दन तो पद्माकर कवि के पितामह ही है।

मातुल जनार्दन कुमारमणि

सस्कृत सूक्तिसग्रह 'रसिकरजन' तथा हिन्दी के रीतिग्रन्थ 'रसिकरसाल' के रचयिता प कुमारमणि का परिचय है –

'पोतकूँचि आन्ध्र विप्रकुल तिलकायमान
जिनकी सुशाखा शाकल वेद ऋक् जान्यो है।

प्रवर प्रसिद्ध पच गोत्र वत्स श्रील बुध
भट्ट हरिवल्लभाभिधेय पहिचान्यो है॥

तनुज तदीय गढपहरा निवासी विज्ञ
पंडित कुमारमणि भूप सनमान्यो है।

उनको विशालहाल कीर्तिमय काव्यकर्म
'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यो है ।।[1]

इस पद्य में 'गढपहरा' ग्राम–नाम विचारणीय है, कारण कि इसी ग्रामनाम के भ्रमवश मिश्रबन्धुओं ने 'गढपहरा' को 'गढामंडला[2]' समझ रानीदुर्गावती का नाम लेकर 'कनेरा' और 'धर्मसी' ग्राम प्रदान करने की बात कह दी थी जिसपर प्रो. कंठमणिशास्त्री ने लिखा है 'पं. कुमारमणि के पूर्वपुरुषों को सागर जिले में धर्मसी, कनेरा आदि ग्राम (संवत् १६६५ के लगभग) जयसिंह देव राजा द्वारा प्रदान किये गये हैं। इनमें से प्रथम ग्राम अब भी उनके वंशजों के पास माफी रूप में है[3]। हरिवल्लभ शास्त्री प्रसिद्ध पौराणिक धर्मशास्त्रज्ञ तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कहे गये हैं, इन्होंने 'सत्रह सै जो इकोतरा माघमास तिथि ग्यास' वर्ष में श्रीमद्-भगवद्गीता का हिन्दी अनुवाद दोहों में किया है, जिसे मूल, अनुवाद, अन्वय, और वार्त्तिक तथा अर्थ से अलंकृत करके लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस के स्वामी ने प्रकाशित किया था[4]। इस हिन्दी अनुवाद की हस्तलिखित प्रति भांडारकर रिसर्च इन्स्टीटयूट पूना में सुरक्षित है। उनके पुत्र पं. कुमारमणि संस्कृत और हिन्दी के उद्भट विद्वान थे।

'विरचयति सूक्तिसंग्रहमान्ध्रकुलीन कुमारमणि[5]' तथा
'कथिता कुमार कविना प्रथिता रसिकानुरंजने ग्रथिता।
सप्तशती शरषण्मुखमुखसिंधुविधिश्रिते (१७६५) राधे[6] ।।'

'संस्कृत ग्रन्थ' 'रसिकरंजन' में प्राप्त 'सूक्तिसंग्रह' तथा 'सप्तशती' शब्दों से मिश्रबन्धु ने ऐसे दो ग्रन्थों की रचनाओं का भ्रम फैला दिया[7]। 'रसिकानुरंजने' शब्द के साथ 'कथिता 'प्रथिता' तथा 'ग्रथिता' शब्दोंके प्रयोग में उसकी संकलनवृत्ति का पता चलता है। प्रो. कंठमणि शास्त्री ने 'रसिकरंजन' नामक आर्यासप्तशतीसंग्रह में प्राप्त 'मदीय सप्तशत्या' 'अनुजसप्तशत्या' 'गोवर्धना-चार्य की सप्तशती' 'मातुल जनार्दन की सप्तशती' आदि कई संस्कृत सप्तशतियों का उल्लेख किया है[8]। 'रसिकरंजन' सूक्तिसंग्रह है[9]–कहने

१ २ ५. ६ प्रो. कंठमणिशास्त्री रसिकरसाल ग्रन्थप्रकाशन भूमिका पृ. ६७, १३,

३ ४ मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग (१९८४) हरिवल्लभ प. ४१९, कुमारमणि पृ. ५७७-५७

७ मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग (१९८४) कुमारमणि पृष्ठ ५७८

८. रसिकरसाल प्रो. कंठमणिशास्त्री (१९९४) पृष्ठ १७, १८, २८, ८, १०,

९ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (षष्ठभाग) संपादक डॉ नगेन्द्र पृ. ३४३ ३४१

से सूक्तिसग्रह तथा सप्तशती की एकता का पता चलता है। निम्नलिखित आर्या इस एकता को समर्थन देती है –

अनुजन्मवासुदेवाभिधबुधतोषाय विविधरसपोषम्
सरसार्यासूक्तिमय रसिकमनोरंजनं कुर्म [1] ॥

– रसिकरजन

उक्त आर्या मे 'कुर्म' का वर्तमान उत्तमपुरुष बहुवचन रूप तथा उसका कर्त्ताकारक 'हम' इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है। 'मातुल जनार्दन की सप्तशती' के सबध मे विचार करते हुए, हिन्दी साहित्येतिहासकारो के इसी गोलमाल के कारण, पो कठमणिशास्त्री ने 'रसिकरसाल' की भूमिका मे तत्कालीन तथा तज्जातीय दो जनार्दनो की समस्या उठाई है।[2] योगायोग यह कि श्री जगन्निवासात्मज जनार्दन भट्ट गोस्वामी के द्वारा 'सभेदार्यासप्तशती' लिखी गई, जिसका रचनाकाल सवत् १७४५ के पूर्व का है तथा दूसरे श्री गोविन्दसुत जनार्दन भट्ट के 'कियमप्तशती सुरगिरा धाम'॥[3] के सकेत मे इनका भी सस्कृतसप्तशतीकार होना सिद्ध होता है। फिर जनार्दन सज्ञा के पूर्व 'मातुल' शब्द के सयोग से तो यह प्रमाणित हो जाता है कि ये 'मातुल जनार्दन' कवि पद्माकर के ही पितामह थे, कारण कि अत्रिगोत्रीय गोविन्दनन्द जनार्दन भट्ट की बहिन श्रीवत्सगोत्री प हरिवल्लभशास्त्री को ब्याही गई थी। पुनश्च, जनार्दन भट्ट के चतुर्थ पुत्र तथा पद्माकर के पिता मोहनलाल के लघु भ्राता क्षेमनिधि, कुमारमणि के शिष्य तथा अन्तेवासी थे, जिनकी सवत् १७९२ मे लिखित श्री सक्षेपभागवतामृत की यह पुष्पिका प्रमाण देती है –

'इति श्रीसक्षेपभागवतामृते श्रीकृष्णचैतन्यचरिते श्रीकृष्णामृतं नाम पूर्वखड समाप्तम्. सं १७८२ आषाढ शुक्लाष्टम्यां बुधवासर। श्रीमद्गुरु-कुमारमणि लिखितानुसारेण क्षेमनिधिना लिखितम्।

पौषेवलक्षपक्षे पक्षतिभृगुवासरे ऽ लेखि।
नेत्रांकसिन्धुसिन्धुज (१७९२) वर्षे . प्रभो प्रीत्यै'।[4]

इन सकेतो से पो कठमणिशास्त्री द्वारा उठाई गई 'मातुल जनार्दन' की समस्या हल हो जाती है और यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि ये मातुल जनार्दन कवि पद्माकर के पितामह ही है। जनार्दन भट्ट का जन्म डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार सवत् १७१८ (सन् १६६१) है। जनार्दन भट्ट की बहिन का

पद्माकर कवि के पितामह जनार्दन भट्ट, 'रसिकरजन' (स. १७६५) तथा 'रसिकरसाल' (स १७७६) के रचयिता कुमारमणि के समकालीन थे। पो कठमणिशास्त्री ने 'रसिकरसाल' की अपनी भूमिका मे यह सदेह भी उपस्थित किया है कि प कुमारमणि के आश्रयदाता दतिया नरेश रामचन्द्र किंवा रामसिह रहे हो कारण कि रसिकरसाल मे कई बार रामनरेन्द्र की स्तुति[1] मिलती है। मेरा कथन है कि ये दतिया नरेश रामचन्द्र ही होगे, कारण कि रामसिह युवराजावस्था मे ही पिता की मृत्यु के पूर्व सन् १७३० म गादीपुर मे मर चुके थे।[2] मातुल जनार्दन भट्ट तथा कुमारमणि का सस्कृत मे सप्तशती लिखना, दोनो का रामचन्द्र का गुणगान करना, यह सकेत करता है कि कही दोनो आश्रित कवि अपने आश्रयदाता दतियानरेश राजा रामचन्द्र को प्रसन्न करने के हेतु उनके नाम का आश्रय तो नही ले रहे है? 'रसिक-रसाल' ग्रन्थ के 'उपमान प्रमाण अलकार' के उदाहरण में दिया गया यह दोहा इसकी सपुष्टि करता है कि प कुमारमणि दतियानरेश राजा रामचन्द्र के आश्रित थे राजा रामसिह के नही। राजा रामचन्द्र थे भी वहुत सुन्दर।[2]

दोहा

'दृग अनद कर चन्द ज्यो दुवन हरत ज्यों इन्द्र।
ज्यो अति सुन्दर काम त्यों रामचन्द्र नर इन्द्र॥[3]

सवैया

'राम नरिंद की फौज के धाक हिये हहरी जल छीन ज्यो मच्छी।
दीह दरीनि दुरी गिरि कच्छनि सिंधनी दीनता लच्छि न भच्छी॥
तच्छन एक कहूँ थिरलच्छ न लच्छ छनच्छबि सी तम लच्छी।
गौन अलच्छित गच्छतीतच्छन वच्छतीपच्छ विपच्छ मृगच्छी॥'

बुन्देलाधिपति राजाओ के महाराज शाहू को सहयोग देने के बाद ही तो भोसलाधीश को चौथ वसूल करने की जो सनदे दी गई थी उनमे 'सूबा दतिया' की भी सनद दी गई थी।[4] जनार्दन भट्ट का देहावसान सवत् १७८२ के पूर्व हो गया होगा, ऐसा लगता है।

रचना अप्राप्त संस्कृतसप्तशती।

अत्रिगोत्रोत्पन्न मधुकर भट्ट की पाचवी पीढी मे जनार्दन भट्ट और उनसे अन्नाजू, गुणधरजू, मोहनलाल, क्षेमनिधि और श्रीकृष्ण ये पाच पुत्र हुए, जिन्होने वादा, बुदेलखड, सागर आदि नगरो मे विद्याव्यवसाय के कारण स्थिति की।[1] अन्नाजू के विषय मे कोई जानकारी प्राप्त नही होती।

गुणधर पडित नकछेदी तिवारी ने गुणधर को मोहनलाल से वडा भाई वतलाया है। मिश्रबधु ने भी इन्हे जनार्दन भट्ट का द्वितीय पुत्र लिखा है। जनार्दन भट्ट के द्वितीय पुत्र 'गुणधर' की कविता का नमूना हमे मिलता है –

रचना छप्पय

'नेक जो हँसो तो लाल माल होत हीरन की
नेक जो मुरों तो मेरी नीलमणि झलकी।
अंजली भरी है मुख धोयबे को झारी लै कै
सखिन निहारी द्युति राती होत जल की ॥
जो मै रचो चीर तो कुचील जुरे जोबनन
देखिबे को आँखें गुनधर हू की ललकी।
आँगन कढो तो भौंर भीरन अंधेरो होत
पाँय जो धरो तो महि होत मखमल की ॥[2]

– अथ सर्व देह उपमा वा छवि वर्णन

मोहनलाल भट्ट मोहन कवि मोहन

'मोहनलाल भये तिनके अनूप सुत
सागरनिवासी सुखरासी गुणधामा है[3]

मोहनलाल भट्ट, जनार्दन के तृतीय पुत्र[4] थे। 'शिवसिंह सरोज' मे ३ मोहन है। १–मोहनलाल भट्ट –पद्माकर के पिता, जीवनकाल स १७४३ से

---

१ 'अजान' पद्माकर कवि देवनागर, वत्सर १, अक १, मेप ५००९ कल्यब्द पृ १७
मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग) पृ. ८९९

२ 'नखशिख हजारा'– परमानन्द सुहाने, दिसम्बर सन् १८९३, सख्या ३३ पृ २६१

३. हिम्मतबहादुरविरदावली. (दूसरा सस्करण) पृ १७

४ नकछेदी तिवारी अजान ने मोहनलाल को तृतीय पुत्र माना है।
देखिये - अखौरी गगाप्रसादसिंह. पद्माकर की काव्यसाधना पृ १७
प लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ने इन्हे ज्येष्ठ पुत्र माना है – कवि पद्माकर सम्पादक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर.

१८४० के आसपास तक। २–मोहन ये जयपुर नरेश सवाई जयसिंह तृतीय (?) के आश्रित थे। इनका शासनकाल स १७५५–१८०० वि है। यही इन मोहन का समय होना चाहिये । सरोज मे दिया इनका समय स १८७५ अशुद्ध है। ३–मोहन – हजारा सख्या १२० (?) मे इनकी कविता होने के कारण इनकी कल्पना की गई है और इनका समय स १७१५ दिया गया है। ये तीसरे मोहन पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट से अभिन्न हो सकते है। मोहनलाल भट्ट का सबध जयपुर दरबार से था। बाद मे पद्माकर का भी हुआ। हो सकता है कि दूसरे मोहन भी पहले ही मोहन (पद्माकर के पिता हो)[1]। डॉ ग्रियर्सन की सख्या ५०२ के मोहनभट्ट[2] बादा वासी है। १८०० ई के आसपास उपस्थित यह प्रसिद्ध कवि है । यह पहले पन्ना के बुन्देला महाराज हिन्दूपति के दरबारी कवि थे फिर जयपुर के प्रतापसिंह सवाई (१७७८–१८०३) ई और जगतसिंह सवाई (१८०३–१८१८) ई के। यह किसी सुजानसिंह की भी प्रशसा करते है । डॉ किशोरीलाल गुप्त आगे टिप्पणी मे लिखते है – मोहनलालभट्ट का जन्म स १७४३ मे हुआ था। यह स १८४० के आसपास जयपुर गए थे। इसके शीघ्र ही बाद इनका देहान्त हुआ होगा। १८०० ई (स १८५७) तक इनका जीवित रहना बहुत सभव नही दिखाई देता। सर्वेक्षण ६३१[3] मिश्रबन्धु-विनोद मे मोहन (५०८) ग्रन्थ रामाश्वमेघ, जन्मसवत् १७१५ रचनाकाल १७४० विवरण :– तोष श्रेणी के कवि, ये सवाई राजा जैसिंह जयपुर महाराज के यहाँ भी गए थे[4]। तथा मोहनभट्ट (५४५) ये महाशय बादा निवासी कवि पद्माकर के पिता थे। इन्होने भी उत्कृष्ट कविता की और अनुप्रास का समादर अच्छा किया इनका कविताकाल १७६० के आसपास था[5]। डॉ किशोरीलाल गुप्त ने अपने नवीन 'सरोज सर्वेक्षण' ६३१/५२९, ६३२/५३०, ६३३/५८३ मे इन तीन के अतिरिक्त तीन और मोहन का सर्वेक्षण किया है। व्यक्तिश सरोज सर्वेक्षण ६३३/५८३ के 'मोहन कवि', प्रथम सस्करण की सख्या २८४ के तथा मिश्रबन्धुविनोद के मोहन (५०८) है, और सरोज सर्वेक्षण ६३१/५२९ के 'मोहनभट्ट',

---

१ नागरी प्रचारिणीसभा, काशी मालवीयशती विशेषाक (२०१८) पृ ३००

प्रथम सस्करण की सख्या ५०२ के तथा मिश्रवन्धुविनोद के मोहनभट्ट (४४५) है। यदि मोहनलाल के पिता जनार्दनभट्ट का चाहे जन्म अथवा रचनाकाल स १७१८ हो, पर मोहनलाल का जन्म सवत् १७४३[1] तदनुसार सन् १६८६ मान लेना उचित है। मिश्रवन्धु ने सवत् १७४४ मानकर उनका जन्मस्थान वादा लिखा है। डॉ विनय मोहन शर्मा लिखते हैं 'पद्माकर के पिता मोहनलाल जो सवत् १७४३ मे वादा मे उत्पन्न हुए थे और जो अप्पासाहव रघुनाथ के मुसाहिव थे साधारणत अच्छी कविता करते थे।[2] कवि पद्माकर के पौत्र विद्याधर ने मोहनलाल को सागरवासी लिखा है, तथा डॉ उदयनारायण तिवारी ने इसका समर्थन किया है।[3] पिता जनार्दन की वहिन का 'गढपहरा' (सागर से ७–८ मील दूर) में हरिवल्लभ से विवाहित होने के कारण उनका सागर मे रहना सभव है। पिता मोहनलाल तथा पुत्र पद्माकर के आश्रयदाताओ के सम्बन्ध–परिचय में हिन्दी साहित्येतिहासकारो द्वारा कई दुविधाएँ, विपरीतियाँ, भ्रान्तियाँ तथा अशुद्धियाँ प्रस्तुत कर दी गई है –

प नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि, 'कहते है कि प्रथम आप अप्पासाहव रघुनाथराव (वडा सागर) की सरकार मे मोसाहव हुए तत्पश्चात् सवत् १८०३ में हिन्दूपति महाराज पन्नानरेश के यहाँ मन्त्रगुरु की पदवी तथा पाच गाँव की सनद प्राप्त की। अन्त मे सवाई महाराज प्रतापसिंह जयपुर नरेश के दरवार मे एक हत्थी, जागीर, सौवर्णपदक तथा कविराज शिरोमणि की पदवी पाई।[4] मिश्रवन्धु ने इसी को आधार माना है परन्तु अप्पासाहव रघुनाथराव को नागपुर का महाराजा लिखकर सवत् १८०४ मे मोहनलाल का हिन्दूपति महाराज पन्नानरेश के यहाँ आना वतलाया है[4]। इन दोनो के कथनो मे अप्पासाहव रघुनाथराव को एक ने सागर का वतलाया है, तथा दूसरे ने नागपुर का। इस दुविधा पर पाडेय लोचन प्रसाद ने लिखा है– 'मोहनलाल जी अप्पासाहव रघुनाथराव (वडा सागर) की सरकार मे मुसाहव थे – यह वात प नकछेदी तिवारी 'अजान कवि' ने किस आधार पर लिखी है, ज्ञात नही होता पर वह वहाँ थे। नागपुर के प्रथम राजा रघुजी का जन्म सन् १६९८ मे हुआ था। इनने सन् १७३१ ई से सन् १७५५ तक राज्य करके ५७ वर्ष की अवस्था मे महायात्रा की। सभव है पद्माकर के पिता मोहनलालजी इन्ही

---

१ सरोज सर्वेक्षण सख्या ६३१ / ५२९ पृ ५३८ तथा जनार्दन कवि पृ ३१३

२. माधुरी मार्गशीर्ष ३०७ तुलसी सवत् पृ ६२१

३ डॉ उदयनारायण तिवारी वीर काव्य पृ ४४४

४. पद्माकर कवि देवनागर, वत्सर २ अक १ मिश्रवन्धु विनोद (द्वितीय भाग) पृ. ८९९.

रघुजी (रघुनाथरावजी) के यहाँ रहे हो। पर ये रघुजी अप्पासाहब कहाते नही थे,' यद्यपि मिश्रबन्धुओ ने 'सरस्वती' वाले लेख मे इसे भ्रमवश मानलिया है। डॉ ग्रियर्सन ने (506) 'पद्माकर भट्ट' मे पुन नागपुर के रघुनाथराव को अप्पासाहब लिखकर उनका शासनकाल (१८१६–१८१८) मान लिया है– व्यक्तिश ये सागर के थे नागपुर के नही।

– कवि पद्माकर और महीप रघुनाथराव – लेखक – पाडेय लोचन प्रसाद, प्रकाशित – कर्मवीर जवलपुर[१]

अत यह स्पष्ट होता है कि पिता मोहनलाल नागपुर के प्रथम राजा रघुजी के पास सन् १७३१ के वाद तथा सन् १७५५ के पूर्व कभी गये होगे, परन्तु वे न रघुनाथराव थे और न अप्पासाहव। नागपुर के भोसलाधिपति द्वारा मोहनलाल के पिता जनार्दन भट्ट सम्मानित हो ही चुके थे,[२] अत पुत्र मोहनलाल नागपुर प्रथम राजा रघुजी के दरबार मे आये होगे। मोहनलाल भट्ट के नागपुर से सम्बन्ध होने की वात, गोसाईं भोलापुरी द्वारा लिखित **'श्री संग्रहमाला'**[३] की प्राप्त हस्तलिखित प्रति से जो अस्करनपुरी जी के पठनार्थ जगन्नाथ के समीप नागपुर मे लिखी गई थी, सिद्ध होती है। नागपुर की यह गोसाई–गद्दी, गुसाई वेनीगिर द्वारा जो नागपुर के रघोजी भोसले के साथ सतारा से नागपुर आये थे, स्थापित की गई थी। इनके पश्चात् वहाँ राजेन्द्रगिरि, हीरागिरि और मोतीगिरि गद्दी पर वैठे।[४] फिर 'तत्पश्चात् सवत् १८०३ मे तथा मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार, सवत् १८०४ मे पन्ना के महाराज हिन्दूपति के यहाँ जाकर उनके मत्रगुरु हुए और उन्होने इन्हे पाच गाँव भी दिए' कथन मे सवत् अशुद्ध है। वुन्देलखड का इतिहास साक्षी है कि विक्रम सवत् १८१५ तदनुसार सन् १७५८ मे हिन्दूपति ने राज्य के लोभ से अपने भाई अमानसिह को मरवा डाला था और वे तव पन्ना की राजगद्दी पर वैठे थे।[५] अत मोहनलाल का पन्नानरेश हिन्दूपति महाराज के यहाँ मत्रगुरु वनना और पाच गाव प्राप्त करना सवत् १८१५ के वाद ही सभव है।

कवि पद्माकर के पौत्र गदाधर भट्ट कवि ने 'कैसर सभा विनोद' के 'कविवशावलीवर्णन' मे लिखा है –

'तिहि तनुज सु मोहनलाल जान।
कवि, बुध, पुरान वक्ता प्रमान॥
तिहि सुनी कथा नृप छत्रसाल।
आचार्य मान* कीन्हे निहाल॥'[1]

इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि सवत् १७८८ के पूर्व बुन्देलखड केसरी छत्रसाल ने पुराणवक्ता मोहनलाल से अपनी वृद्ध उमर मे कथा सुनी थी और उन्हे आचार्य मानकर निहाल किया था। हो सकता है कि छत्रसाल की मृत्यु के बाद मोहनलाल भोसलाधिपति रघुजी के दरबार मे गये हो। ध्यान रहे कि कवि मोहनलाल का जन्म-सवत् १७४३ तदनुसार सन् १६८६ है। जयपुर मे उन दिनो जयसिह नरेश थे, जिनकी वीरता पर औरगजेब ने इन्हे 'सवाई' पदवी प्रदान की थी। सन् १६९९ मे ये गद्दीपर बैठे, और सन् १७२७ मे इन्होने अपने नाम पर 'जयपुर' नगर बसाया। ये कवियो के आश्रयदाता थे तथा स्वय 'जयसिंह कल्पद्रुम' के रचयिता थे। सरोज सर्वेक्षण की सख्या ६३२/५३० के 'मोहन' के दिये गये उदाहरणो में एक महाराज जयसिह की प्रशस्ति है —

'मोहन' भनत महाराज जयसिंह तेरी
तेग रन रंग में खिलावे खल व्याली को।'

उपरोक्त पक्तियो के 'मोहन' कवि पद्माकर के पिता मोहनलाल ही है। उपरोक्त पक्तियाँ महाराज जयसिह और मोहन कवि को समकालीन ही नही, आश्रयदाता और आश्रित कवि का सबध स्थापित करने मे सहायक सिद्ध होती है। ग्रन्थ सख्या ३ पर 'मोहन' की रचना रामाश्वमेध १९०९।१९९ सी ग्रन्थ पर हम आगे विचार करेगे। जयपुर के जयसाहिनरेश के तथा जाट-नरेश सूर्यमल्ल के सम्बन्ध भी सर्वविश्रुत है। २० अक्टूबर सन् १७५२ ई मे दिल्ली के बादशाह ने भरतपुरनरेश सूरजमल के पिता बदनसिंह को 'महेन्द्र' उपाधिसे विभूषित किया था तथा जयपुरनरेश सवाई जयसिंह ने बदनसिंह को टीका, निशान, ढोल, पचरगी ध्वजा और 'ब्रजराज' की उपाधि जैसे पचवन से सम्मानित और विभूषित किया था और सूरजमल अपने आपको जयपुर के अधीन भी मानता था।[2] इसीलिये तो सूदन द्वारा 'सुजानचरित' मे प्राप्त कथन :—

---

१ गदाधर कवि कृत कैसरसभाविनोद (हस्तलेख स १९३४) पृ. १४

* पाठान्तर 'पन्नानरेश' (हस्तलेख स. १९३९)

२. डॉ टीकमसिंह तोमर हिन्दी वीर काव्य (१६००-१८००) १९५४ पृ ३१३.

'ज्यो जयसाहिनरेश
करत कृपा तुव देस पै ।'

जयपुरनरेश जयसिंह को उस कृतज्ञता और मित्रता का सूचक है, जिसपर भरतपुर राज्य की प्रस्थापना हुई थी। सूरजमल की स्तुति मे जयपुरनरेश जयसिंह के आश्रित कवि कलानिधि श्रीकृष्णभट्ट ने सस्कृत मे यह पद्य कहा था

'इतो हैन्दवीं सृष्टिमानन्दयन् स्वै ।
गुणोघैस्ततो यावनी सृष्टिमुच्चै ।
महेन्द्रास्पदे श्रीयुत सूर्यमल्ल –
स्तटद्वन्द्वसयत्तरंग समुद्र ॥'[१]

धीरे धीरे दिल्ली की किल्ली इतनी ढीली होगई कि दिनदहाडे दिल्ली लूट ली गई और दिल्ली निवासी कहने लगे –

'अस कस कीन्ह ख्वार दिल्ली का नवाब ख्वार
चीन्हत न सार मनसूर जट्ट ल्यावा है ।'

ये विकलता के नही, बरन् दिल्ली की बादशाहत की अधोगति और विफलता के जनशब्द है । लोग चाहे इसे जाटगर्दी कहे, पर है यह सूरजमल और उनके पुत्र जवाहिरसिंह के विक्रम पराक्रम का परिणाम, जिसकी प्रशसा मे कवि देव ने कहा –

'दक्षिन के दक्षिनी पछाँह के पछारे भूप
उत्तर उत्तर सेना सब पुरुष के दल की ।
सुभट समाजन की गाजन गरज भूमि
लरजी छाती देव दानव के दल की ॥
यदुवशी नृपति सुजान के सपूत पूत
कहाँ लौ बखान करूँ तेरे बाहुबल की ।
मोहि भई जाहिर जवाहर तुम्हारे हाथ
आय लगी सायत विलायत कतल की ॥'[२]

'रसपीयूपनिधि' के रचयिता कवि सोमनाथ उपनाम शशिनाथ चतुर्वेदी ने वदनेशनन्दन 'सूरजमल' तथा सिंहसूरजकुमार 'जवाहिरसिंह' की प्रशसा में लिखा है –

दोहा

'बखतवली है तनय सब, तिनके प्रगट अपार।
राज काज कर्त्ता बडे सूरजमल्ल उदार ॥[1]

कवित्त

'प्रबल प्रताप दावानल सौ बिराजै जोर
अरिन के पारै रोरि धमक निशानै की।
ठट्ठ मरहट्टा के निघट्टि डारै बानन सो
पेशकश लेत है प्रचंड तिलगाने की ॥
'सोमनाथ' कहे सिह सूरजकुमार जाको
क्रोध त्रिपुरारि को सौ लाज बर बाने की।
चढकै तुरग जग रग करि शैलिन सो
तोरि डारी तीखी तरवारि तुरकाने की ॥

डॉ ग्रियर्सन का यह सकेत कि 'यह किसी सुजानसिह की भी प्रशसा करते है' विचारणीय है। मिश्रबन्धुविनोद मे सख्या (५४५) मोहनभट्ट के परिचय मे लिखा है 'ये महाशय बादा निवासी कवि पद्माकर के पिता थे। इन्होने भी उत्कृष्ट कविता की और अनुप्रास का समादर अच्छा किया। उदाहरण

'दाबि दल दक्खिन सु सिक्खन समेत दीन्हे
लीन्हे बेगि पकरि दिलीस दहलनि में।
रूम रुहिलान खुरासान हबसान लचे
तुरक तमाम ताके तेज तहलनि मे ॥
'मोहन' भनत यो बिलाइति नरेश ताहि
सेर रतनेस घेरि ल्यायो रुहलनि में।
जेहि अगरेज रेज कीन्हे नृपजाल तेहि
हाल करि सुबस मचायो महलनि में।'

इनका कविताकाल १७६० के आसपास था। यदि सोमनाथ कवि ने जवाहिरसिह को 'सिह सूरजकुमार' नाम से सबोधित किया तो मोहन कवि ने सूरजमल को यहाँ 'सेर रतनेस' नाम से अभिहित किया है। मिश्रबन्धु[2] के अनुसार सवत् १८०४ में सूरजमल ने जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिह की सहायता से मरहठ्ठो को पराजित किया था अत. इस पद्य की रचना इसी

१ २ मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग (पृ ५३१ पृ ७११. पृ ५१६)

समय होनी चाहिये। जयपुरनरेश जयसिंह की मृत्यु के बाद हो सकता है महाराजा ईश्वरीसिंह के समय मोहन जयपुर से सूरजमल के साथ इस ओर आगये हो। एक प्रमाण और उल्लेखनीय है -- नरवर दुर्ग उन दिनो आमेराधिपति के आधीन था, इसका राजा भी कछवाहा शाखा का था। नरवर निवासी कवि **रतन भट्ट तैलंग**[१], उनके ग्रन्थ (१) रतनसागर, (२) सामुद्रिक, (३) गणेश स्तोत्र, उनका रचनाकाल सवत् १७४५, उनके पिता का नाम कृष्णभट्ट (कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट से भिन्न), तथा गुरु का नाम **मोहनलाल** आदि मिश्रबन्धुविनोद मे प्राप्त विवरण मोहनकवि के जयपुर से इस ओर आजाने का समर्थन करते हैं। सुजानसिंह के पुत्र जवाहिरसिंह ने आगे चलकर मराठो को पराजित कर कालपी मे अपना राज्य स्थापित कर लिया था तथा नरवर के पुल तक वह जा पहुँचा था। करहिया राज्य, जो उस समय नरवर के ही अन्तर्गत था, जवाहिरसिंह ने लेलिया था।[२] सूरजमल थे भी कवियो के आश्रयदाता। सोमनाथ का 'सुजान विलास', सूदन का 'सुजानचरित' आदि ग्रन्थ उनके यश पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। सूदन कृत सुजानचरित मे जिन कविन्दन को प्रणाम किया गया है, उनमे **मोहन** और उनके लघुभ्राता **खेम** का भी नाम आता है। ये ऐसे सकेत स्थल है जो मोहन को दो नही एक होने मे तथा उनके व्यक्तित्व, समय और रचनाकाल के निर्णय करने मे अन्त साक्ष्य प्रस्तुत करते है। पद्माकर कवि के पिता मोहन कवि का उपरोक्त पद ऐतिहासिक दृष्टिसे है भी महत्वपूर्ण। उक्त पद से तत्कालीन हिन्दू राजन्य वर्ग के उन सघातो की झलक मिलती है जो एक ओर अपनी सर्व समर्थ शक्ति का परिचय दे रहे थे, चाहे वे मराठे हो या सिक्ख हो या स्वय जाट हो, दूसरी ओर यवनो की वह धर्मविरोधिनी राजसत्ता थी, जिसका प्रनिनिधित्व मुगलसम्राट दिल्ली मे कर रहा था और जिसमे तुर्क, रूम, हब्श, गोहिले सभी की जन समुदाय शक्ति लगी थी। इन सघर्षो के बीच तत्कालीन विलायत से आयी हुई नयी दुर्दमनीय वह अगरेज-नीति थी जो Divide and rule का बौद्धिक बल लेकर राजन्य वर्ग मे चाहे वे हिन्दू या मुसलमान हो घुन का काम कर रही थी। फिलिप फ्रासिस ने अपने भाषण मे ठीक ही कहा था। 'From factories to forts, from forts to fortifications, from fortifications to garrisons, from garrisons to armies, and from armies to Conquests, the gradations were natural and the

result inevitable, where we could not find a danger, we were determined to find a quarrel '[1] मोहन कवि ने इसी ऐतिहासिक अनुक्रम का परिचय देते हुए उपरोक्त पद मे कहा है कि सूरजमल ने मल्हार-राव, जयाजी अप्पा जैसे दक्षिण के वीर मराठो को तथा उत्तर के सिक्खो को तो पराजित कर ही लिया, दिल्ली सम्राट तक को कोटला दुर्ग मे हराकर राज-महलो की देहलान मे पकडकर बन्दी कर लिया और दिल्ली दिनदहाडे लूट ली। असदखाँ, अहमदखाँ नजीबखाँ रुहेला, रुस्तमखाँ, हवस खाँ आदि अफगान पठान, तूरानी, ईरानी, सीदी, अफ्रीकी जातियो के वीरपुरुषो के बीच सूरजमल ने अपने तेजसे तहलका मचा दिया। जो नरेश विलायती प्रभाव से प्रभावित होगये थे और जिन व्यापारी अगरेजो ने अपनी Divide and rule की राजनीति से भारतीय राजन्यवर्ग के टुकडे टुकडे कर दिये थे, उन विश्वास-घाती, उच्छृङ्खल अमीर–उमरा राजाओ और नवाबो को परास्त, पराभूत तथा परेशान कर उन्हे अपने राजकीय महलो मे महलबद तथा नजरबद कर दिया था। आपसी सघातो, हिन्दूमुस्लिम सघर्षो तथा अगरेजो से होनेवाले सग्रामो की यह भूमिका ऐतिहासिक दृष्टि से अपूर्व है। नवीन प्रेरणादायक यह छन्द अग्रेजी सत्ता के विरुद्ध, कदाचित् तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण का आव्हान है।

मोहनलाल कवि पौराणिक रूप में सर्व प्रथम बुन्देलकेसरी छत्रसाल द्वारा आचार्य माने गये, फिर जयपुर नरेश जयसिह द्वारा सम्मानित हुए। कदाचित् जयसिह के स्थान पर ही लोग भूल से प्रतापसिह का नाम लेने लगे है (दोनो के समय मे अन्तर है) जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भी एक बार कहा है - 'मोहन भट्ट ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब वर्णन करेगे तो गोपियो का ही वर्णन करेगे कृष्ण भगवान् की प्रशसा नही करेगे। जयपुर के महाराज प्रताप-सिह को यह खबर लगी। उन्होने भट्टजी से कहा, आप द्रोपदी चीर हरण पर कोई कवित्त कहे। उन्होने सोचा था कि इस प्रसग मे तो भट्टजी को भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशसा करनी ही पडेगी, पर उनकी आशा निराशा मे परिणत हो गई, जब भट्टजी ने निम्नलिखित कवित्त सुनाया था –

कबै आप गये है बिसाहन के बजार बीच
कबै बोलि जुलहा बिनायौ दरपट सो।
नन्दजू की कामरी न काहू वसुदेवजी की
तीन हाथ पटुका लपेटे रहे कट सो॥

1 Philip Francis – Speech on Indian affair 1687 A P

'मोहन' भनत या मैं रावरी बराई कहा
राखि लीन्हीं आन बान ऐसे नटखट सो ।
चोरि चोरि लीन्हे तब गोपिन के चीर
अब जोरि जोरि देन लगे द्रोपदी के पट सो ।। [१]

पर इस कवित्त मे प्रतापसिह का नाम नही मिलता । जयपुर मे उन्हे 'कविराज शिरोमणि' की उपाधि से सम्मानित किया गया । वहाँ से वे भरतपूर नरेश सुजानसिंह के आश्रय मे होगे तदनन्तर सन् १७५५ के लगभग वहासे वे नागपुर भोसलाधिपति रघुजी के दरबार मे आये होगे और उसके बाद बुदेलाधिपति पन्नानरेश हिन्दूपति के यहाँ आये होगे । डॉ ग्रियर्सन, श्री शिवसिंह सेगर तथा कर्नल टॉड का यह कथन कि पहले ये पन्ना के बुदेले महाराज हिन्दूपति की सभा मे रहे, अनन्तर जयपुर के सवाई प्रतापसिह (१७७८–१८०३ ई) और सवाई जयसिह (**जयसिह नही जगतसिह**) की (१८०३–१८१८ ई) मे रहे– [२] ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य है, और बहुत से भ्रमो का कारण है । फ्रेक ई के महोदय ने ठीक ही लिखा है –

Maharaja Hindupati of Panna was the patron of Mohan Bhatt as well as Rupsahi and karan (fl circa 1800) [३] महाराज हिंदूपति थे भी वीर, उनकी स्तुति मे लिखा गया 'करन' कवि का यह पद्य यहाँ उद्धृत किया जाता है –

खलखडन मडन धरनि उद्धत उदित उदंड
दल मडन दारुन समर हिंदुराज भुज दंड ।।

करन कवि का रचनाकाल सवत् १७५७[४] (अथवा सवत् १८२४) [५] कहा जाता है । 'रसकल्लोल' के रचयिता रुपसाहिने 'रूपविलास' मे १४ विलासो मे काव्यशास्त्र के विभिन्न अगो का वर्णन किया है, जिसका रचनाकाल सवत् १८१३ है । अत के महोदय द्वारा दिया हुवा सन् १८०० गलत है । मुझे तो ऐसा लगता है कि नवाव शुजाउद्दौला के पन्नानरेश हिन्दूपति तथा अजयगढ नरेश गुमानसिंह पर किये गये दिसम्वर सन् १७६२ ई के 'तेंदुवारी युद्ध' के पूर्व मोहनलाल का देहान्त होगया होगा । मेरी यह भी स्थापना है कि

ग्रियर्सन की सख्या (३२९) तथा सख्या (५०२) के मोहन कवि अभिन्न है। मोहन कवि का जन्म सवत् १७४३ तदनुसार सन् १६८६ तथा देहावसान सवत् १८१८ तदनुसार सन् १७६२ होना चाहिए।

कृतियाँ – सुजानचरित (पृ २ छद-७) विद्वन्मोदतरगिणी (सख्या ३०) तथा कर्नल टॉड के अनुसार मोहनलाल विख्यात कवि थे। मिश्रबन्धुविनोद मे नामसख्या (५०८) पर उनके 'रामाश्वमेध'[1] नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है, जिसका रचनाकाल सवत् १७४० कहा गया है। सरोज-सर्वेक्षण में जहाँ 'मोहन' रचित जयपुरनरेश जयसिह की प्रशस्ति-पक्तियाँ उद्धृत की गई है वहाँ ग्रन्थसख्या ३ पर उनके 'रामाश्वमेध' १९०९/१९९ सी[2] ग्रथ का भी सकेत दिया गया है। उक्त ग्रन्थ का हस्तलेख 'दयानन्द वाचनालय पुस्तकालय, बाँदा' के श्री मथुराप्रसाद खरे से प्राप्त हुआ है। इस हस्तलेख की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है – "**इति श्री रामाश्वमेध मोहन कृत जंग्यकाड संपूरन सुभ मंगलं ददातु**"

ता दिन प्रत पूरन भई, भादौं सुकला ग्यास।
बोली फिर हम लिख्यो, लिखो बिहारीदास॥

सोरठा

संवत् कहौ जु सोइ, उनईस सौ दो पुन कहँ।
बाचै सुनै जु कोई, ताकौ प्रगटै परम पद॥

दोहा

प्रत देखी तैसी लिषी, मोहि न दैवी गार।
भूल चूक जहँ होइ कहुँ, सज्जन लेउ सुधार॥
वासो सिमथर सहर के हिन्दूपति के राज।
बसो रहत ता नग्र में रैयत सहित समाज॥

इनका एक और ग्रन्थ 'श्रृगारसग्रह'[3] कहा जाता है। लाल जयशकरनाथसिंह, प्रमोदवन, अयोध्या से प्राप्त श्रीसग्रहमाला से लेखक चतुरानन ने 'कवियश प्रार्थी मोहनलालभट्ट' शीर्षक लेख मे उनके कतिपय छद उद्धृत किये हैं। साथ ही साथ 'जगन्नाथ' और 'जगदीश' के भी कतिपय छद दिये हैं।

---

१ मिश्रबन्धुविनोद (द्वितीयभाग) कवि (५०८) मोहन (१९८४) पृ ५१२,
२ सरोजसर्वेक्षण (१९६७) किशोरीलालगुप्त पृ ५३८-५३९
३ डॉ ब्रजनारायणसिंह कविवर पदमाकर और उनका युग पृ ९४

इन मे जगन्नाथ कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट के भाई है तथा जगदीश[१] उनके ज्येष्ठ पुत्र है । उनका कथन है कि उक्त **श्रीसंग्रहमाला** मे पडितराज जगन्नाथ के उत्तम, मध्यम और अधम प्रीति के प्रकारो के बाद निम्नलिखित पद्य दिये गये है –

सोरठा

'यह तो अद्भुत रीति, जो कोउ खेलै खेल तजि ।
ऐसी कीजै प्रीति, भावन्ता नहि लखि सकै ।।'
'देस कोस को चीत, इत यह नेह निवाहनो ।
यह द्वै अनमिल मीत, मिलवै बिरलो मानई ।।'

दोहा

'कह्यौ चहत पुनि नहि कहत, डरपि रहत एहि भाइ ।
'मोहन' मूरति हीय ते, कहति निकसि जनि जाइ ।।'
'मोहन' बात सनेह की, ज्यौं भावै त्यौं भाखि ।
जासो कहिये समुझिबो, तासो अन्तर राखि ।।'
'खेल्यो चाहै प्रेमरस, मन में धरै सयान ।
सती नवासन संतती, सुनी जो अब लौ कान ।।'
'मोहन बात सनेह की, कहन सुनन की नाहि ।
यह सुख निरखै ही बनै, जो बीतै मन माहि ।।'

– तथा च मोहनकवे : [२]

कविराज मोहन ने नायिका में प्रीति की भाव–स्थिति प्रमुख मानी है और उस प्रेमागी को श्रृगार का अग माना है । वे **'प्राक् प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः श्रृगारतां गता'** को भी मानते है इस प्रकार 'रस' की विषयगत परिभाषा का समर्थन करते है । तथैव **'रसो रति प्रीतिर्भावो रागो वेग समाप्तिरिति रतिपर्याय'** की कामसूत्रीय मान्यता को भी स्वीकार करते है ।

श्रीसग्रहमाला के इन प्राप्त उद्धरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि ये पद्य किसी रीतिग्रन्थ की रचना से लिये गए थे और इसका विषय नायिका भेद होना चाहिये । यदि हम उद्धृत पद्योका अनुशीलन करे तो मुग्धा नायिका के प्रथम भेद वय सन्धि का वर्णन इस पद्य मे मिलता है –

'अब लगि हुतो लरिकाई ही को जोस सब
अब लखियत लरिकाई हू को छोर सो।'
कछू तेल सुगध की हौंस सी भई है मन
अँखिअनि होतु है चपलई को जोर सो ॥
'मोहन' के चित्त को हरनहार जोबन सो
चतुर छिप्यो है आनि छतिआ मे चोर सो ॥।
अब रहै है प्रगट हो सैसव तिमिर मॉझ।
होत आवै अग अग रूप ही को भोर सो ॥

दूसरा भेद नवलवधू का है। कवि मोहनलालने उसका उदाहरण दिया है –

'देखे दुरि जान लागी मुरि मुसकान लागी,
बतियॉ सुहान लागी, प्यारे के परस ते।
दूती आनि कान लागी, कुँजनि लै जान लागी,
पान रस खान लागी, रसी है छह रस ते ॥
तलबेली तान लागी, कसिबे को मान लागी
सखी अनखान लागी, "मोहन' दरस ते।
रूप अधिकान लागी, दिन और बानि लागी
आन दिन आन लागी, बारह बरस ते ॥'

कविराज 'मोहन' ने नवलवधू की आयु १२ वर्ष की मानी है, अत' वय सन्धि की अवस्था इसके पूर्व की ही होगी। 'नवलवधू' मे भोज्यरस षाडवादि की रसचर्वणा से रस–निष्पत्ति का समावेशकर कविराज शिरोमणि मोहनलाल ने नायिका मे रसरगतरग की नई कल्पना की है।

तीसरा भेद नवयौवना मुग्धा का है, जिसे उनके शब्दो मे सुनिये –

'मृगमदसार घनसार औ सुगधसार
सभ मधि काम हठि हाथ सो बनाई है।
कुदन चपक चारु केसरि तड़ित कहा
अति तनु तन छबि अधिक लुनाई है ॥
अगन की उपमा तिलोक में न सोधि मिले
हारि गई अधर ते जेतक मिठाई है।
आँखिन में पैठि जाइ मन मे रहै समाइ
ऐसी कछु जोबन की झलकति झाई है ॥'

इसके बाद के छन्द कदाचित् अप्राप्त है।

'खडिता धीरा नायिका' का यह उपालभ भी विचारणीय है –

'जावक भाल बिना गुन माल
सुलोचन लाल कहाँ निसि जागे ?
पीक सुगाल घुमोहि सी चाल
गोपाल बने न बनावत बागे ।।
रीझि सुवाल भई खुसहाल
कछू लखि ओठनि अंजनु लागे ।
साँचि कहौ समुझाइ के मोहन
मोसो पिआ ! किन हो अनुरागे ? ।।'

– त्रिवली वर्णन –

'औरनि यैसि करौं वनिता
विधि यौ कहि तीनि तिलाक सी काढी ।
मैन अरोहन को नवजोवन
कैधो क ी हैं निसैनी सी ठाढी ।
कै कटि टूटन त्रास बँध्यौ
गुन के कर तार की अगुलि गाढी ।
सो है सुजान त्रिया त्रिबली
कैधो मोहन प्रेम तरंगनि बाढी ।।'

नायिका के 'मुख वर्णन' मे 'मुख राग' 'मुख सुबास' के साथ 'शीतला दाग भरे मुख' का वर्जन भी अछूता न रहा । 'देव', 'दिवाकर', 'नाथ', 'शिवनाथ', 'भूपति' के ऐसे वर्णनो के साथ मोहन कवि का यह वर्णन भी मिलाइये –

'शीतला के दाग साधि शुभ लगन मुहूरत अवध बाँधि
त्रिभुवन जीतबे को चक्र उपजाये हैं ।
कैधो पाँति लालन की लागी विधुमंडल मे
मंडल अखडल के तन मन भाये हैं ।।
योवन दिनेश के उदय मैं खुल्यो कजनाल
तापै मनौ ओस के कनूका बिथराये हैं ।
मोहन' बशीकरण के जत्र लिखि राखे कैधो
'दाग शीतला के मुख ऊपर सुहाये हैं ।।'[१]

---

१ परमानन्द सुहाने ' नखशिख हजारा पृ १०५ पद्य - १

'मत्रसाधना' के सकेत इस उदाहरण मे मिलते है। आचार्य विश्वनाथ प्रसादमिश्र का कथन है कि 'अनुष्ठान और मत्रसाधना' के प्रभाव से मोहनलाल ने राजन्यवर्ग के बहुत से लोगो को अपना शिष्य बनाया।[1]

क्षेमनिधि – मोहनलाल के लघुभ्राता थे। प नकछेदी तिवारी ने मोहनलाल को जनार्दन भट्ट का तृतीय पुत्र लिखा है। कवि पद्माकर के वशवृक्ष मे क्षेमनिधि को ज्येष्ठ, मोहनलाल को द्वितीय तथा गुणधर को तृतीय पुत्र लिखा है। पं लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ने[2] मोहन भट्ट को ज्येष्ठ, क्षेमनिधि को मध्यम तथा गुणधर को कनिष्ठ पुत्र माना है। परन्तु खोज करने पर यह ज्ञात हुआ कि क्षेमनिधि मोहनलाल के लघु भ्राता थे। तथा श्रीकृष्ण सबसे छोटे थे। सुजान चरित मे इन्हे 'खेम' तथा डॉ. ग्रियर्सन ने इन्हे 'छेम' लिखा है, जो 'क्षेम' का अपभ्रश रूप है। डॉ ग्रियर्सन के अनुसार 'क्षेमनिधि' का जन्म सन् १६९८ ई[3] है। सर्वेक्षण २४७ के अनुसार ये छेम या क्षेमनिधि पद्माकर के चाचा कहे गये है, १६९८ ई (सवत् १७५५) इनका रचना काल कहा गया है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के 'साहित्य का इतिहास दर्शन' ग्रन्थ मे इसीका अनुमोदन है।[4] क्षेमनिधि का जन्म सवत् १७४५ के लगभग तथा उनका रचना काल १७८० के लगभग मानना चाहिये। पो कण्ठमणिशास्त्री ने इन्हे दतिया नरेश के आश्रित कवि सागर निवासी कुमारमणि का शिष्य बतलाया है तथा बुधवार, आषाढ शुक्ल ८ सवत् १७८२ के श्रीमद्गुरु कुमारमणि लिखितानुसारे श्रीसक्षेप भागवतामृत के श्रीकृष्ण चैतन्य चरित के श्रीकृष्णामृत नाम पूर्व खड को 'नेत्राङ्कसिन्धुसिन्धुज (१७९२) मे क्षेमनिधि द्वारा लिखित पुष्पिका का सकेत दिया है।[5] ये स्वय भी कवि थे। इनका यह छन्द यहाँ उद्धृत किया जाता है –

---

१ पद्माकर ग्रन्थावली (२०१६) पृष्ठ ४२

२ कवि पद्माकर अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर (२०२२) पृ १०

३ ग्रियर्सन हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (१९६१) पृ ४२, पृ. २०५, २४८

४ साहित्य का इतिहास दर्शन (प्रथम सस्करण) सख्या १४४ पृ १७३

५ पो० कण्ठमणिशास्त्री रसिकरमाल (स १९९४) पृ १० तथा मिश्रबन्धु विनोद ' द्वितीय भाग पृष्ठ ५७८.

रचना –

'मुकुट लटक कान कुंडल डुलत कर,
झिलमिल पीत पट बसन बसन पर ।
'छेम' छवि निरख निरख हरिजू पै करें,
हरख हरख बरसत हैं सुमन सर ।।
सोऊ फन फेरि फेरि फुफ्करत बार बार,
थेई थक था र थो र चाँपत चरन तर ।
दै दै करताली बहुताली यों उताली अति
आली बनमाली नाचै काली के फनन पर ।।'

इनकी मृत्यु के विषय मे कुछ पता नही चल सका ।

श्रीकृष्ण – मोहनलाल के ये सबसे छोटे भाई थे इनके विषय मे भी कोई जानकारी प्राप्त न हो सकी ।

'सागर तू गुन आगर, सुरस समास ।
पद्माकर–यश–सौरभ, छबि आवास ।।
कवि–कोविद सद्वैद्य–रत्न का कोष ।
मध्यदेश का प्रतिभा मुकुर अदोष ।। '

– पांडेय लोचन प्रसाद

पद्माकर का जीवन-वृत्त

परिचय :

श्री मधुकर भट्ट की सातवी पीढी मे कविवर पद्माकर का जन्म हुआ । कविराजशिरोमणि मोहनलाल भट्ट के ये ज्येष्ठ पुत्र थे ।

तिहि तनुज सुपद्माकर कवीन्द्र ।
सुर नर सुभारती कुमुद चन्द्र ।।
भूपति गुमानसिंह सुन पुरान ।
दिय ग्राम दुरई बाँदा सुथान ।।

सागर नरेश आभा उदार ।
दीन्हे मतंग हय द्रविण भार ।।
अम्बर अमोल भूषण विशाल ।
सुरवृक्ष सदृश कीन्है निहाल ।।

जयनगर भूप मनि श्रीप्रताप ।
दिय ग्राम धाम धन अति अमाप ।।
दतिया नरेश बुन्देल वीर ।
महिपाल परीछित समरधीर ।।

तिहि सुजस गाय लिय ग्राम धाम ।
व्है कर अजाचि विख्यात नाम ।।
जिहि किय कवित्त बहु काव्य ग्रन्थ ।
श्रीरामचरित वाल्मीकि पथ ।।

जप तप कै चुक्यौ* . .

दोहा

श्रीपद्माकर सुकवि को
कविता सुरसरि-धार ।
फैली छिति पर छीर सी
छीरधि पारावार ।।

---

* छन्द २४ प्रकीर्णक . पद्माकर ग्रन्थावली प विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृष्ठ ३१०.

कवि पद्माकर के पौत्र कवि गदाधर भट्ट कृत (कैसरसभा विनोद) के तृतीयसर्ग मे दिये गये वशावलीवर्णन के ये पद्य आधिकारिक रूप से मान्य है। उनके दूसरे पौत्र विद्याधरने भी कवि पद्माकर के पितृत्व, व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय इन शब्दो मे लिखा है –

'तिनके सुवन महिमडल वुदेलखड मडन सभा के देश देश गेह ग्रामा है।'

तथा

'पद्माकर पद्मानिलय काव्यकलाकुशलेश।'

जन्मसवत् तथा जन्मस्थान

कवि पद्माकर का जन्म सवत् १८१० तद्नुसार सन् १७५३ है और यही सर्वमान्य है, यद्यपि शिवसिंह सरोज तथा विश्वकोष मे इनका जन्म सवत् १८३८ दिया गया है। जन्मस्थान के विषय मे मथुरा, पन्ना, बादा, सागर इन चार स्थानो का अनुमान किया जाता है। 'मथुरा' के जन्मस्थान होने का अनुमान 'रामरसायन' के काडो की पुष्पिका से तथा 'जगद्विनोद' के प्रकरणो की पुष्पिका मे प्राप्त **मथुरास्थ, मथुरास्थाने, मथुरास्थायि,**[१] शब्दो से लगाते है। परन्तु 'जगद्विनोद' तक मे 'सचारीभाव प्रकरण' की पुष्पिका मे तथा विरुदावलियो, पद्माभरण, गगालहरी आदि ग्रन्थो की पुष्पिका मे यह शब्द नही मिलता। 'आलीजाहप्रकाश' काव्य की पुष्पिका[२] मे यदि 'मथुरास्थ' शब्द मिलता है, तो प्रबोधपचासा मे **इतिश्री बादावासी-मोहनभट्टात्मज** लिखा मिलता है। इन स्थानवाची शब्दो को मोहनभट्ट का या पद्माकरभट्ट का सूचक मानना चाहिये, यह भी स्पष्ट नही होता। फिर इन शब्दो से उनके जन्मस्थान की बात मालूम नही होती। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है 'जो लोग मथुरास्थ या मथुरास्थायि शब्द के कारण पद्माकर को मथुरा का रहनेवाला मानते है, वे भ्रम मे है।[३] सागर-गजेटियर मे इन तैलग ब्राह्मणो को गोकुलस्थ[४] कहा गया है। 'मथुरास्थ' और 'गोकुलस्थ' शाखाओ के नामाभिधान पर पृष्ठ ३ पर लिख दिया गया है। पन्ना को जन्मस्थान माननेवालो ने पद्माकर के जन्मसवत् १८१०

---

१ जगद्विनोद सपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र। रामरत्न पुस्तक भवन।

२ पद्माकर ग्रन्थावली। काशीनागरी प्रचारिणी सभा (२०१६) पृ. १९

३ तत्रैव 'प्रस्तावना पृ ४१ फुटनोट।

४ पद्माकर की काव्य साधना पृ. १८ फुटनोट

को लेकर मिश्रबन्धु द्वारा कथित वाक्य '**फिर संवत् १८०४ में पन्ना के महाराज हिन्दूपति के यहाँ जाकर उनके मन्त्रगुरु हुए और उन्होने इन्हे** (मोहनलाल को) **पाच गांव दिये,**'[1] पर विश्वास कर लिया है, परन्तु हिन्दूपति का पन्ना का महाराज बनना राजा अमानसिह (सन् १७५२-१७५८) के वाद कहाजाता है। वे सवत् १८१५ मे अर्थात् पद्माकर के जन्म के पाच वर्ष बाद पन्ना मे आये। वैसे तो महाराज छत्रसाल के राज्य मे पन्ना, वादा और सागर तीनो ही स्थान थे जो उनके वाद तीन पुत्रो मे जगतराज, हृदयशाह तथा वाजीराव मे क्रमश वाट दिये गये थे। समीप होने के कारण इन तीनो में एक दूसरे से उतना अलगाव भी नही है यद्यपि वादा उत्तर प्रदेश मे है और सागर तथा पन्ना मध्य प्रदेश मे। वादा से सागर अव भी वससर्विस है। वादा को जन्मस्थान माननेवालो मे प नकछेदी तिवारी और उनके आधार पर मिश्रवन्धु, प रामचन्द्रशुक्ल तथा प हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि है। उनका यह भी अनुमान है कि मोहनलाल जी वादा नगरमें उत्पन्न हुए, पर इसका कोई ठोस प्रमाण नही मिलता है। लाला भगवानदीन ने लिखा है 'पर हमे पूर्ण अनुसधान से ज्ञात हुआ है कि जिस समय पद्माकर का जन्म हुआ उस समय पद्माकर के पिता मोहनभट्ट मध्यप्रदेशान्तर्गत सागर (वडा सागर) मे रहते थे और वही पद्माकर का जन्म हुआ।'[2] काशीनागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[3], सागर सरोज[4], बुदलखड का इतिहास[5], मध्यप्रान्तमरीचिका[6] आदि ग्रन्थो मे सागर को ही पद्माकर का जन्मस्थान माना है। प मोहनशर्मा कहते है रीतिग्रन्थकार आचार्य कवीश्वरो मे पद्माकर का स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ है। कई लोग इन्हे वादा का सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयास करते है। सागर मे इनका जन्मस्थान अभीतक है।[7] मध्यप्रदेश हिन्दीसाहित्य सम्मेलन ने इसी स्मृति-चिन्ह मे सागर मे चकराघाट पर कविवर पद्माकर की आदमकद मूर्ति की स्थापना की है।[8] फिर उनके पौत्र विद्याधर की इस पक्ति

---

१ मिश्रबन्धुविनोद द्वितीयभाग पृ ८९० ।

२ हिम्मतवहादुर विरुदावली लाला भगवानदीन पृ २

३ 'He is generally put down as belonging to Banda but he was born in Saugor and remained in the court of Raja Raghuath Rao, Abasaheb for a long time'–P 123

४ सागर सरोज पृ ५८ तथा पृ ५० ५ गोरेलाल तिवारी बुन्दलखंड का इतिहास पृ २६८ ६ प्रयागदत्त शुक्ल मध्यप्रान्तमरीचिका पृ. २४७

७ काव्यकलाधर परिचयाक, मध्यप्रान्त की साहित्यसेवा मार्च १९३६.

८. मध्यप्रदेश हि. सा म मासिक विवरणिका, अंक ६, मार्च १९६६.

'मोहन सुलाल भये तिनके अनूप सुत
सागरनिवासी सुखरासी गुणधामा हैं ।'

ने तो पिता मोहनलाल को सागरनिवासी कहकर वादा और सागर के विकल्प-सदेह को निरस्त कर सागर के जन्मस्थान होने की पुष्टि की है। सभव है पिता मोहनलाल जयपुरनरेश जयसिह के दरवार से भरतपुरनरेश सूरजमल या सुजानसिह के यहा रहने के वाद तथा पन्नानरेश हिन्दूपति के यहा आने के पूर्व सागर रहे हो और यही ननिहालमे पद्माकर का जन्म हुआ हो।

नाम

पुरातत्वविद् डा हीरालाल ने[1] सागर को पद्माकर का जन्मस्थान ही नही अपितु पद्माकर को 'सागर' का पर्याय मान लिया है और उनका असली नाम प्यारेलाल वतलाया है और आश्चर्य यह कि लाला सीताराम B A ने[2] Padmakar nom de guerre of Pyarelal of Banda कहकर इसका समर्थन भी किया है। यह कथन नितान्त काल्पनिक और भ्रामक है। मोहनलाल के तीन पुत्र थे, ज्येष्ठ पद्माकर, मझले कमलाकर[3] तथा कनिष्ठ प्यारेलाल। अपनी प्रयाग-यात्रामे मैने अपने वहा के पडे (मोरपखी) की पुरानी वहियो को देखा तो वहा मैने पढा था कि पद्माकर और प्यारेलाल दोनो ने एक ही समय तीर्थराज प्रयाग की यात्रा की तथा पर्व पर वेनीमाधव का तीर्थस्नान किया। दुरई गाव के पुराने सरकारी कागजो मे प्यारेलाल की मृत्यु के वाद उनके पुत्र दिनकर[4] का नाम दाखिल-खारिज मे पाया जाता है। इन के दो पुत्र वालगोविन्द तथा गोरेलाल[5] थे जो सन् १८३३ मे जीवित थे। अत पद्माकर को प्यारेलाल या प्यारेलाल को पद्माकर समझ लेना कपोल-कल्पना है। कवि पद्माकर ने अपना नाम स्वय मुख से कहा है :-

"नाम 'पद्माकर' डराउ मत कोऊ भैया
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।'
'सुजस प्रकासी 'पद्माकर' सुनामा हौं

---

१. डॉ. हीरालाल : सागरसरोज पृ ४१ तथा काशीनागरी प्रचारिणी सभा की ग्यारहवी खोज रिपोर्ट पृ २३

२ लाला सीताराम A brief History of Hindi literature P 11

३. मरहटा, बुदेला और सरकार की अमलदारी से पद्माकर व कमलाकर दोनों हकीकी भाई शरीक है- परवाना १५ जनवरी सन् १८१५ ई.

४, ५ दाखिलखारिज अल मरकूम १९ जनवरी सन् १८२७ व आइनहूम, कानूनदोयम, नकल शिजरा निस्वतनामा माफीदारान मौजा दुरई आईनहूम जिल्द सन् १८३३.

पर देखना यह है कि वे लिखते कैसे थे ? उनका लिखा 'द' प्राचीन होने के कारण अन्त मे बाई ओर थोडा गोल घूमता था जिसे 'दु' भी पढा जा सकता है। इसीलिये कही 'पद्माकर' तथा कही 'पदुमाकर' लिखा पढा जाता रहा है।

शिक्षा-दीक्षा

वशपरम्परा के अनुरूप ही कवि ने सस्कृत तथा प्राकृत भाषाओ का तथा उनके साहित्य का अध्ययन किया था, तभी तो वे अपने परिचय मे **'सस्कृत प्राकृत पढौ जू'** कहते है, उनका तो यह भी कथन था कि **'पिंगल अमरकोष जीतत जहाज है'**। अपने पितृचरणो से प्राप्त शक्ति, निपुणता तथा अभ्यास लेकर कवि पद्माकर ने पितृ-सुख से वचित होते ही अपनी ६ वर्ष की नववय मे अपना काव्यारभ आरभ किया।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ और आश्रयदाता

बुन्देलखडकेसरी महाराजा छत्रसाल द्वारा पिता मोहनलाल का आचार्य माना जाना एक ऐसा सबध था जिसके कारण पद्माकर का मान सन्मान बुन्देल-खड के राजाओ द्वारा होना सरल सभव था। महाराज छत्रसाल का विस्तीर्ण राज्य अब तीन भाइयो मे बाँट दिया गया था। '**पन्ना**, का राज्य इन दिनो महाराज हिन्दूपति के अधीन, '**सागर**' का राज्य बाजीराव पेशवा, तथा '**जैतपुर, चरखारी, बांदा**', '**अजयगढ**' राज्य जगतराज के अधीन थे। पन्ना मे इन दिनो अनिरुद्धसिह और सरमेदसिह के बीच तथा चरखारी मे गुमानसिह[1] और भाई खुमानसिह मे वैमनस्य बढता जा रहा था। पद्माकर पिता की मृत्यु के बाद पन्ना से अजयगढ चले आये, जहाँ उनके निकट सबधी रहते थे। प्रश्न यह था कि उत्तराधिकार को लेकर भाई-भाई के बीच ऐसे झगडे चल रहे थे कि आश्रय कहाँ लिया जाय ? जगतराज ने चरखारी की गद्दीपर अपने द्वितीय पुत्र कीरतसिह[2] को युवराज बना दिया था, पर उसकी मृत्यु पिता से पहले होगई। जगतराज की मृत्यु के समय उनके तीसरे पुत्र पहाडसिह उनके पास थे, वे ही आगे चलकर राजकाज करने

१, २. 'गुमानसिंहो राजा ऽभूत् कीर्त्तिसिंहतनूद्भव'।
बादाख्ये पत्तने रम्येनत्सुतो दुर्गसिंहक'॥

— प्रतापवशार्णव

लगे। अपनी बीमारी में वे 'कुलपहाड' आ गये। कुलपहाड 'अनूपगिरि का जन्मस्थान था। इसी कुलपहाड के समीप वह कुँवरपुर नामक ग्राम है जिसे 'सुँगरा' कहा जाता है। 'अर्जुनसिंह' के पिता यही के जागीरदार थे। पहाडसिंह ने अपने पुत्र गजसिंह को 'जैतपुर' राज्य, अपने भतीजे गुमानसिंह को 'अजयगढ और बाँदा' राज्य तथा छोटे भतीजे खुमानसिंह को 'चरखारी' राज्य बाँट दिया। अर्जुनसिंह पहिले चरखारीनरेश खुमान सिंह के यहाँ नौकर हुए, परन्तु अनबन हो जाने के कारण ये अजयगढनरेश गुमानसिंह के यहाँ आगये। पानीपत युद्ध में सागर के सूबेदार गोविन्दपत बुन्देले, पेशवासुत विश्वासराव, मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ, मस्तानी-पुत्र शमशेरबहादुर सभी खेत रहे और अवध के नवाब शुजाउद्दौला के हाथ विजय लगी। बुंदेलखड में राजवश के भाई-भाई के घरेलू झगडे देख शुजाउद्दौला ने अन्तर्वेद पर अपना अधिकार कर लेना चाहा। वे अनूपगिरि के रणकौशल से पानीपत युद्ध से ही परिचित थे अत उन्होने अपने सरदार करामात खाँ के साथ अनूपगिरि को भी बुन्देलखड पर आक्रमण करने के लिये भेज दि ।

महाराज गुमानसिह और कवि पद्माकर

बुन्देलखड के बादा के समीप इस सेना ने आक्रमण कर दिया। यहाँ उस समय महाराजा छत्रसाल के वशज महाराज गुमानसिह राज्य कर रहे थे। पन्नानरेश हिन्दूपति ने इस युद्ध मे सहायता दी। दिसम्बर सन् १७६२ मे तेंदुवारी[1] के मैदान पर (बादा के नवाबसाहब के तालाब से पाच छह मील दूरी पर) कालिंजर-मार्ग पर अजयगढनरेश महाराज गुमानसिह ने युद्ध किया। पद्माकर ने इस युद्ध का – ऐसा लगता है– आँखो-देखा हाल कहा है। इस युद्ध मे महाराज गुमानसिह ने नवाब शुजाउद्दौला के सेनापति करामातखाँ को मारा था।

अजयगढनरेश महाराजा श्री गुमानसिह, के रूपसौंदर्य को कवि पद्माकर ने इन शब्दो मे लिखा है–

चन्द्र सम वदन करन सम इन्द्रवधू सम
पग अरविन्द दल दूषन न हेरतीं, ।

---

१ डॉ टीकमसिंह तोमर हिन्दी वीरकाव्य, पृ ३४१, ३३८ तथा
गोरेलाल तिवारी . बुंदेलखड का सक्षिप्त इतिहास पृ. २५७ तथा
प विश्वनाथप्रसाद मिश्र · पद्माकर ग्रन्थावली पृ ८३, ८४,

छूटे अलकन पीक भरे पलकन जे
उतरि पलकन ते न भूमि पाउ फेरती, ।।
'पद्माकर' कहै श्री गुमान तेरे त्रासन सो
अरिनृपरानी ते परानी ही सों टेरती, ।
अदर ही अदर रहै चन्द रवि देखे नाहि
तेऊ गिरि वदर की कदरन गेरतीं. ।।

तेदुवारी युद्धवर्णन.

१

पंचम गुमान हका होत बडे बैर बका
भागि भागि दुकै लका शका को करत है, ।
जाहीके अतका भये दुंदुभि के डका सुनें
नेक हू झमका एके पाइन परत है, ।।
तन सट्त न नका चलबे की ती सनका
पाइ इक जे लरका ते समुद्दन तरत है ।
रहत झमका जे मवासी हू धमका सुनी
'पद्माकर' डका सुनि वीर वका ते डरत है ।।

२

फरक फरक श्री गुमान दल भार चलै
ठरकि ठरकि जात सद्दन अशेष है, ।
सरकि सरकि जात सिधुन जमात हू तैं
मरकि मरकि जात होत जामहू अलेख है,
बरकि बरकि जात 'पद्माकर' बैरिबर
थरकि थरकि परै छितिधर विशेष है, ।
तरकि तरकि पिट्ठ परत कन्ट्ठ हू की
खरकि खरकि धर धरकि सुदेष है. ।।

३

बाहन फरक्कै जहा लागै ढाल ढक्के
तोपन के फक्के जहा माचै एक तान, ।
तोपन तरक्कै बर सरन सरक्कै
खरे तीरन तरक्कै चलै बीच घमसान, ।।

'पद्माकर' पक्के वीररस छक्के
बांधि टक्कन में टक्के लेत टक्कि बलवान, ।
मुंड हैं ढरक्कैं धीर धौसन धरक्कैं
तहां पंचम गुमान झुकि झारी किरवान ।।

४

जहां धर फटे फर मडल में पटे परे
अध अध बटे कठ लागे घर्घरान,
पजन पटकि भूमि झुकि झुकि झूमि लागे
धूमि धूमि धौसा वीर घुम्मरि निसान,
कहूं संगर घुमड मांडे धावत कवध्र चाडे
धुनि पे ऐंड़ धरे खांडे बिन म्यान,
तहां लमकि गुमानसिंह छबि सों छलकि
नरसिंह लौं झलकि झुकि झारी किरवान,

५

जहां कहूं सत्थ कहूं फरकत कटे हत्थ
सूर समरत्थ कढे भेदि भासमान,
कहूं कुंडनि समेत पुड कोचनि समेत रुंड
पक्खर ससेत हय झुड कतलान,
उठीं धाइन भभूके जाति आगि कैसी ऊकें
भूत फूकनि पै फूकैं दै दै होत गलतान,
तहां लमकि गुमानसिंह छबि सो छलकि
नरसिंह सौ झलकि झुकि झारी किरवान,

६

जहा करामात मार लीन्हो, शंकर को मुंड दीन्हो
विक्रम विदित कीन्हो जाहिर जहान,
शत्रु भानु भेदि कढे सुभट उछाह बढे
बरखे विमान चढे फूले गीरवान,
मारे काल से कराल जारे जवन के जाल एके
भाजे कदरान में बचाइ तन मन प्रान,
तहाँ लमकि गुमानसिंह छबि सौं छलकि
नरसिंह ती झलकि झुकि झारो किरवान,

परे पजर के ठट्ठा करै ड फिन ज्यों ठट्ठा भूमि
मासन के गटठा लागे पग पग रवान,
भभके न मुंड कहू स्रोनन के कुड कहू
मुडन के झुड लागे उतरान,
कहू करके अहार डिडकारे ममहार
नाचे दै दै करतार निकहारिन की गाइ तान,
तहाँ लपकि गुमानसिंह छबि सौं छलकि
नरसिंह लौं झलकि झुकि झारी किरवान ।

'किरवान' का यह वर्णन भी 'किरवान' छन्द में किया गया है । यह छन्द ३२ वर्ण का होता है । लक्षण है –

"वर्ण आठ चार सार, अत ग ल निरधार
जुद्धप्रसग विचार, वृत्त कहु किरपान"

अन्त में नकार का प्रयोग छन्द का कर्णमधुर बनाता है । नववर्षीय[1] पद्माकर के ये छन्द उनकी प्रथम रचना के है ।

महाराज गुमानसिंह की प्रशसा में लिखे गये इन उपर्युक्त छन्दो मे 'गुमानसिंह' को 'गुमान पचम' विशेषण से अभिहित आर अभिषिक्त करना महाराज छत्रसाल के वश की मानप्रतिष्ठा की स्थापना करना है । कवि 'लाल' ने जहाँ महाराजा छत्रसाल को **'पचम नृप को बंस बखानौं'**[2] कहकर वीर बुन्देला का स्मरण किया है, कवि पद्माकर ने महाराज गुमानसिंह को भी 'पचम गुमान' कहकर वीरभद्रसुत जगदास (पचम)[3] के वशज होने की महानता का स्मरण दिलाया है । और, यदि पचम शब्द को गुमानसिंह का विशेषण मान लिया जाय तो उसकी सार्थकता इस प्रकार होगी (१) महाराज छत्रसाल (२) जगतराज (३) कीरतसिंह (४) पहाडसिंह (५ गुमानसिंह

महाराज को इस वशपरम्परा की याद दिलाकर कवि पद्माकर ने मानो अपने पूर्वसबध की ओर सकेत किया है ।

बादा-अजयगढ नरेश गुमानसिंह और शुजाउद्दौला के द्वारा भेजे गये करामात खाँ के युद्ध के छन्दो मे गुमानसिंह को नृसिह (विदुआ) रूप में आरो-

---

१ अत १६ वर्ष की आयु में पद्माकर के प्रथम छन्द-रचना की बात अशुद्ध है
२. लाल छत्रप्रकाश छन्द-९ पृ० ४
३. तत्रैव, उनकी प्रशसा क छन्द पाढये पृ० ५ से ७ तक ।

पित किया गया है जो युद्धक्षेत्र 'तेंदुआरी' ग्राम के अभिधान की सगति से ठीक बैठता है। इसके साथ उनके तेदुआ+अरि रूप मे सहारात्मक शक्ति की प्रतिष्ठा भी करता है। फिर 'मुडन के झुड लागे कहूँ उतरान' शब्दावली से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शत्रु की सेना को दूर यमुना नदी तक भगा दिया गया था जहाँ से तैर कर उनको अपनी जाने बचानी पडी थी[1]। फिर छन्द ६ मे 'जहाँ करामात मार लीन्हीं, शकर को मुड दीन्हो' कहकर यह सिद्ध कर दिया कि यह गुमानसिंह का वही युद्ध था, जिसमें उन्होने 'करामातखाँ' को युद्धमे मारा था। यही से पद्माकर, कवि के रूप मे प्रथम बार उपस्थित होते हैं। उनकी कविता का आरभ वीररस के इन्ही छन्दो से होता है। 'पद्माकर पक्के सदा वीररस छक्के' शब्द से स्पष्ट है कि उन्हे वीररस के वर्णन मे ही आनन्द मिलता था। इस युद्ध मे अर्जुनसिंह पहिलोबार लडे थे और बडी वीरता से (नौने) लडे थे। इसी युद्ध के रणकौशल पर मुग्ध हो बादा के राजा गुमानसिंह ने इन्हे 'नौने' की उपाधि प्रदान की थी। अब पद्माकर कवि अजयगढ नरेश गुमानसिंह के आश्रित हो गये। महाराज गुमानसिंह ने बडी गुरुभक्ति के साथ सात दिन में उनसे महाभारत की कथा सुनी और कार्त्तिक शुक्ल प्रबोधिनी एकादशी सवत् १८३७ सन् १७८० के दिन कवि पद्माकर को बादा का दुरई ग्राम माफी मे दिया, जिसका पमाण है —

> **तिहि तनुज सुपद्माकर कवीन्द्र।**
> **सुरनर सुभारती कुमुद चन्द ॥**
> **भूपति गुमानसिंह सुन पुरान।**
> **दिय ग्राम दुरई बाँदा सुथान ॥ ८ ॥**[2]

और जिसकी सनद भी दी गई—

'मुसम्मी पद्माकर भट्ट बतौर माफी काबिज व दखीलकार हक्कियत है कि सवत् १८३५ बुन्देला अमलदारी मे मुलाजिम था। एक किता असल सनद एक राजा गुमानसिंह, दूसरे नवाब अलीबहादुर साहब के है।

— परवाना १५ जनवरी सन् १८१५

'मुसम्मी पद्माकर भट्ट को राजा गुमानसिंह वालिये अजयगढवाले ने बजिल्दोई खिदमत व बनाने कवित व दोहा व छन्द वगैरह यह मौजा लाखिराज माफ

---

१. बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास — पृ २५७

२ गदाधरकवि कैसरसभा विनोद कविवशावली वर्णन पृ० ८

मरकूउल-कलम किया गया -- मौजा हाजा को राजा गुमानसिंह ने सिर्फ वजिल्द उल खिदमत व हाजिर बाशी व बनाने कवित्त व दोहा वगैरह के कि फन शायरी मे पद्माकर भट्ट मूरिस माफादारान मशहूर व मारूफ था, माफ किया . '

— दरखास्त चन्दूलाल वगैरह मरकूम २६ सितम्बर १८५३

नोने अर्जुनसिंह और पद्माकर :-

महाराजा गुमानसिंह तथा अर्जुनसिंह के इस युद्धविजय के पूर्वही सिद्धि-प्राप्ति के हेतु अजयगढ मे ही सेनापति अर्जुनसिंहने पद्माकर द्वारा लक्षचडी का पाठ कराकर अपनी खड्ग सिद्ध कराई होगी और उन्हे अपना मत्रगुरु बनाया होगा। नोने अर्जुनसिंह की प्रशसा मे कहा जाता है कि पद्माकर ने 'अर्जुन रायसा'[1] नामक वीरकाव्य लिखा। परन्तु उसके दो छद ही प्राप्त हुए है, ये दानो छद अर्जुनसिंह की मृत्यु पर कहे गये है।

(१)

सूर-मुख नूर दै के, भूसुरनि दान दैके
मान दैके तोरा तुर्रा सिरपै सपूती को ॥
मांस मँसहारन अहारन अघाय
तरवार तन ताय दयो सुख्ख रनदूती को ॥
स्रोन दैके जोगिनिन भोग दै वरंगनान
मुड देके पारबतीपति मजबूती को ॥
मार दै अरिन अरजुन अरजुनसिंह
गयो देवलोक ओप दैके रजपूती को ॥[1]

उक्त छद मे 'तरवार तन ताय दयो सुख्ख रनदूती को' चरण इसी मन्त्रसिद्धि का प्रमाण है। इसी मत्रसिद्ध तलवार के बल पर नौने अर्जुनसिंह ने आगे छतरपुर के समीप 'गठ्यौरा' का युद्ध,[2] जो स्वर्गीय हिन्दूपति की दो सन्तानो अनिरुद्धसिंह और सरमेदसिंह के बीच हुआ था और जिसे बुदेलखड का

---

१ लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुर विरुदावली पृ १९. २०. पद्माकर ग्रन्थावली प्रस्तावना पृ ४२ तथा प्रकीर्णक छन्द २३, २२.

२ बुन्देलखंड का सक्षिप्त इतिहास पृ २३५ तथा पृ २५७. डॉ. टीकमसिंह तोमर के हिन्दी वीर काव्य पृ ३४२ से ये सवत् नहीं मिलते।

'महाभारत' कहा जाता है, जोता और अनिरुद्धसिंह के दीवान बेनी हजूरी को मार डाला। इधर सन् १७८२ मे चरखारी के राजा खुमानसिंह और उनके भाई अजयगढनरेश गुमानसिंह के बीच युद्ध छिडगया। यह युद्ध 'पडवारी' नामक ग्राम के निकट हुआ था। इसमे नोने अर्जुनसिंहने अपने पुराने स्वामी खुमानसिंह को इसी तलवार के घाट उतार दिया था। इन युद्धो का परिणाम यह हुआ कि सरमेदसिंह के सेनापति कुँवर सोनेशाह पँवार ने छतरपुर[1] मे अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया और नोने अर्जुनसिंह ने पन्ना राज्य का अधिकाश भाग सन् १७८५ के बीच बादा[2] में सम्मिलित कर लिया। हिम्मतबहादुरविरुदावली की यह पक्ति 'फिरि मुलक नृप छतसाल को दाबो प्रबल रिपुजाल का'[3] इसी छीन-झपट का स्मरण दिलाती है। लाला भगवान-दीन ने राजा गुमानसिंह की मृत्यु का सवत् १८३५[4] दिया है जो गलत है, कारण कि सवत् १८३७ मे राजा गुमानसिंह ने कवि पद्माकर को दुरई ग्राम माफी मे दिया, जिसकी सनद अब भी प्राप्त है। एडविन एटकिन्सन के अनुसार उनकी मृत्यु सन् १७८७ में हुई है।

नोने अर्जुनसिंह की प्रशसा में प्राप्त दूसरा छद है :—

तुपक तमचे तीर तोरा तरवारन तें
काटि काटि सेना करी सोचित सितारे की।
कहै 'पद्माकर' महावत के गिरे कूदि
किलकि किलाएँ आयो गज मतवारे को॥
हेरन हँसन हरषन सान-घन वह
जूझन पँवार वीर अरजुन भारे को।
जंग मे न थाका फन्यो सूरन में साका जिंह
ताका ब्रह्मलोक को पताका लै पँवारे की॥[5]

उक्त छन्द में अर्जुनसिंह को 'सानघन' कहकर उसी खड्गसिद्धि की याद की गई है। दूसरे, इस छन्दमे 'उस सितारे की सेना' का उल्लेख है, जिसे

---

१ बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास: पृ २३६–२३७

२ डा टीकमसिंह तोमर' हिन्दी वीरकाव्य पृ ३४३.

३. हिम्मतबहादुर विरुदावली छद १६. ५ ६

४ लाला भगवानदीन. हिम्मतबहादुर विरुदावली, प्रस्तावना पृ. १६.

५ पद्माकर ग्रन्थावली. प्रकीर्णक, छन्द २२. पृ. ३०९.

अलीवहादुर ने नाना फडनवीस के द्वारा पेशवा से प्राप्त की थी, ये दोनो ऐतिहासिक सकेत अर्जुनसिंह की वीरता के सूचक है ।

जयपुर नरेश माधवसिह और कवि पद्माकर

कवि पद्माकर अब जयपुर की ओर गये । इन दिनो वहा महाराजा माधवसिंह राज्य करते थे । जाट नरेश जवाहिरसिंहने सन् १७६८ के लगभग जयपुर नरेश महाराज मावोसिह पर पुष्कर स्नान के बहाने चढाई कर दी थी । कवि पद्माकर के इस निम्नलिखित पद्य में इसी किसी युद्ध मे रत माधवसिंह का जो वर्णन मिलता है वह माधवसिह के सौन्दर्य, रूप और उनके स्थूलकाय की दृष्टि से सच्चा ही निखरता है । वे थे भी इतने स्थूल और मोटे कि यदि वे वीररस से उत्साहित हो हाथी के हौदे पर बैठते होगे तो उनका शरीर ठीक ही है—हौदे मे अमाता न होगा । कवित्त है :—

जाही ओर सोर परै घोर घन ताही ओर
जोर जग जालिम को जाहिर दिखात है ।
कहै 'पद्माकर' अरीन की अवाई पर
साहब सवाई को ललाई लहरात है ।।
परिघ प्रचड चमू हरषित हाथी पर
देखत बनत सिंह [माधव][1] को गात है ।
उद्धत प्रसिद्ध जुद्ध जीति ही के सौंटा हित
रौंदा ठनकारि तन हौदा में न मात है ।।

— जगद्विनोद (१९९१) छन्द ६८६, पृ १२९

इसी वर्ष बैरीसाल ने भाषाभरण[2] नामक अलकार ग्रन्थ लिखा है और कवि पद्माकर ने न केवल इसके नाम साम्यपर किन्तु उसके छन्दो को उद्धृत कर 'पद्माभरण' ग्रन्थ लिखा है । कवि पद्माकर के पिता मोहनलाल का सम्बन्ध जाट नरेश सुजानसिंह से हो चुका था, उनकी प्रशसा मे लिखे गये सूदन कृत सुजानचरित मे पिता 'मोहन', काका 'खेम' दोनो कवि—वन्धु का नाम आता है तथा सूदन के युद्ध वर्णन मे '**जैसी बैरीसाल सुल जुझ्यौ**

---

१. प. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने आगे 'सिंह' के स्थान पर (राम) हस्तलेख के आधार पर 'नद' शब्द कर दिया है जिसे मैं अशुद्ध समझता हूँ । महाराज माधवसिंह के चित्र से उनका रूप और वह डीलडौल स्पष्ट हो जाता है ।

२ 'शर कर वस विधु वर्ष' अर्थात् संवत् १८७५.

मुहकम है' तथा 'अरिसाल सुबैरीसाल सुत'[१] सकेत मिलता है, यदि अरिसाल के पिता ये बैरीसाल 'भापाभरण' के रचयिता है तो कवि पद्माकर का भापाभरण ग्रन्थ पढना यही कही सभव है ।

रघुनाथराव पेशवा के दरबार मे कवि पद्माकर

बक्सर का युद्ध तथा सालबाई की सधि इतिहास की दो प्रमुख घटनाएँ मानी जाती है–पर इस से भी अधिक महत्त्वपूर्ण अँगरेजो की बढती दुर्नीति है, जिस पर इतिहासकारो का ध्यान कम गया है । बक्सर युद्ध मे **अनूपगिरि** ने अपनी जाँघ मे घाव खाकर नवाब शुजाउद्दौला की जान बचाई और 'हिम्मतबहादुर' की पदवी पाई तथा सिकदरा और बिदकी के परगने जागीर मे पाकर **रजधानिया गोसाई** की उपाधि पाई । इधर जाट-नरेश जवाहिरसिंह से पहले तो हिम्मत बहादुर से मेल हुआ,

> **तहँ जाट जवाहिर सिंध है । मिलियौ जवाहिर सिंह है ।।**
> **सनमान बहुत बढ़ाइ कै । निज प्रीत अति दरसाइ कै ।।**[२]

परन्तु शीघ्र ही वैरागियो के भडकाने से दोनो मे लडाई छिड गई –

> **'पैठ्यौ सदल मह जाट के । जनु खुले जमपुर फाटके'**[३]

हिम्मतबहादुरने जवाहिरसिंह को पराभूत कर दिया । रघुनाथरावने हिम्मतबहादुर ने दोस्ती करना चाही और हिम्मतबहादुरने रघुनाथराव पेशवा से ।

छद श्रवण सुखद २

> **'इत नृप देव देव सहाइ । जिल्ले ग्वालियर के जाइ ।**
> **तहँ रघुनाथराव प्रचड । जाहिर पेसवा बलिबंड ।।२१८।।**
> **तानै महतजी इह्निनाम । पठ्यौ सेधिया बलधाम ।।**
> **सूपा कछार पुनि भाडेर । ऐरछ अवर गैरह गैर ।।**
> **कैइक परगने तिह तीर । दीन्हे नेह कर जागीर ।'**

कवि पद्माकर रघुनाथराव उपनाम राघोबा के यहाँ सन् १७८४ के पूर्व गये होगे, जहाँ उन्हे एक हाथी, एक लाख रुपया और दस गाव प्राप्त हुए । मुझे तो ऐसा लगता है कि रघुनाथराव पेशवा की मैत्री के बल परही हिम्मत

---

१ सूदन सुजान चरित, पचम अक.

२, ३ अनूप प्रकाश पंचम प्रकाश छंद १९९, २०३, २१८, २२०.

बहादुरने बुन्देलखड मे अपनी रणनीति निश्चित की होगी, फिर पेशवा के बल ही को तो लेकर वे दिल्ली सम्राट शाहआलम के पास तक पहुँचे होगे। हिम्मतबहादुर को रणसज्ज देखते ही तो कवि पद्माकरने यह छद कहा था –

> 'तीखे तेजवाही जे* सिलाही चढै घोडन पै
> स्याही चढै अमित अरिदन की ऐल पै।
> कहै 'पद्माकर' निमान चढै हाथिन पै
> धूरिधार चढै पाकसासन के सैल पै
> साजि चतुरंग चमूजग जीतिबे के लिए
> हिम्मतबहादुर चढत* फर फैल पै।
> लाली* चढै मुख पै, बहाली चढै वाहन पै
> काली चढै सिह पै, कपाली चढै बैल पै॥

ध्यान रहे कि रघुनाथराव की तोप का नाम भी **'महाकाली'** था। मिश्रबन्धु द्वारा दिया गया सवत् १८५६[1] अशुद्ध है, कारण कि राघोवा की मृत्यु सन् १७८४ तदनुसार सवत् १८४१ मे होगई थी। हिम्मतबहादुर का सबध पेशवा से चिरकाल तक बना रहा। वे उनके रत्नो के सरक्षक भी तो रहे। महादजी सिंधिया तथा हिम्मत बहादुर से स्नेह भी अच्छा रहा, सन् १७८४ मे सिंधिया जब दिल्ली की ओर गया तब हिम्मतबहादुर को साथ लेता गया और उसने मथुरा नगर को हिम्मतबहादुर के हाथो छोड दिया[2] हिम्मत बहादुर इस 'सूपाकछार' जागीर को पाकर प्रसन्न हुए पर बुदेलखड के इस भूभाग का स्वामी बन जाना अन्य के लिये ईर्ष्या का विषय बन गया। बुन्देलखड के सूबेदार बालाजी गोविद ने, जो नाना फडनवीस के विश्वासपात्र थे, हिम्मतबहादुरपर आक्रमण कर दिया 'अनूपप्रकाश' मे इस युद्ध का वर्णन **'सूपाकछार जुद्ध'** नाम से 'पचम प्रकाश' मे किया गया है –

> 'बालाजी गोविद के कृष्णाजी तहाँ ऐन।
> जुर पडित गाजी गजे, साजी साजी सैन॥[3]

---

* पाठान्तर 'औ', 'चढो जो', 'खाली

१ मिश्रबधु विनोद पृ ९०२, प रामचद्र शुक्ल पृ २९४ प विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ ४३, श्री शुकदेव दुबे पद्माकर कवि पृ २४, मोतीलाल मेनारिया राजस्थान का पिगल, साहित्य पृ १५५

२. ग्राट डफ लिखित 'मराठों का इतिहास' पृ ५९३–५९४

३. अनूपप्रकाश पचमप्रकाश छद २२३

हिम्मतबहादुर ने इस सूपाकछार-युद्ध मे विजय पाई । इधर रुहेला सरदार गुलामकादिर ने सन् १७८८ मे दक्षिण की पैदल फौजपर करारा आक्रमण कर दिया । विजय से मदान्ध हो उसने मुगलसम्राट् पर भी हाथ साफ करना चाहा । ऊपर मुगलसम्राट् अपने पर किये जाने वाले धोखे को समझ गया । डॉ टीकमसिंह तोमर का कथन है कि गुलामकादिर से दिल्ली की रक्षा करने के लिए शाह आलम ने अनूपगिरि को बुलवाया [1] । अनूप प्रकाश की ये पक्तियाँ

'जाहिर जहान को पनाह पातसाहि को
पनाह भयो भूपति अनूप है । [2] तथा

'खास सवारी शालगोल पर नृपति चढ़ाए
पातसाह उतसाहसहित दिल्ली आए ।[2]

इसका समर्थन करती है ।

'कछू काल पीछे गुलामकादिर सुदगा की ।
पातसाहि को पकर करी बेअदबी ताकी ॥
करि लोचन जुग भंग सकल भंडार सुलुट्टिव ।
अनुचित बात विचार नृपति सुनि दिल में दुख दिव । [2]

गुलामकादिर ने दिल्ली सम्राट् शाह आलम की आखे निकाल ली । यह कृतघ्नता देख अनूपगिरि ने पेशवा की फौज के स्वामी महादजी सिंधिया से दिल्ली सम्राट् की मुलाकात कराई ।

'पेसवा की फौज, वीर महंत जी सिंधिया ।
कर उपाइ मन मौज, ताहि साहि के हित मिले ॥' [2]
'यहि कहि लियाए भूप अनूप सधीर को ।
प्रबल महत जी महत सिंधिया बीर कौ ॥' [3]

'अनूपप्रकाश' मे कवि मान कवीन्द्र द्वारा अपने षष्ठ प्रकाश मे गुलामकादिर का वध [4] इन शब्दो मे वर्णित है –

---

१ डॉ टीकमसिंह तोमर वीरकाव्य · पृ ३३९
२ यह घटना १० अगस्त १७८८ के दिन की कही जाती है ।
२. अनूप प्रकाश षष्ठ प्रकाश छन्द - ३५२ से ३५६ तक
२, ३. अनूप प्रकाश स्वारी को युद्ध, गुलामकादर वध वर्णनम् ॥
४. यह वध १८ डिसम्बर १७८८ के दिन किया गया था ।

छप्पय

'तब गुलामक़ादिर हियकर बाध्यौकर पाछौ ।
स्वामिद्रोह अति उग्र पाप भुगतायौ आछौ ॥
अग अग तहँ छुरिन चीर तिल तिल कटवाए ।
निमिषहरामी अधम ताहि सरित पहुँचाए ॥
करिसाह प्रसन्न पटयल केहि मनसिब दीह दिवाइब ।
भूप अजूपगिर भूप सम कवन भूप किहि गाइब ॥

इस समय युवक माधवराव द्वितीय पेशवा पद पर आसीन था, जो महादजी सिंधिया तथा नाना फडनवीस के हाथो का खिलौना बनगया था, अगरेज अपनी यूरोपीय बटालियनो की सैनिक शक्ति तथा दुर्नीति और कूटनीति से प्रबल बनते जारहे थे । जयपुरनरेश प्रतापसिह से महादजी सिंधियाने सन् १७८७ मे **तूंगा युद्ध** मे करारी हार खाई थी, अत हार का बदला लेने के लिये कभी वे भी अगरेजो से साँठ गाँठ करने लगते, कभी नाना फडनवीस को पत्र लिखते । पेशवा उसी का पक्ष लेते जिसका पल्ला भारी होता । पेशवा के नामपर मराठो के उत्कर्ष की भावना पर महादजी सिंधिया की अभिसन्धियाँ होजाया करती । दूरदृष्टा नाना फडनवीस अपनी दूर प्रतिकूल परिस्थितियो मे अपने प्रबल आत्मसम्मान और अपने विश्वास से जूझ रहा था । महादजी, पेशवा को हर पल का साथी बनाये रखना चाहता था और अपनी आयोजनाओ में दृढप्रतिज्ञ नाना फडनीस पेशवा के हाथ से न निकलजाने के भय से आक्रान्त रहता था । युद्धबल मे महादजी सिंधिया और युद्धनीति मे नाना फडनीस दोनो कुशल थे । आपस मे उलझे रहने मे दोनो को मजा आता था, आतरिक अविश्वास मे दोनो जले भुने ही नही रहते वरन् अँतडियाँ निकाल लेने के दुश्मन बन जाते–पर यह निपटारा तलवार पर होनेवाला नही था । जनवरी सन् १७९२ मे महादजी, पेशवा के दरबार मे [1] दिल्ली से खिल्अत लेकर आये । 'The occasion was his visit to hand over to the Peshwa, the imperial patent, which made him the Wazirul Mutalik, Mahadji, being Deputy Wazir These honours had been made hereditary by the restored Shah-Alam with the patents of title came the nine robes of honour the jewels, the sword, shield, the seal, the pen-case, the ink stand, the fan of peacock feathers, the glided sedan chair, the palanquin, the horses, the elephants, the imperial

१ ग्राट डफ मराठों का इतिहास पृ ५९४

standard, crescents, stars and insignia of the fish and the sun, the honours due to perpetual viceregent of the empire "[1]

शाह आलम को दिल्ली का सिंहासन मिल गया और महादजी सिंधिया ने[2] गोसाई जाति की एक बडी संख्या को अपनी सेना मे स्थान दिया। ये गोसाई अम्बाजी इगले के संचालन मे रहते तो थे, पर चलते थे अपने ही सरदार हिम्मतबहादुर के नेतृत्व मे जो सेनानायक था और उनका आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक भी था। महादजी सिंधिया ने शाही सेना के साथ जयपुरनरेश प्रतापसिंह के द्वार पर कर-वसूली करने के लिये आक्रमण कर दिया तब महाराज प्रतापसिंह ने ऐसे समय अन्य राजपूतनरेशो की सहायता ली और स्वयं सैन्यसंचालन कर महादजी सिंधिया को 'तूंगा' युद्ध मे हरा दिया। कवि पद्माकर का यह छन्द यहाँ उल्लेखनीय है –

'जप गयो जट्टन, बिकट्टिन बिदार गयो
डारि गयो डारैं सब सिक्खन के सर की।
कहैं 'पद्माकर' मरोर गो मकासिन कौं
तोर गयो तारो तुरकान हूँ के तर कौं॥
भूपति 'प्रताप' जग जालिम सो रारि करि
हारि गयो सेंधिया भयो न घाट घर कौं।
जब्बर पटेल गयो जमहूके पास तऊ
तन ते न त्रास गयो 'तूंगा' के समर कौ॥'

सेंधिया ने निराश होकर नाना फडनवीस को करुणापूर्ण पत्र लिखा। पूना में एक सेना इसीके लिये तैयार खडी थी कि 'तूगा युद्ध' के पराभव के पूर्वही अलीबहादुर के संचालन मे भेजी जाय, परन्तु नाना फडनवीस की आन्तरिक इच्छा यह थी कि राजपूतो से पेशवा के नाम पर एक ऐसी संधि भी होजाय जो मराठो के प्रभाव क्षेत्र को तो बढादे परंतु उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी महादजी सिंधिया के प्रभाव को न बढने दे। मराठो मे कुछ लोगो का विश्वास था कि नाना का जयपुरनरेश प्रतापसिंह से ऐसा पत्र-व्यवहार भी चल रहा था और शायद इसीके कारण 'तूगा युद्ध' में पराभवोपरान्त सिंधिया का पीछा महाराज प्रतापसिंह ने नही किया।

---

1. Michael H. Brown Gwalior Today' Pages 8, 9

२. ग्रॉट डफ मराठों का इतिहास पृ ५८८ से ५९४ तक

सन् १७८२ मे सालबाई की सधि के परिणामस्वरूप ब्रिटिश एजेंट रेसिडेंट के रूप मे रियासतो पर छा गये। महादजी सिंधिया ने भी अगरेजो से सधि कर ली और डेविड एडरसन दतिया के समीप सिंधिया के केम्प मे राजदूत बनकर रहने लगे। इन दिनो दतिया[1] मराठो के आधीन थी, सिंधिया की फौजे यहा भी छुटमुट हमले करती रही। महादजी सिंधिया की महत्वाकाक्षा, दूसरी ओर तुकोजी होलकर के आडम्बरपूर्ण अधिकारसत्ता नये नये गुल खिलाती। अगरेजो की दुर्नीति कभी कभी दोनो को लडा दिया करती। समय पलटता है, महादजी सिंधिया को खबर मिली कि हिम्मतबहादुर गुप्त रूप से नाना फडनवीस के विश्वस्त सैनिक अलीबहादुर तथा होलकर[2] से पत्रव्यवहार कर रहा है। अनूप प्रकाश के अनुसार

तब नृपहि तिहि दरबार को निज भात भेज वुलाइय।[3]

हिम्मतबहादुर राजा दिलावरजग गगागीर, राजगीर, उत्तमगिरि, भट मानधाता, गौर ठाकुर अमानसिंघ ठाकुर कसराज सेगर, छत्री पहारसिघ जदुवशी ठाकुर सालिमसिघ, अमरसिंघ अमान, कछवाहा भोपालसिंघ, नरिंदसिंघ पमार, बलवानसिंघ, परिहार घौकलसिंघ, नवलसिंघ पवार, गुर्जीबेग खाँ पठान आदि[4] सैनिक सामन्तो के साथ जा ही रहे थे कि जासूस ने '**चलिबो न होइ हजूर को**'[4] कहा –

'तब श्री नवाब अलीवहादुर की रहै ढिग वेस।
डिवढी तहाँ उतरे सुनृप करियौ विचार सुदेस'[5] ॥ ३८८ ॥

हिम्मतबहादुर सिंधिया के डेरे मे न जाकर पास मे लगे नवाव अलीवहादुर की ड्यौढी मे आगये। नवाब अलीवहादुर अपने आपको पेशवा-भट तथा उनके नमक का पलेवी सहजार मानता था। अनूप प्रकाश मे नवाव अलीवहादुर के निम्नलिखित शूर सरदारो के नाम लिखे गये है – **नाइक जसवन्तराइ**, वालोकर गोविंदराव, सुभट पलाडे, सुभट समरसिंघ, सुद्धोजी भाऊ, हनुमतराव पामार, वाघ उमाजी, ।[6] हिम्मतवहादुर तथा अलीवहादुर दोनो ने यह तय किया कि पेशवा के सन्मुख यह शिकायत पेश की जाय –

---

१ बुदेलखड का सक्षिप्त इतिहास 'दतिया' पृ २८९

२. होल्कर रियासत

३, ४, ५ अनूप प्रकाश सप्तम प्रकाश छद ३७१, ३८८ तक

६ अनूप प्रकाश • सप्तम प्रकाश छद ३९८,

'जाके प्रभावन पेसवौ भुव पेस कीन तमाम ।
पुन जा प्रभावन श्री नवाब अलीबहादुर वीर ।[१]

परन्तु युद्ध दो बार हुआ –

'भेजी पटैल फौजें सुधार, उत दोइ वेर आई सुहार ।
लुटवाइ हेम, हय, हीर, चीर, तोपैं गवाँइ भज्जे अधीर ॥[२]

जनवरी सन् १७९२ मे महादजी सिंधिया पेशवा से मिलने पूना चले गये । इन युद्धो मे हिम्मतबहादुर तथा अलीबहादुर को विजय तो मिली, पर बडी महँगी पडी । अब भरपाई के लिये बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का विचार तय हुआ । उद्देश्य यह था कि बुंदेलखंड पर मराठो की सत्ता विस्तृत कर पेशवा की कृतज्ञता प्राप्त की जाय ।

'बुन्देलखंड मह जस जगाइ । महि वेग जप्त दे है कराइ ।
'पामारवीर' कहँ मार जग । पेसवौ नाम करि है उतंग ॥[३]

उक्त पद्य मे 'पामारवीर' शब्द 'नौने अर्जुनसिंह' को ही संकेतित करता है और 'जयत पुनर्हण' के उत्साह को सूचित करता है । ऐतिहासिक दृष्टिसे 'अनूप प्रकाश' की ये पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं –

'छत्रसाल देस हि पैठ डेरा करे कुंजकछार मैं ।
खाली करी दिन एक मैं सातो गढी रच रार मैं ॥
रन रीति नीत प्रतीत प्रीत विनीत नीन सरूप की ।
बर बरनियैं विरदावली हिंमितबहादुर भूप की ॥ ४४९

इस प्रकार हिम्मतबहादुर ने ज्योंही बुन्देलखंड की बिगडी हुई राज्य व्यवस्था देख आक्रमण करना चाहा तो सर्वप्रथम चरखारी नरेश खुमानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत इस युद्ध मे हिम्मतबहादुर के साथ लडने को तैयार हुए कारण कि नौने अर्जुनसिंह पँवार ने चरखारी का बहुत सा भाग अपने अधीन कर लिया था, प्रमाण के लिये, ये पंक्तियाँ उद्धृत हैं –

'लैलई भुम्म पमार नै वह सचु मारौ जाइगौ ।
मिलि है जिमी सुनि भूप विक्रम मनस मंगल छाइगौ ॥
लिखि नृपति विक्रम भए सामिल मिले नृप सुख पाइहै ॥४५३

१, २, ३ अनूप प्रकाश अष्टम प्रकाश = छंद ४२७, ४५३, ४५४

चरखारी नरेश विक्रमाजीत की फौज के साथ हिम्मतबहादुर की सेना बुन्देलखड मे आगे बढती गई ।

सुँमेरपुर मौधा गहोरा राठ दलबल मंडियं ।
सेंहुढा वगैरह ग्राम ग्राम सनाम आमिल छंडियं ।। ४५४
'दुर्गेसगिर जस रूपगिर इन आदिक अऊ मडिय ।'[1]

इस प्रकार

इहि क्रम सु अर्जुन के निकट, आयौ नृपति अति ही विकट ।
नद केन पै डेरा करे, तहँ जुद्ध कौं भे हरबरे । [2]

इधर

'सुनि सुभट अर्जुनसिंघ सेनापति बहादुर कुप्पिय ।
जिहि बखतसिंघ गुमानसिंघ नरेस गादिय रुप्पिय । [3]

और सरूपसिंह ज्योतिषी के बतलाये शुभ दिवस पर युद्ध हुआ –

'संवत् अठारह सै सुनौ उनचाल अधिक हिये गुनौ ।। २२ ।।
"बैसाख वदि तिथि द्वादसी, बुधवार जुत यह याद-सी" [4]

'डी एल डार्क' ने 'बादा गजेटियर' मे इसी युद्ध का सकेत किया है, एडविन टी एटकिन्सन ने इस युद्ध का और भी विस्तृत वर्णन किया है – In 1790 A D the allied troops to the number of 40,000, it is said, entered Bundelkhand from the west & fought their first action between Naugaon & Ajaigarh in which None Arjun Singh, the Banda leader, was killed The Marathas then advanced by way of Deogaon to Garha, while a small force under Himmat Bahadur proceeded to Charkhari, where they were attacked by Birsingh Dev of Bijawar, who lost his life in the action Sugaram, another Maratha leader defeated the Chattarpur troops under Puranmal, a son of Kunwar Sonesah of Chattarpur, near Maudha. Kunwar Durgagir another Gosavi leader defeated Gamirsingh Dauwa near Murwal Ali Bahadur then sent a force of 10,000 men under Jaswant Rao Naik to conquer Riwa [5]

१, ३ अनूपप्रकाश छद ४५३ ४५४
२ ४ पद्माकर हिम्मतबहादुरविरुदावली छद १९, २३
५. Statistical descriptive and historical account of N. W P Vol I (1874) Bundelkhand Page 31.

हिम्मतबहादुर के इस युद्ध मे पद्माकर ने कहा –

'बिरदावली कविवर पढं, सुनि वीर हरषि हिये बढं'

अजयगढ किले तक यह युद्ध होता रहा और अन्त मे हिम्मतबहादुर ने विजय प्राप्त की। हिम्मतबहादुर स्वय कवि थे[१]। कवि पद्माकर उनके दरबार में रहने लगे। लाला भगवानदीन[२] ने कवि पद्माकर और ठाकुर कविको इनके दरबार मे उपस्थित होना बतलाया है और लिखा है 'एसमय छेडछाड की इच्छा से हिम्मतबहादुरने पद्माकर से पूछा कि कहिए, कविजी, लाला ठाकुरदास की कविता कैसी होती है ? पद्माकर ने कहा, गोसाईजी ! लालासाहेब की कविता तो बहुत अच्छी और रसीली होती है पर लालासाहेब के शब्द हल्के से होते है। ठाकुर ने तत्काल ही उत्तर दिया कि हाँ, कविजी ठीक है। हल्के शब्द होने के कारण ही तो हमारी कविता उडी उडी फिरती है और आपके भारी शब्द होने के कारण ही आपकी कविता उड नही सकती।' दो दरबारी कवियो के इस प्रश्नोत्तर मे 'मसृणपदरीति' और 'गति' की चर्चा है। आचार्य विश्वनाथप्रसादमिश्र ने भारतीय जीवन के पारपरिक रूप के हल्के होने का कारण बतलाते हुए आगे लिखा है 'जब प्रेरणा हार्दिक होती है तो उसका प्राकृतिक रूप बना रहता है, जब रस्म अदायगी की जाती है तो वह बात नही रहती। ठाकुर कवि की रचना मे भी पद्माकर की सी ही स्थिति दिखाई देती है। इस सहज अभिव्यक्ति के लिये भाषा का भी सहज रूप चाहिए। पद्माकर और ठाकुर दोनो की भाषा मे यह सहज स्थिति दर्शनीय है।[३] हमे तो अभी इस नोक-झोक का समय निर्धारण करना है। उपर्युक्त एडविन टी एडकिन्सन के अग्रेजी उद्धरण[४] से यह सकेत मिलता है कि इस युद्ध का क्षेत्र विस्तृत रहा है। हिम्मतबहादुर की सेना नौने अर्जुनसिह का वध करके थोडी सी फौज के साथ (कारण कि चरखारी नरेश विक्रमाजीत अपनी सेना के साथ हिम्मतबहादुर से मिल चुके थे) चरखारी की ओर बढी जहाँ बिजावर के राजा बीरसिहदेव ने आक्रमण कर

---

१ मिश्रबन्धुविनोद कवि सख्या (८१०) पृ ७००
बलदेव कृत सत्कविगिराविलास

२ लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुरविरुदावली. पृ ६
ठाकुर कवि का जीवनचरित काशीनागरी प्रचारिणी ग्रथमाला पृ. १५५, १५६.

३ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र · पद्माकर पृ ६०

४ अत्रैव पृ ४९

अपनी जान खोई, उधर मराठा सरदार सुगाराम ने छत्रपुर की उस सेना को मौदहा पर हरा दिया जिसका सचालन छत्रपुर के कुँवर सोनेशाह के पुत्र पूरनमल कर रहे थे। हो सकता है कि इसी बैर का बदला लेने के लिए छत्रपुर के बुदेला लोग हिम्मतबहादुरगोसाई को मारने को आगे इकट्ठा हुए हो और तभी ठाकुर कवि ने वह कवित्त '**समयो यह वीर बरावने है**'[1] लिख भेजा हो, जिसका परिणाम यह हुआ कि सब बुदेला चले गये और हिम्मत बहादुर ने ठाकुर को बहुत रुपये इनाम में दिये। महाराज केशरीसिंह इन्ही वीरसिंहदेव के पुत्र थे जिन्हे हिम्मतबहादुर ने चरखारी के समीप विगत युद्ध मे मार डाला था। कवि ठाकुर बिजावर नरेश केशरीसिंह के यहाँ रहे और बाद मे उनके पुत्र राजा परीक्षत के दरबार मे रहे फिर उनको भी हिम्मत-बहादुर की चालबाजी से बचाने के लिये इन साकेतित दो सवैयो[2] की रचना करनी पडी। इन घटनाओ मे ऐसा लगता है कवि ठाकुर हिम्मतबहादुर के दरबार मे अधिक समय नही रहे। वह नोक-झोक आरभकालीन ही थी, जब कि कवि पद्माकर वहाँ सवत् १८५५ तक रहे आये। इनके अतिरिक्त वाजेम (९९१) रामशरण (११४३) रामसिंह (११४४) आदि[3] कवि भी उनके दरबार मे आश्रित कवि बने रहे। नवगाव-युद्ध के बाद भी कवि पद्माकर हिम्मतबहादुर के दरबार मे कवि के रूप मे रहे है। 'अनूप प्रकाश' तथा 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' मे उमरावगिरिनन्दन '**उत्तमगिरि**' का वर्णन आता है। लाला भगवानदीन के कथनानुसार ये उमरावगिरि के छठे पुत्र थे। कवि पद्माकर उत्तमगिरि के विवाह मे उपस्थित हुए थे। उनके शब्दो मे विवाहमडप मे बैठे हुए वर-वधू के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनिये –

> **दोउन के दृगन में भरी है चाह दोउन की**
> **दोउन की आभा ऐन आछी अनगिन है।**
> **कहै 'पद्माकर' सुदोउन पै देखियतु**
> **उनै उनै बरसै आनंद छिन छिन है।।**
> **जुग जुग जीवै यह जोरी जगदीश अरु**
> **दोउन की बाढै प्रीति रीति दिन दिन है।**

---

१ कविवर पद्माकर और उनका युग डॉ ब्रजनारायणसिंह पृ १५२, १५६

२ 'हाल चवाइन की दुह चाल सो लाल तुन्हें या दिखात कि नाहीं'
'चहुँ ओर से चौचन्द चार उठों सो विचार के यार सँभारने है'

३ मिश्रबन्धुविनोद पृ ८१०, ८११, ८७६.

औरन ते उत्तम सुदूल्हो गिरि उत्तम है
उत्तम तें उत्तम दुलारी दुलहिन है ।।

हिम्मतबहादुर इस विवाह मे उपस्थित थे। विवाह के भोज का वर्णन करते हुए पद्माकर कहते है –

'माठ मठलीन ते सुमीठो लगें लड्डू अरु
लड्डुन ते मीठी लगी साढो सिखरिन की।

कहे 'पद्माकर' अनूपगिरि रूप मदा
सिखरिन ते मीठी लगी खीरें खिरमिन की ।।

खीरिन तें मीठे लगे खुरमा खमीरन के
मीठी लगी फैनी बनी ऐनी दिन दिन की।

फैनिन तें मीठी लगी बेली और जलेबीं
औ जलेबिन ते मीठी लगी गारी समधिनकी ।।

नवाब अलीबहादुर और कवि पद्माकर –

नवाब अलीबहादुर का अधिकार बादा पर होगया और शीघ्रही वे 'नवाब बाँदा' के नाम से अभिहित होगये। नवाब अलीबहादुर ने 'दुरई' ग्राम की माफी की सनद अपने हस्ताक्षरो से अकित कर कवि पद्माकर को पुन प्रदान की। नवाब अलीबहादुर भी कवि पद्माकर के प्रशसा पात्र रहे है। उनका कवित्त है –

'धम धम धमकि धमाके पीर धौंसन के
हौसन खनाके खरे खाँखरे अराब के।

कहै 'पद्माकर' त्यो छार की छटान छबि
छाजै आफताब मानो रंग महताब के ।।

चक्कवै चकित चौंधि चिक्करत इक्क इक्क
दिक्क दीह दिग्गज दिसान परे दाब के।

भावत न भौन, भूलि भामनिन भाजें अरि,
धावत ही श्री अलीबहादुर नबाब के ।।'

अलीबहादुर की प्रशसा मे कहे गये 'मिर्जा गालिब' के इस शेर को उद्धृत करनेका लोभ भी सवरण नही किया जासकता –

'ग़ालिब खुदा करे कि सवार-ए समन्दे नाज ।[1]
देखूं अलीबहादुर-ए-आली गुहर को मैं ।

सागर-नरेश रघुनाथराव आपासाहेब और कवि पद्माकर

मराठो की ओर से सागर का प्रबन्ध गोविन्दपन्त बुदेले कर रहे थे । पानीपतयुद्ध मे मृत्यु होने के बाद सागर का प्रबध चॉदोरकर विसाजी गोविन्द करने लगे जो उनके दामाद थे । अगरेजो का गवर्नर इस समय वारेन हेस्टिग्ज था । उनके कर्नल वेलेस्ली, सेनापनि गाडर्ड, कर्नल मिसेलवेक, कर्नल पोल जैसे सुशिक्षित सेनाध्यक्ष हिन्दुस्तान मे अपनी अपनी कारस्तानियाँ कर रहे थे । 'कालपी' पर उनकी नजर लगी थी । कर्नल गाडर्ड ने कालिजर के कायमजी चौबे को मिला लिया और केन नदी के किनारे से अगरेज सैनिको ने कालपी पर हमला बोल दिया । झाँसी और सागर की मराठा फौजे जब इधर कालपी मे लड रही थी, तब नरहरशाह गोड ने मराठो पर हमला कर दिया और उनके दिवान गगागिर ने विसाजी गोविन्द को 'गढा' के निकट हरा दिया और उन्हे मार डाला । उधर दिवान अताजी राम खाडेकर और केशव महादेव चादोरकर ने गोड लोगो से तेजगढ किला जीत लिया । गोविन्दपन्त बुदेले के पुत्र बालाजी गोविन्द अब कालपी मे रहने लगे और उन्होने अपने पुत्र रघुनाथराव आपासाहब को सागर मे नियत कर दिया । आबासाहब अपनी सेना लेकर चौरागढ पहुँचे और गोडराजा नरहरशाह तथा उनके दिवान गगागिर को हाथी के पैर से बँधवाकर मरवा डाला । बुन्देलखड का 'सागर' सग्रामसागर बन गया । सन् १७९९ मे पद्माकर बादा से अपने ननिहाल सागर आगये । अपनी भेट पर रघुनाथराव आबासाहब के सन्मुख जाकर उन्हे अपना यह छन्द[2] सुनाया

सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि
तुरत लुटावत* विलब उर धारैना ।
कहै 'पद्माकर' सुहेम हय हस्तिन के
हलके हजारन को वितर विचारैना ॥

१ दीवाने गालिब सरदार जाफरी पृ २१२

२ प. नकछेदी तिवारी पद्माकर कवि देवनागर
पाठान्तर – 'लुटावै' 'जुहावत'

– गणेशप्रसाद द्विवेदी.

गंज गजबकस महीप रघुनाथराव*
याही गज धोखे* कहूँ काहु देइ डारै ना ।
याही डर* गिरिजा गजानन को गोइ रही
गिरि ते, गरे ते, निज गोद ते उतारै ना ॥

उक्त छन्द की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जान लेना यहाँ नितान्त आवश्यक है । वैसे तो इसी आशय का एक छद राजा छत्रसाल द्वारा बनाया गया है, परन्तु इसकी ऐतिहासिक छटा दर्शनीय है । वस्तुत यह छद सागरनरेश रघुनाथराव आबासाहब के द्वारा सद्य की गई गोड राजवश की परिसमाप्ति की कीर्तिका सूचक है । गोडवश के महाराजशाह, जिनका नाम मडला के अनेक घाटो पर अब भी खुदा पाया जाता है पेशवाद्वारा युद्ध मे मारे गये । उनके पुत्र शिवराजशाह ने मराठो की अधीनता स्वीकार करली । जब उनका दूसरा पुत्र नरहरशाह गद्दी पर बैठा तो मराठो ने राजगद्दी से उसे उतार दिया । उसके भतीजे सुमेरशाह को सागरवालो ने राजा तो बना दिया, पर पीछे से उसकी राजसपत्ति लेकर गोरझामर के किले मे उसे कैद कर दिया और नरहरशाह को गद्दीपर बैठा दिया । नरहरशाह गोड तथा उसके दीवान गगागिर ने 'गढा' के निकट जब बिसाजी गोविन्द को हराकर मार डाला तब आबासाहब रघुनाथराव ने गढा तेजगढ और चौरागढ जीतकर सारे गोडराज्य को लूट लिया और गोड राजवश की इतिश्री कर दी । कवि पद्माकर ने सुमेरसिह की राजसम्पत्ति तथा गोड देशसे लाये हुए इन लूटो के[1] सोने चादी रत्नादि भरे हाथी घोडो को हजारो से हलका कर उनके निस्सकोच वितरण और लुटा देने की दानवीरता का वर्णन किया है । इस सदर्भ मे अत 'सुमेर' से 'सुमेरसिह', 'कुबेर' से 'धनद=दक्षिण' (अर्थात् गोड देश) अथवा 'दुर्दिन' (लूट), 'गिरि' से दिवान गगागिर, 'गरेते' से, अर्थात् गढा, तेजगढ और चौरागढ आदि 'गढो से' अर्थ समझना चाहिए। यहाँ 'गोद' लेने की बात भी कही गई है। पेशवा ने इनकी वीरता देख यही चाहा था कि रघुनाथराव की सन्तति ही सागर की सूबेदारी करे, किन्तु रघुनाथराव आबासाहब निस्सन्तान थे। अत यही

---

* पाठान्तर 'भीमसिह महाराज' [श्री अम्बिकेश जी रीवॉ] तथा 'रघुनाथराय' [प पद्मसिंह शर्मा तथा प्यारेलाल मिश्र] शुद्ध पाठ रघुनाथराव [प. लोचनप्रसाद पाडेय] 'घोरो' (नकछेदी तिवारी) 'गौर' (प. कृष्ण किशोर भट्ट)

१ आबासाहब को गोंड लोगों के राज्य की लूट में बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं मिली थी-
—बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास पृ २६७.

विनायकराव रघुनाथराव की विधवा की गोद में दे दिये गये। 'गजानन' से 'विनायक' का ही तो अर्थ निकलता है। 'गज गजबक्ष' रघुनाथराव के "गजदान' के भय से आतंकित मानो गिरिजा ने अपने सम्पूर्ण वात्सल्य को लेकर गजानन (विनायक) को अपनी गोदमे छिपा लिया। लेखक के पिता तथा कवि पद्माकर के प्रपौत्र प कृष्णकिशोरने 'डर' के स्थान पर 'गौर' पाठान्तर दिया है। 'गौर' शब्द से गौरवर्णा गिरजा अथवा गौरा पार्वती रूप रघुनाथराव आबासाहब की पत्नी राधाबाई का सकेत है। कवीश्वरवंश मे प्रतीकवाला यह छन्द 'लाखिणा' के नाम से प्रसिद्ध है क्योकि इसीपर मुग्ध होकर महीप रघुनाथराव आबासाहव ने एक लक्ष मुद्रा, बहुमूल्य मोतियो का अँगरखा तथा सोने से लदे हाथी घोडे दिये थे[1]। 'केसरसभा विनोद' मे लिखा मिलता है

> 'सागरनरेश आभा उदार, दीन्हे मतग हय द्रविण भार
> अम्बर अमोल भूषण विशाल, सुरवृक्ष सदृश कीन्हे निहाल[2]

सागर गजेटियर की ये पक्तियाँ भी यहाँ उद्धरणीय है –

"Padmakar is said to have been given a lakh of rupees by Raja Raghunath Rao for a couplet 'सम्पत्ति सुमेर की उतारै ना' in which he stated that Raghunath Rao gave away so many elephants in charity that Parvati hid her own son, the elephant headed Ganesh, for fear, lest Raghunath Rao might also bestow him as a gift"

परतु यह कहना उचित नही है कि यह छन्द कवि पद्माकर ने अपनी सोलह साल की आयु मे कहा था और उनका यह पहिला कवित्त था।[1]

---

१. तथा हाल समय में महाराज रघुनाथराव आवासाहव वाली मुल्क सागरने ऐसा दान किया कि जिसमें देवता भी चकरा गये उस बयान का कवित्त पद्माकर कविने कहा जिसके सुनने दस हजार के मोतियों का एक अँगरखा अता किया –
– विद्याधर विरचित कविकल्लोल नाटक अष्टमो द्व

२ पौत्र गदाधर कृत केसरसभाविनोद हस्तलेख पृ ८ छन्द ९

१. उनने १६ वर्ष की अवस्था में अपने राजा की प्रशसा में यह कवित्त कहा था . . . यद्यपि ऊपर लिखी हुई स्तुति कवि की अत्युक्ति है, तथापि राजा रघुनाथराव निदान कवियों के तो कल्पवृक्ष ही थे – सागर सरोज, पृ ५२
लाला भगवान दीन हिम्मतबहादुरविरुदावली प्रस्तावना पृ २.
डॉ उदयनारायण तिवारी . वीरकाव्य ' पद्माकर पृ ४४५.

नववर्षीय पद्माकर के वीररस पूर्ण कवित्तो की अजस्र धारा हम पहिले ही देख चुके है। फिर उनकी सोलह वर्ष की आयु मे तो रघुनाथराव 'महीप' नही हुए थे। पुनश्च, सागर नरेश रघुनाथराव आपासाहब के समक्ष इस छन्द को सुनाते समय जो चित्र उपलब्ध हुआ है और जो लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी' मे सन् १९३३ मे छपा था, उससे कवि पद्माकर की आयु १६ वर्ष से अधिक की लगती ह।[१] अन्यत्र यह भी लिखा मिलता है कि रघुनाथराव की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही कवि पद्माकर की मृत्यु होगई थी बिलकुल गलत है, इतिहास इसे नही स्वीकारता। कवि पद्माकर के दान की प्रशसा के बाद दूसरा कवित्त उनकी तलवार की प्रशसा मे है, जिसे उनकी राजसभा मे सुनाया गया था –

'दाहन तै दूनी तेज तिगुनी त्रिसूल हू तै
चिल्लिन तै चौगुनी चलाक चक्रचाली तै।
कहै 'पद्माकर' महीप रघुनाथराव
ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तै॥
पाच गुनी पब्ब तै पचीस गुनी पावक तै
प्रगट पचास गुनी प्रलय प्रनाली तै।
साठ गुनी सेस तै सहसगुनी स्रापन* तै
लाखगुनी लूक तै करोरगुनी काली तै॥[२]

कहा जाता है कि इस प्रशसा से प्रसन्न होकर रघुनाथरावने पद्माकर को पारितोषिक मे एक हाथी, दस गाव तथा एक लाख रुपये प्रदान किये और अपनी सभा का दरबारी बनाया। सागर के समीप ही 'गढाकोटा' ग्राम मराठो की सहायता से सभासिह के भाई पृथ्वीसिह को देदिया गया था इन दिनो उसपर उनके नाती मर्दनसिह का अधिकार था, परन्तु उसे मराठो का हस्तक्षेप पसद नही था। अगरेजो के युद्ध के कारण मराठो की क्षीणशक्ति देख उसने मराठो को चौथ देना बद कर दिया था। सागर के आबासाहब ने मर्दनसिह को फिर से अपने अधिकार मे करने के लिए सेना भेजी। मर्दनसिह के दीवान जालिमसिह ने इस सेना को हरा दिया अत बुदेलखड के मराठो ने पूना से सहायता मागी। इस सेना का नायक अली-

१. देखिये चित्र माधुरी सन् १९३३, अप्रैल

* पाठान्तर 'सापन' तथा 'स्रावन'. मध्यप्रदेश का इतिहास पृ १०३

२. मध्यप्रदेश का इतिहास पृ १०३ बुन्देलखड का इतिहास पृ २६०.

बहादुर था जिसने पुन मराठो का यह सकट दूर कर दिया और पेशवा का अधिकार फिर से बुदेलखड के राज्यो पर स्थापित होगया।[1] राजा रघुनाथ-राव आपासाहब कवियो के आश्रयदाता थे। इनके आश्रित कवि घनश्याम ब्राह्मण थे। उक्त प्रसग से राजा रघुनाथराव ने घनश्याम कवि को गढाकोटा-नरेश के दरबार मे चौथ मागने भेजा। गढाकोटा नरेश ने चौथ तो नही दी वरन् ब्राह्मण के नाते भिक्षा डालने की बात कही। घनश्याम कवि का स्वाभिमान छू गया, वे फौरन बोले :—

'विश्वामित्र पौरुष पराजय वशिष्ट किये,
भीम भृगुनाथ ने हजार भुज पाये है
द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि वीरन ने
भारत भिरा तन के ढार ढरकाये हैं
पेशवन के दल दबाये देस देसन को
मही के महीप सब हीम सकुचाये हैं।
बार ही ते देखो छतरैं दिन दपेटिबे को
समर कटैते बमनैटे होत आये हैं॥'[2]

सागर नरेश महीप रघुनाथराव आपासाहब के आतक पर कवि पद्माकर का एक कवित्त और मिलता है –

'लंका सो निसंका गढ बका होइ जाके
करि हक्का देवलोकन में सका पुनि धारै सो।
कहैं 'पद्माकर' समुद्र ऐसी खाई
कुभकरन सो भाई कुटिलाई को विचारै सो॥
जाके घर होइ इन्द्रजीत सो सपूत पूत
अति मजबूत दिन चार प्रान धारै भो।
एक माथवारे नरनाथ की कहा है
जाके होइ दसमाथ रघुनाथ सो बिगारै सो॥'

लाला भगवानदीन के कथनानुसार रघुनाथराव के रनिवास मे पद्माकर से कोई परदा न था। एक बार रघुनाथराव की रानी न सावन के महीने में

---

१. बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास गोरेलाल तिवारी पृ २७०–२७१

२ भानु अभिनन्दन ग्रन्थ लोकनाथ सिलाकारी पृ. ११६.

बिंदुदार मेहदी रचाई थी और वैसे ही हाथ पर मुँह रखे हुए वे सहज स्वभाव से लेटी हुई थी। लेटे हुए उसी दशा मे पद्माकर को यह उक्ति सूझी, जो निम्नलिखित सवैया मे कही गई है –

'कै रतिरग थकी थिर ह्वै पलका पर प्यारी परी सुख पाय कै।
त्यो 'पद्माकर' स्वेदके बुँद रहे मुकताहल से तन छाय कै॥
बिंदु रचे मेहदी के लसै कर ता कर पै रह्यो आनन आय कै।
इन्दु मनौ अरविंद पै राजत इन्द्रवधून* के वृद बिछाय कै॥[1]

लाला भगवानदीन के कथनानुसार कवि पद्माकर का निम्नलिखित कवित्त

'ऐके संग धाये* नन्दलाल औ गुलाल दोऊ
दृगन गये जो भरि आनंद मढै नही।
धोय धोय हारी 'पद्माकर' तिहारी सौंह
अब तो उपाय एकौ चित्त पै चढै नहीं॥
कैसी करौ, कहाँ जाउँ, कासो कहौं, कौन सुनै
कोऊ तो निकासौ जासो दरद बढै नही।
एरी मेरी वीर जैसे तैसे इन आँखिन ते
कढिगो अबीर पै अहीर को कढै नही'॥[2]

सागर के रघुनाथराव के समक्ष तब सुनाया गया था, जब वहा कवियो का जमाव था। कवि लोग अपनी अपनी प्रतिभा दिखला रहे थे। पद्माकर ने भी यह कवित्त कहके सबसे प्रश्न किया कि इस कवित्त की नायका का निरूपण करो कि कौन नायका है? कोई कुछ कोई कुछ कहने लगा। उस सभा मे पद्माकर के एक साले भी मौजूद थे। उनको जो दिल्लगी सूझी उससे पद्माकरजी को भरी सभा मे बहुत लज्जित होना पडा। उन्होने कहा 'सुनिए साहबो! इस कवित्त की नायका पद्माकर की बहिन है, क्योकि वह 'पद्माकर तिहारी सौह' और 'बीर' शब्द का प्रयोग करती है, इससे साफ जाहिर है कि वह अपने भाई पद्माकर की कसम खाती है। सभा मे बडी हँसी हुई और सबो ने उनकी तर्कना शक्ति की प्रशसा की। पद्माकरजी ऐसे लज्जित से हुए कि उनसे कुछ कहते न बना। कहते है, पद्माकर ने उस समय

१, २ जगद्विनोद पद्माकर ग्रन्थावली छद ४९२, ५०३. पृ १८४, १८६
पद्माकर की काव्य साधना पृ २४, २५

* पाठान्तर 'इन्दुवधून' 'धीर'

यह प्रतिज्ञा की कि अब हम कभी किसी छद मे इस भाँति '**बीर**' शब्द का प्रयोग न करेंगे। परन्तु ऐसा हुआ नही। 'बीर' शब्द का प्रयोग 'जगद्विनोद' मे, जो बहुत बाद की रचना है, कई बार मिलता है, यथा – छद (१५६), छद (३६६), छद (३८६)। छद (१३७) मे '**बीरन** आए लिवाइबे' मे 'बीर' के बहुवचन रूप का भी प्रयोग मिलता है।

महाराज प्रतापसिंह, जयपुर की राजगद्दी पर

कवि पद्माकर, सागरनरेश रघुनाथराव आवासाहेब के दरबार से जयपुर आये। यहाँ उस समय महाराज प्रतापसिंह राज्य कर रहे थे। यह वही समय था, जब महाराज प्रतापसिंह का विवाह जोधपुर के कुँवर फतेहसिंह की बेटीसे हुआ था और जो महाराज के देहान्त के समय जोधपुर मे थी।[1] महादजी सिंधिया के देहान्त के बाद ३ मार्च सन् १७९४ के दिन दौलतराव सिंधिया ग्वालियर की गद्दी पर बैठे। सन् १७९६ मे सेनापति डी बायन यूरोप चला गया और उसके स्थान पर महाराज दौलतराव सिंधिया ने फ्रेंच आफिसर पैरो[2] को नियुक्त किया, जो फिरगी पेड्रो साहब[3] के एजेंट थे। ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया ने अपनी मैत्री और सद्भाव बढाने के लिये जयपुरनरेश प्रतापसिंह के विवाह मे सम्मिलित होने के लिये अपने स्थान पर कर्नल पैरो को जयपुर भेजदिया।[4]

जयपुर आगमन की किम्वदन्ती :–

कवि पद्माकर के जयपुर आने के बारे मे एक कहानी मशहूर[5] है। कहा जाता है कि पद्माकरजी घोडे पर सवार होकर अपने नौकरो के साथ जयपुर पहुँचे और श्रीगिरिधारीजी के मन्दिर मे ठहरे। कई दिन तक कोशिश की कि महाराजसाहब के दरबार मे पहुँच हो, किन्तु अन्य कविगण यह मौका नही देते थे। महाराजकुमार जगतसिंहजी उन दिनो हिन्दी कविता पढने के लिए हवामहल मे जाते थे। एक दिन उनके गुरुजी एक समस्या मे अटके हुए थे, महाराजकुमार जगतसिंह बारबार पूछते थे कि गुरुजी छद पूरा हुआ कि नही ? समस्या थी –

---

१ पद्माकर की काव्यसाधना (इतिहास जोधपुर) पृ ३३ फुटनोट

२, ३ दौलतराव सिंधिया पूना करेसपानडेन्स जिल्द ८ पृ ५, ११, ४, १५

४ दतिया गजेटियर राजा शत्रुजीत पृ ८, १०

५ विशाल भारत जुलाई सन् १९३४ कुँअर महेन्द्रपालसिंह.

'कालीजू के कज्जल की ललित लुनाई सो तो
सारे नभमडल में भार्गव चन्द्रमा'

पद्माकरजी नीचे ब जार मे खडे हुए सुन रहे थे। उन्होने तुरन्त साईस का रूप बनाया और महाराजकुमार के कविजी से कहा कि मैने समस्या की पूर्त्ति की है, सो सुन लीजिए।

शंभु के अधरलाहि काहे की सुरेख राजै
गाई जात रागिनी सु कौन सुर मन्द्रमा।
देत छबि को है कोकनद से नदी मे कहो
नखत विराजै कौन निशि में अतन्द्रमा॥
एक दृग को है कौन वर्णन असम्भवित
घटै बढै सो तो दिन पाय पाय पन्द्रमा।
कालीजू के कज्जल की ललित लुनाई सो तो
सारे नभमंडल में भारगव चन्द्रमा॥

समस्यापूर्त्ति का यह कौशल देख महाराजकुमारने अपने पिताजी से पद्माकर को दरबार मे बुलाने के लिये कहा। दूसरा यह कथन भी है कि 'प्रतापसिंह से इनकी मुलाकात शभुसिहजी दुनीवारो ने कराई थी। उनके सबध में पद्माकरने एक दोहा लिखा था –

वाल्मीकि को सप्तरिषि, तुलसी को हनुमान।
कवि पद्माकर को मिले संभु सभु समान॥[1]

हमे इसी सदर्भ से उक्त समस्यापूर्त्ति की व्याख्या करना अभीष्ट है। समस्यापूर्त्ति का वह युग हम नही भूल सकते। जयपुर मे 'काले महादेव' का मन्दिर विख्यात है। महाराजकुमार जगतसिह के हिन्दी कविता पढने का आरभ युग मानो वह प्रभात था। मुलाकात करानेवाले शभुसिह दुनीवारो पर 'शभु' की अन्योक्ति है। आइए, कवि पद्माकर के इस सद्य रचित छन्द की बिम्बयोजना को देखे, जिसपर गुरु, महाराजकुमार तथा महाराज सभी प्रसन्न हो जाते है:–

चन्द्रमा के समान गौरी ने उठते हुए उष काल के प्रकाश मे शभु के रागरंग से भरे लाल अधरो पर काली के तीखे नेत्रो की तेजधार पर खेलती हुई काजल की लीक को चमकते देखा तो सारे ससारपर कल्याण की सभावना

---

१ माधुरी वर्ष १३, खड २ माघ १९९१ तथा पद्माकर ग्रन्थावली पृ ४३.

रखनेवाले शभु पर प्रश्नो की झडी लग गई। आपके अधर पर किसकी सुरेख शोभा देरही है? आज किस आनन्द प्राप्ति पर यह रागिनी गाई जारही है और वह भी अनुराग के मन्द्र स्वर मे? यह कौनसी लालिमा और नीलिमा इस जलाशय के कमल मे और सलिल मे विम्बित प्रतिबिम्बित हो खेल रही है? काले वक्षस्थल पर झलझलाते ये नखक्षत किस निशा के नक्षत्र बन झिलमिला रहे है? कामदेव को भस्म करनेवाले इस एक नेत्र का नयनोत्सव तो देखो उसने कामरूप को वरदान देकर जन्म ही नही दिया वह तो अब दिन के चरणो के बल पर चन्द्रकला के समान पूर्णिमा को प्राप्त कर घटने बढने लगा है- इसका इतना वर्णन कौन कर सकता है? काली के काजल की यह ललित ललाम रेखा रुद्राणी भवानी की लालिमा का रग लेकर सारे नभोमडल मे तमक उठा। रोष मे अनुराग, कालिमा मे लालिमा, गर्व मे उपहास, भार्गवी मे भार्गव रूपको कवि ने छन्द की परिधि मे समेट मानो अपने विराट् को समेट लिया है। आशुता और रचनाक्षमता की यह कला दर्शनीय है।

कवि पद्माकर महाराज प्रतापसिह के दरबार मे :-

जयपुरनरेश महाराज प्रतापसिह के दरबार मे कवि पद्माकर गये। कवि पद्माकर ने महाराज प्रतापसिह को 'माधवनरिंदतनय' के सदर्भ मे देखते हुए यह कवित्त पढा -

> 'कामद कलानिधान कोविद कविंदन को
> काटत कलेस किल कल्पतरु कैसे है?
> कहै 'पद्माकर' भगीरथ से भागवान
> भानुकुल भूषण भए यो राम ऐसे है।
> मानिनी मनोहरन महत मजेजवन्त
> माधवनरिंदतनै तेजवन्त तैसे है।
> कूरम कुलीन मानसिहावत महाराज
> साहिब सवाई श्रीप्रतापसिह ऐसे है।।

महाराज प्रतापसिह ने शीश बढाकर प्रणाम किया और सिरोपावसहित गाँव दिये, पद्माकरजी ने कहा -

(१)

> 'देत बढा सीस तुम देत है असीस हम
> तुम जसु लेत, हम वसु लेत भाए है।

'पद्माकर' कहै तुम सुबरन बरसत
हम हूँ सुहाए सुबरन बरसाए हैं ॥
राजन के राजा महाराजा श्रीप्रतापसिंह
तुम सकबंध, हम छंदबंध छाए हैं ।
जानियो न ऐसी कि ए बिगर बुलाए आए
गुन तौ तिहारे मोहि बरबस लाए हैं ॥'

(२)

कीरति कतार करतार कामधेनुन की
सुजस बिचार घनसार को घरसिबौ ।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज
बोलिबो तिहारी सुधासिंधु को वरसिबो ॥
सहज सुभाइ मुसक्याइबो मनोहर है
जगत प्रसिद्ध आठो सिद्धि को सरसिबो ।
दिल सो, दया सो देखिबोई देवदर्सन
रीझिबो रसायन है पारस परसिबो ॥

(३)

मोदन को मंदिर विनोदन को वृन्द महा
मूल महिमा की कामदन की कतार है ।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज
राउरी अनुग्रह उदै को अवतार है ॥
खूबिन को खंभ उमराइन को अडम्बर
देसन को दाता दीह दौलत को द्वार है ।
पारजात पद्धत प्रभावन को पारावार
पुंज पद्मा को पारसन पहार है ॥

कवि पद्माकर का यह आगमन सन् १७९९ ई के लगभग हुआ है । जाटनरेश जवाहिरसिंह के छुटमुट हमले, सिक्खो के बढते उपद्रव, नजव खाँ का वध, महादजी सिंधिया[१] की तूगा-युद्ध[२] में हार और उनकी मृत्यु आदि इन छदो के सकेत ऐसे है, जो तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियो के सूचक है ।

---

१. महादजी सिंधिया ने हैवतराव फाल्के तथा अम्बाजी इंगले जैसे वीर सेनानियों के बलपर सिक्खों और जाटों को अपने वश में कर लिया था ।

२. पद्माकरकृत तूगायुद्ध वर्णन, अत्रैव पृ ४६.

कवि पद्माकर ने मराठो के उत्कर्ष को देखने के बाद जब पानीपत युद्ध के नेतृत्व करनेवाले पन्त परिवार के अभियानो, सन्धियो, अभिसन्धियों को देखा तो उन्हे पराजय, पराभव और पतन के चिन्ह नजर आने लगे। कहाँ शिवाजी की धनुर्धर हथकुरी पैदल सेना, पागसेना, बरजोर जैसी सेना का सचालन ? कहाँ पानीपत-युद्ध मे भूखो भरती सेना का दयनीय दृश्य ! कहाँ शिवाजी की सेना का 'गनीमी कावा', कहाँ इब्राहीम गार्दी तथा डी बायन की बटेलियनो का धावा ! कहाँ शिवाजी का शासन, अनुशासन, अर्थनीति, जिसके कारण हिन्दू जाति को एक भरापूरा साम्राज्य मिला, कहाँ सौदा करनेवाले धनलोलुप अपव्ययी सरदार ! कहाँ शिवाजी के रणवीर योद्धा-गण ! कहाँ केम्पो मे रहनेवाली सुसज्जित किन्तु अयोग्य जनता ! कहाँ शिवाजी की रणनीति, जहाँ स्त्रियो को युद्ध मे लेजानेवाला प्राणदड पाता था, कहाँ अपनी वीरवधुओ को रणक्षेत्र मे लेजाकर अनाथ असहाय छोडकर भागजानेवाले टुकडियो के दावादार सरदार ! कवि पद्माकरने ऐसे पराजित और पराभूत पन्त- परिवार के उन धनलोलुप दावेदार सरदारो के सौदे और सवाई श्रीप्रतापसिह के विजयवृन्द के यशोधन के सौदे मे अन्तर बतलाते हुए वर्णन किया है -

'पंत परिवार निज दारन को छाँडि
दावादारन को भाजै कौन सौदा करे जात है।
कहै 'पद्माकर' तुनीरन में तीर त्योंही
तानि के कमानन मे रौदा अरे जात है ॥
साहब सवाई श्रीप्रताप दल सज्जत
बिहद्द नद्द नद्दिन में पौदा परे जात है।
सौदा बिजैवृन्दन को लादिबे को मानो
मदमैगल मतगन पै हौदा धरे जात है ॥

अर्थात् महाराज प्रतापसिंह की रणयात्रा के लिये तयारियाँ होरही है। विजयिनी सेना के सुसज्जित, रगो से रगे मदमत्त हाथियो पर विजय में प्राप्त धन, अशर्फियाँ, मुहरे, रत्न आदि जीत का माल (सौदा) भरने के लिये हौदे रखे जारहे है तथा वर्षाकालीन पानी से बेहद्द भरे हुए नद और नदियो पर जीत की लूट से लदे हाथियो को लौटा लाने के लिये पैर रखने के पौदर तयार किये जारहे है। कहाँ ये सौदे ? कहाँ वे सौदे !

गवर्नर जनरल मार्क्विस वेलेजली ने अब कर्नल कालिन्स को सिंधिया का रेसिडेट बनाया और वे फतेहगढ मे रहने लगे। महाराज दौलत-

राव सिंधिया को अपनी विलायती ट्रेन्ड फौजो का बडा अभिमान था। उनकी भी महत्वाकाक्षा हुई कि वह भी पिता के समान पेशवा का पेशवा बन जाय। लक्ष्मण अनन्त (लकवा दादा) उनका नायब था, फ्रेचमेन पैरो उनका सेनाध्यक्ष तथा अम्बाजी इगले ग्वालियर का सेनापति था। इन्ही के बलपर महाराज दौलतराव सिंधिया कभी बुन्देलखड से कभी राजपूतो से लाखो रुपयो की करवसूली के बहाने आक्रमण करने का उपाय किया करते थे। लकवा दादा और मचेरी के राजा की सेनाओ ने 'किशनगढ' पर आकर महाराज प्रतापसिंह से दो लाख रुपयो का तकाजा किया, उधर 'मालपुरा' पर अम्बाजी इगले और पैरो की सेनाओ ने आक्रमण कर दिया। कवि पद्माकर ने, ऐसे समय, अपनी ओजस्विनी वाणी से कई वीररसपूर्ण कवित्त सुनाए, यथा –

(१)

'झलकत आवै झुंड झिलम झलानि* झप्यौ
तमकत आवै तेगवाही औ सिलाही है।
कहै 'पद्माकर' त्यो दुदुभी धुकार सुनै
अकबक बोलत गमीन औ गुनाही है॥
माधव को लाल काल हू ते विकराल दल
साजि धायो ऐ दई दई धौं कहा चाही है।
कौन को कलेऊ धौ करैया भयो काल अरु
कापै धौ परैया भयो गजब इलाही है॥'

(२)

कहर को क्रोध किधौं कालिका को कोलाहल
हलाहल हौद लहरात लबालब को।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज
तेरो कोप देखि यो दुनी में को न दबको॥
'चिल्लिन को चचा" औ बिजुल्लिन को बाप बडो
बाँकुरो बबा है बडवानल अजब को।
गब्बिन को गजन गुसैल गुरु गोलन को
गंजन को गज गोल गुंबन गजब को॥

---

* पाठान्तर 'झपान' 'झिप्यौ' झिलिम=कवच, झलानि=समूह, झप्यौ=ढका तेगवाही=तलवार चलानेवाले, सिलाही=शस्त्रधारी

(३)

उच्छलत सुजस बिलच्छ अनवच्छ दिच्छ
दिच्छनहू छीरधि लौं स्वच्छ छाइयतु है।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज
अच्छन में ओज परतच्छ पाइयतु है॥
पच्छ बिन लच्छ-लच्छ रिच्छन बिपच्छ होत
गच्छिन के गुच्छ पर तुच्छ ताइयतु है।
पटपात पुच्छ कच्छ-कुच्छ पर सेम जब
रच्छ कर मुच्छ पर हाथ लाइयतु है॥*

(४)

पुच्छन के स्वच्छ जे तरच्छन को तुच्छ करैं
कैधौं लच्छ-लच्छ गुन लच्छनन लच्छे हैं।
कहै 'पद्माकर' प्रताप नृप-रच्छ ऐसे
तुरंग तनच्छ करि-दच्छन को दच्छे हैं॥
पच्छ बिन गच्छन प्रनच्छ अतरिच्छन में
अच्छ अवलच्छ मनो कच्छनन नच्छे हैं।
कान्ही कछवाह के बिपच्छिन के बच्छ पर
पच्छिन छान उच्च उच्छला अच्छे हैं॥[1]

ऐसे समय कोटा नरेश के दीवान जालिमसिंह ने बीच बचाव का काम किया और [illegible] ठण्डा [illegible] गया। दीवान के [illegible] जो [illegible] प्रताप-सिंह की प्रशस्ति में कहे गये इसी समय के हैं।

महाराज प्रतापसिह की शरण मे नवाब वजीरुद्दौला

उधर अवध मे २१ सितम्बर १७९७ के दिन नवाव आसफुद्दौला की मृत्यु होगई और वजीरुद्दौला अवध का नवाब बना। पर, माता 'दोवागर बेगम' ने तत्कालीन गवर्नरजनरल सर जॉन शोर की आज्ञा से उसके भाई सआदतअली को अवध का नबाव बनवा दिया और वजीरुद्दौला को डेढ़ लाख की पेंशन पर बनारस भेज दिया। बनारस मे उस पर यह अपराध लगाया गया कि वह सिंधिया के एजेंट अम्बाजी इगले, काबुल के जामन-शाह से ब्रिटिश सरकार के खिलाफ अपना राज्य वापिस ले लेने के लिये गुप्तसधि कर रहा है और लार्ड मार्क्विस वेलेजली ने अपने एजेट चेरी के द्वारा यह हुक्म पहुँचाया कि उसे बनारस से कलकत्ता भिजवाया जा रहा है। इस हुकुम पर क्रुद्ध होकर वजीरुद्दौला ने एजेंट चेरी की हत्या कर दी और वह भागकर सवाई राजा प्रतापसिंह की शरण मे आमेर आगया। १० नवम्बर सन् १७९९ के दिन कर्नल कालिन्स ने वजीरुद्दौला को पकड लाने के लिये जयपुर मे डेरा डाल दिया और महाराज प्रतापसिंह को पत्र भजा कि वह वजीरुद्दौला को उसके सुपुर्द कर दे। परन्तु उन दिनो महाराज प्रतापसिंह गोविददेव की भक्ति मे लगे थे और '**जगपूजा**' के अनुष्ठान में लगे थे। अत कालिन्स को दस दिन बाद भेंट दे सकने का प्रत्युत्तर दे दिया गया –

Pertab singh replied, he was, at present, so much occupied with his devotions that nothing, but the respect and friendship, which he entertains for your Lordship, could have prevailed on him to admit of any visit of ceremony or business, during the 'JAGPOOJA' That on this he should not be able to discuss the object of my mission for the next ten days, at the expiration of which he would return my visit [1]

कवि पद्माकर इन दिनो जयपुर के गोविंददेव-मन्दिर मे थे, जो चन्द्रमहल में स्थित है। श्रीगोविददेव* जयपुर राज्य के राजा कहे जाते हैं, नरेश तो केवल उनके अमात्य हैं। प्रतापसिंहविरुदावली के मगलाचरण पर विचार कीजिये

---

1. Poona Residency Correspondence Daulat Rao Sindhia Letter No. 186 Page 226

* पहले यह मूर्ति 'अम्बेर' में थी। महाराज जयसिंह ने जयपुर में उसी मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई – (गोविन्दभवन् भट्ट मथुरानाथ शास्त्री)

कवि पद्माकर ने मगलाचरण के अन्त मे ब्रजनिधि गोविंददेव से यही शुभ-कामना तो की, कि

'जय 'पद्माकर' जयपुर जगत जग जितिव्व दिबि देवदल।
उद्धत 'प्रताप' नरनाह कहँ 'विजय देहु' ब्रिजनिधि प्रबल॥'

प्रतापसिंहविरुदावली की सगन्ति पक्तियाँ –

'जिति जक्त जिहि अनुरक्त किय करि भक्ति देव गुविंद की।
बर बरनिऐ ब्रिरदावली सुप्रतापसिंघ नरिंद की॥'

उसी '**जगपूजा**' की अनुरक्ति–सूचिका है। वे प्रजा और जग-जन को युद्ध के भय से निर्भय करने के लिये ही युद्ध लडते थे और इसीलिये जगजन उनकी जयजयकार करती रही - '**प्रतापसिंहविरुदावली**' की रचना इसी समय हुई। जन-वाणी के स्वर से स्वर मिलाते हुए कवि पद्माकर ने कहा –

'नित निरभय हुव परजा सकल जयति जयति जग जन कहत'

श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी के अवसर पर की गई इस '**जग–पूजा**' के बाद 'कर्नल कालिन्स'[1] से भेट करने की बात आई। अब महाराज प्रतापसिंह के सामने दो प्रश्न थे - एक शरणागत अवध के नवाब वजीरुद्दौला की रक्षा, दूसरे बनारस के एजेट चेरी की जघन्य हत्या करनेवाले को प्राणदड दिलाने का न्याय। अन्त मे, महाराज प्रतापसिंहने कर्नल कालिन्स से यही वचन लेकर वजीरुद्दौला को उनके सुपुर्द कर दिया कि चाहे वे आजीवन कारावास का दड दे, पर नवाब वजीर की दृष्टि से उन्हे हथकडियाँ पहिनाकर बन्दी न बनावे। २ दिसम्बर सन् १७९९ के दिन कर्नल कालिन्स के सुपुर्द उन्हे कर दिया गया और मेजर विलियम लेली की हिरासत मे उन्हे कलकत्ता भेज दिया गया। अन्ततोगत्वा, मई १८१७ मे फोर्ट विलियम मे लखनऊ के नवाब वजीरुद्दौला को ३६ वर्ष की आयु मे ही मौत का शिकार बनना पडा।

महाराज प्रतापसिंह ने कवि पद्माकर को 'कविराज' की पदवी से विभूषित और सम्मानित किया। कविराज पद्माकर ने श्रावणी पूर्णिमा के दिन महाराज के हाथो मे 'येन बद्धो बली राजा' का स्मरण दिलाते हुए 'राखी' बाँधी और रक्षा–कार्यो के लिये उत्साहित करते हुए कहा –

---

१ वजीरअली की सुपुर्दगी पढिये - पत्रसख्या १९४ (अ) तथा (१८६)
–दौलतराव सिंधिया पृ २२६, २४१–२४२

वेदन को अच्छ रच्छ राखी महामच्छ ह्वै कै
कच्छ ह्वै के राखी धरा धर अभिलाषी है ।
कहै 'पद्माकर' प्रतिज्ञा प्रहलादहू की
राखी बलि राखी जो पुराननि में भाषी है ।।
छोर छिगुनी के छत्र ऐसो गिरिवर राख्यो
राखी व्रजमडली जो सब जग साखी है ।
द्रुपदसुता की लाज राखी महाराज तुम
ऐसी यह राखी मैं तिहारे हाथ राखी है ।।[1]

'गौरी' राजस्थान की इष्टदेवी मानी जाती है। राजस्थान मे 'गनगौर' का मेला मागलिक रूप से मनाया जाता है, उदयपुर के राणा और जयपुर के नरेश से इसका ऐतिहासिक सम्बन्ध भी है। जयपुर के ब्रह्मपुरी मार्ग से अजमेरी गनगौरीद्वार तक यह मेला भरता है । गुलाबीनगर जयपुर के चत्वर, चतुष्पथ, चतुष्क और चित्रशाला तथा वीथियाँ वातायन, भवन, मन्दिर, जालीदार झरोखोसे जिसने देखा है वही इस मेले की कल्पना कर सकता है । सस्कृत कवि प मथुरानाथ शास्त्री ने कहा है –

'गौरीगणवन्द्यगणगौरीगुणगौरवतो
जयनगरीह भाति सर्वसौख्यसवना ।'
'गौरीगन गावै गनगौरी के उछाह में'

'बादरमहल' मे विराजमान महाराज प्रतापसिंह के सन्मुख उपस्थित कविराज पद्माकर ने इन 'आमेर–चौपड' पर पचरगी चूनरी और सुदर लहरिया वस्त्रो मे सुसज्जित पुरवासिनी सुन्दरियो की रूपकान्ति से युक्त, पचरग झडावाले हाथी, घोडे, रथ, सिपाहियो की पलटन आदि से रमणीय और मनोहर गनगौर की सवारी को देखा तो उस 'गनगौर' के मेले के दिवस को सराहते हुए कहा –

'द्यौस गुनगौरि के सुगिरिजा गोसाइन को
आवत यहाँ ही आइ आनँद इतै रहै ।
कहै 'पद्माकर' प्रतापसिंह महाराज देखौ
देखिबो को दिवि देवता तितै रहै ।।

---

१ डॉ बलदेवप्रसादमिश्र से प्राप्त

सैल तजि, बैल तजि, फैल तजि गैलन में
हेरत उमा को यों उमापति हितै रहै ।
गौरिन में कौन धौं हमारी गनगौरि अहै
संभु घरी चारिक लौ चकित चितै रहै ॥

कला के केन्द्र जयपुर का यह मेला कलाकृतियों का मेला है । स्वरूप की कलना इतनी सच्ची और सुन्दर है कि इसे 'अनुकृति' न कहकर 'कृति' माननी होगी और इसका अनुमान 'शंभु' के उस भ्रम और चक्कर से लगाया जा सकता है, जो उनको चार घडी भौंचक्के में डाले रहा और उमापति, उमा की ओर मानो इस प्रश्न के उत्तर की प्राप्ति के लिये स्वयं देखते रहे । भीड इतनी कि वे अकेले ही इस गौरीयात्रा में प्रवेश पा सके । 'गनगौर' की सवारी का अन्यत्र वर्णन अब 'भाषात्मक' में देखिए –

आँगन अटारी छत छज्जे चित्रसारी चढी
चन्द्रमुखवारी पुरनारी चहुँ ओर की ।
मजमा जमा हैं सारी रगतो का देखो जरा
गोया गुलक्यारी किसी बागे पुरजोर की ॥
'मञ्जुनाथ' सरसवसन्तात्सुखसारीभवन्
फुल्लत्पुष्पधारी स हि कामतरु कोरकी ।
भायाजी ! भरी छै भीड भारी ई तिबारी होर
बारी खोल देखो असवारी गणगौर की ॥

'गनगौर' के कृतित्व और महत्त्व पर कवि पद्माकर की अन्य रचनाएँ हैं –

(१)

'न्हाय बडे तरके भर के जल फूलन के चुनि के पुनि ढेरी ।
त्यो 'पद्माकर' मन्त्र मनोहर जै जगदम्ब अदम्ब अएरी ॥
या उरधार कुमारपने अरि पावन पूजा करी बहुतेरी ।
चेरी गोविन्द के पायन की करिए गुनगौर गुसाइन मेरी ॥

(२)

वा बनबाग की मालिनि व्है पहिरावहु माल बिसाल घनेरी ।
त्यो 'पद्माकर' पान खवावहु खासी खवासिनी व्है सुख हेरी ॥
श्रीनँदनन्द गोविन्द गुनाकर के घर की हौं कहावहु चेरी ।
दे वरदान यहै हमको सुनिए गुनगौर गुसाइन मेरी ॥[१]

(३)

बाँसुरी ह्वै लगी मोहन के मुख माल ह्वै कण्ठ तजौं नहि फेरी ।
त्यो 'पद्माकर' ह्वै लकुटी रही कान्हर के कर घूमी घनेरी ।।
पीत पटी ह्वै कटी लपटी घट ते न घटे चितचाह जु एरी ।
दे वरदान यहै हमको सुनिए गुनगौर गोसाइन मेरी ।।[1]

'गनगौर' कुमारिकाओ और सुवासिनियो का पूजा-उत्सव है, अतः 'हिमाचलकिशोरी' तथा 'उमा' के रूप मे वर्णित पद्माकर कवि के ये निम्नलिखित कवित्त नीचे दिये जाते है :–

(१)

'नागपति, जागपति, गौरपति, नीरपति
ग्रामपति, गोपति, गयन्द ऐरावत की ।
कहै 'पद्माकर' प्रभापति, विभापति
सभापति समेत शुद्ध शारद सिपति की ।।
गंगपति, जगपति, किन्नर कुरंगपति
भूरपति, भूपपति, विहंगपति मति की ।
द्वीपपति, श्रीपति, शचीपति, नदीपति लौं
पति सब ही की है किशोरी परबत की ।।

(२)

ज्ञानिन की गुरुता गुमानिन की गंजनी
प्रमानिन की पैज वरदानिन की झोरी है ।
कहै 'पद्माकर' त्यों आनंद कदम्ब
निरालम्बन को अब अवलम्बन की डोरी है ।।
त्रासन की तोरनी, प्रकाशन की पुज नित
दासन की आस, वृषभासन की जोरी है ।
बल की बिधाता, फल फल की फलनि
थल थल की कुसुम हिमांचल किशोरी है ।।

---

१. लालाभगवानदीन ने उपरिलिखित पद्य ३ और २ को उदयपुर के गणगौर के वर्णन के साथ जोडा है– हिम्मतबहादुरविरुदावली. पृ १२

(३)

जीति लियौ काल कालकूट हू पचाइ दियौ
भाल प्रलैकाल की दवाएँ दीह दहिमा ।
कहै 'पद्माकर' अहिन समेत कीन्हे
आभूषन भूत अंग अगन में अहिमा ॥
गंग की, भग की, हिमालय प्रसग हू की
हिम की हिमांशु की न व्यापी नेकु नहिमा ।
तामें कछू महिमा महेश की न मानौ
यह जानौं उमा मेहदी महाउर की महिमा ॥

महाराज प्रतापसिंह के जीवन मे अब परिवर्तन आगया, वे वीर-शिरोमणि से भक्तशिरोमणि बनगये । उनका ध्यान अब उनके परम इष्टदेव गोविन्ददेव के चरणो मे लग गया । भक्ति और भजन अब उनके दो व्यापार थे । 'व्रजनिधि' नाम से वे काव्य करते थे । एक दिन महाराज प्रतापसिंह को उनके इष्ट देव श्रीव्रजनिधि ने स्वप्न मे आज्ञा दी[1] कि तू अपने प्रेम के अनुसार मेरी पृथक् प्रतिमा बना और महल मे मन्दिर बना और उसमे मुझे विराजमान कर तो तुझे मेरे साक्षात् दर्शन हुआ करेगे । महाराज ने श्रीव्रजनिधि की श्याममूर्ति बनाई, मूर्ति का मुखारविन्द अपने हाथो से, बडे प्रेम से कोरा और 'ठाकुर व्रजनिधि के मन्दिर' की प्रतिष्ठा की । तूँगा-युद्ध के विजय-साथी मित्र **श्रीदौलतराम हलदिया**[2] ने ठाकुर व्रजनिधि की प्रिया का बेटी के समान विवाह कर, सारा शृगार [(सिंगारा) वस्त्र, आभूषण, छप्पन-भोग आदि की भेट प्रदान की । महाराज प्रतापसिंह 'व्रजनिधि' ने इस सिंझारे और शादी का वर्णन निम्नलिखित 'रेखता' मे किया है –

'सरशार हो सिंझारे की शादी मे आना था ।
जा दिन का राधिका का रूप अजब बाना था ॥
सब उमर का सवाद जो चश्मो से पाना था ।
'व्रजनिधि' भी उस वहार में दिल का दिवाना था ॥'[3]

---

१ व्रजनिधि ग्रन्थावली चरित्र
2. DaulatRao Sındhıa and North Indıa Rajput state's Page 5
३. व्रजनिधि ग्रन्थावली पुरोहित हरिनारायण, छद ९९ तथा हरिपदसग्रह १३३ से १३४ तक

आज तक 'दौलतराम हलदिया' के वशज सिजारा आदि श्रीव्रजनिधि के मन्दिर मे भेजते आरहे है ।

महाराज प्रतापसिह की 'व्रजनिधि मुक्तावली' मे पद्य है –

'हवामहल याते कियो सब समझो यह भाव ।
राधेकृष्ण सिधारसी दरस परस को हाव ॥'[1]

महल मे मन्दिर की कल्पना वस्तुत 'जयपुरीय कल्पना' है । '**पद्माभरण**' की रचना जयपुर मे हुई है यह तो प रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन डॉ. उदयनारायण तिवारी, चतुरसेन शास्त्री मानते है,[2] और रचना-शैली की दृष्टि से भी यह स्पष्ट है कि '**पद्माभरण**' की रचना '**जगद्विनोद**' से पूर्व हुई है । **पद्माभरण** की यह पक्ति –

'जा विधि एक महल मे बहु मन्दिर इक मान'

उपर्युक्त कल्पना का ऐतिहासिक सम्बन्ध जोडती है, अत '**पद्माभरण**' को महाराज प्रतापसिहकालीन रचना मानना उचित है । उपरिनिर्दिष्ट '**सिजारे**' और '**भूषण**' के ऐतिहासिक सदर्भ से तथा पद्माकरकृत '**भूषण-चेतावनी**' मे वर्तमानकालक्रिया के रूपो के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि '**भूषणचेतावनी**' की रचना को भी महाराज प्रतापसिहकालीन रचना मानना चाहिए । '**बीज**' '**चुटबध**' '**बद्धी**' '**बैना**' '**बरा**' '**पान**' '**भरकुला**' '**उरमौली**' आदि भूषणो का प्रचार भी जयपुरतरफ पाया जाता है । आचार्य विश्वनाथप्रसादमिश्र ने '**लिलहारी लीला**' नामक एक रचना की विवृति का आदि अन्त देकर 'पद्माकर ग्रन्थावली' मे एक नवीन रचना का उल्लेख किया है । यह रचना कवि पद्माकर की है और यह भी इसी समय की रचना होनी चाहिए । सभव है कि महाराज प्रतापसिह 'व्रजनिधि' द्वारा की गई श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओ की विविध कविताओ को देख कवि पद्माकर ने '**लिलहारी लीला**' का वर्णन किया हो ।

जयपुर मे एक बाग है, जहाँ सावन के महीने मे लोग झूलने के लिये जाया करते है । महाराज प्रतापसिह भी वहाँ गए और उन्होने पद्माकर

---

१ व्रजनिधि ग्रन्थावली, पृ ५०

२. प रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास (स २०१९) पृ २९४. लाला भगवानदीन हिम्मत बहादुर विरुदावली पृ ८ डॉ उदयनारायण तिवारी : वीरकाव्य पृ ४८६ K. B Jindal A History of Hindi litera-ture P. 12

को 'समस्या' दी– 'सावन मे झूलिवो सुहावनो लगत है'। इसकी पूर्त्ति पद्माकर ने इस प्रकार की है –

भौंरनि को गुजनि विहार बन कुजनि में
मजुल मल्हारनि को गावनो लगत है।
कहै 'पद्माकर' गुमान हू तें, मान हू तें
प्रान हू तें प्यारो मनभावनो लगत है ॥
मोरनि को सोर घनघोर चहुँ ओरनि
हिडोरनि को वृन्द छवि छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में
सावन में झूलिवो सोहावनो लगत है ॥[1]

काशी मे पहले श्रावण के महीने मे शकु-उद्धार का मेला हुआ करता था। आजकल जहाँ बनारस वाटर वर्क्स है, उसके पीछे बडा भारी तालाब है। वही यह मेला जमता था। उसमे गौनहारिने गाती हुई चलती थी और गुडे लोग उनके साथ लट्ठ लिये हुए उनपर बोली ठोली छोडते हुए चलते थे। एक बार जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के साथ पद्माकर श्रावण के महीने मे काशी पधारे और इस मेले मे ले गये। गुडे लोग बोली छोडते हुए कह रहे थे– 'रग है री रग है'।[2] [धन्य धन्य या शावाशी के अर्थ में 'रग है' 'रग है' कहने की वहा प्रथा है] महाराज प्रतापसिहजी इसका अर्थ न समझ सके। उन्होने पद्माकर को इशारा किया कि यह क्या बात है? उन्होंने तुरन्त ही यह कवित्त बनाकर सुना दिया–

'सावन सखी री मनभावन के सग चलि
क्यो न चलि झूलन हिंडोरे नव रग पर।
कहै 'पद्माकर' त्यो जोवन उमगनि तै
उमगि उमगिन अनग अग अग पर ॥
चारु चूनरी की चारो तरफ तरग तैसी
तग अँगिया है तनी उरज उतग पर।

---

१. ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका डॉ कपिलदेवसिंह पृ. १३४
बनारसीदास चतुर्वेदी रेखाचित्र पृ १०७–१०९ विशाल भारत भाग, ८ अक ३.
पद्माकर की काव्यसाधना पृ २९ से ३१ तक

२ राष्ट्रभारती सितबर १९६० पृ ४८९ तथा प उदयशकर शास्त्री, आगरा

सौतनि के बदन विलोके बदरंग होत
रंग है री रंग तेरी मेंहदी सुरग पर ॥'

महाराज प्रतापसिंह बडे प्रसन्न हुए और एक हजार मुहर उन्होंने पद्माकर को इनाम में देने के लिये कहा। पद्माकर सकट में पड गये। वे नम्रतापूर्वक बोले– 'महाराज! मैं काशी का दिया हुआ दान नहीं ले सकता।' महाराज ने कहा कि अब तो हम सकल्प कर चुके है तुम्हे लेना ही होगा।' पद्माकर को मजबूर होकर दान लेना पडा, पर उन्होंने तुरत ही अपनी ओर से उसमे एक सौ मुहर मिलाकर उसे काशी के पडितो मे बॉट दिया। एक एक बनात और एक एक मुहर प्रत्येक पडित की सेवा में अर्पित की। काशी के नईबस्ती मुहल्ले के प श्यामाचरणजी के पुत्र पडित अयोध्यानाथजी के पास जीर्ण शीर्ण अवस्था मे वह बनात रत्नाकरजी ने स्वय देखी थी। प बनारसीदास चतुर्वेदी 'रत्नाकरजी का व्यक्तित्व' पर लिखते हुए कहते है – 'प्राचीन कवियो मे रत्नाकरजी पद्माकर की याद दिलाते है। पद्माकर राजसी ठाट–बाट से रहते थे, और आजकल के देखे, रत्नाकरजी का रहन सहन भी राजसी कहना पडेगा। यदि पद्माकर ने महाराज प्रतापसिंह की काशी मे दी हुई एक हजार मुहरे स्थानीय पडितो मे बाँट दी थी, तो रत्नाकरजी ने भी महारानी अयोध्या के 'गगावतरण' पर पुरस्कार मे दिये हुए एक हजार रुपये काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को दे दिये, इसपर यदि कोई प्राचीन-विचारोवाला आदमी रत्नाकरजी को पद्माकर का अवतार कह दे तो हमे आश्चर्य न होगा।[1] एक बार महाराज प्रतापसिंह के दरबार मे एक बाँसुरी-बजानेवाला आया, उस समय वहाँ पर पद्माकर भी मौजूद थे। उसकी बाँसुरी सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उनकी आँखो से आँसू निकल आये तब उन्होंने पद्माकर की ओर देखकर इस 'समस्या' को कहा – '**बाँसुरी बजत आँख आँसुरी ढरक परै**' पद्माकर ने उसी समय दुजान बैठकर उसकी पूर्ति इस प्रकार की –

बैठी बनि बानिक मनिमानिका महल मध्य
अंग अलबेली के अचानक थरक परै।

कहै 'पद्माकर' तहाँई तन तापन तै
बारन तै मुकता हजारन दरक परै॥

बाल छतियाँ तै थक थक न कढ़त मुख
बक ना कढत कर ककना सरक परै।

---

१. रेखाचित्र, पृ १३६, १३७.

पाँसुरी पकरि रही साँसुरी सभारैं कौन
बाँसुरी बजत आँख आँसुरी ढरक परैं ।।[1]

मणिमाणिक्य निर्मित राजमहल मे बैठी हुई नवयौवना के कानो मे अकस्मात् हरी बाँसुरी की सुनहरी टेर सुनाई पडी। उस अलबेली के अग अग थिरक पडे। निस्तब्ध निशीथिनी मे दूरवशी की ध्वनि ने नेत्रो मे आतुरता भर दी। हृदय का विरहताप बढने लगा। रोम रोम आकुल होगये। बालो मे गुथी हुई मुक्ताओ का समूह का समूह इस तपन से दरक उठा। नभ और जगती को हिलादेनेवाली लहरी अन्तस्तल मे झकृत होनेलगी। नवयौवना का हृदय इस आकुलता के आव्हान को समझने लगा। उसके हृदय मे भी कुछ कहलेने की उमग आगई। बाँसरी के स्वर मे भी भाषा होती है, उसमे लहरी है, तरगे है, माधुरी है और उत्स है। रन्ध्र-झकृत बासुरी के स्वर ने नवयौवना के हृदय के तार तार हिला दिये। प्रेम और विव्हल हो उठा। वायु के उच्छ्वास ने हृदय के श्वासनिश्वास मे गतिरोध और अवरोध उत्पन्न कर दिया। नवयौवना के मुख से कुछ कहने की इच्छा होते हुए भी वचन नही निकलते। अश्रुसभार से गला भर आया। मन हाथ मे नही रहा। हाथो के कगना सरक गये, आभूषणो ने उस कठोरता को सँभाला। किन्तु हृदय की कूकभरी हूक ने दिल के दर्द को इतना बढा दिया कि नवयौवना विवश हो अपनी पँसुरियो को पकडकर ही रह गई। मन की मीड ने और श्वासो की पीर ने ऐसा आकुल व्याकुल कर दिया कि सम्हालनेवाला भी दिखाई नही दिया। इस आवेग और उद्वेग ने अपने परिवाह मे कुछ ऐसा कर दिया कि बाँसुरी को सुनते ही आँखो से आँसू ढरक पडे।' इसपर महाराज ने एक लक्ष मुद्रा पद्माकर को और एक लक्ष मुद्रा बाँसुरी वजानेवाले को दी। पद्माकर की काव्यशक्ति से वे प्रसन्न हो चुके थे, उन्होने पद्माकर को 'कविराज' बना दिया और वे सुख से जयपुर दरबार मे रहने लगे। कविराज पद्माकर का यह वैभव देख पृथ्वी क्या, स्वर्ग के इन्द्र के लिये भी वह ईर्ष्या का विषय बन गया। कविराज पद्माकर कहते है –

झूमत मतग माते तरल तुरग ताते
राते राते जरद जरुर मांगि लाइबो,
कहै 'पद्माकर' सो हीरा लाल मोतिन के
पन्नन के भाति भाति गहने जड़ाइबो,

---

१. अखौरी गगाप्रसादसिह पद्माकर की काव्य साधना, पृ ३२.

भूपति प्रतापसिंह रावरे बिलोकि कवि
दैवता बिचारैं भूमिलोकैं कब जाइबो,
इन्द्र पद छोड़ि इन्द्र चाहत कवीन्द्र पद
चाहे इन्द्ररानी कविरानी कहवाइवो।

कवीन्द्र और कविरानी का वह विभव, और ऐश्वर्य अब कहाँ ?

'जयनगर भूपमनि श्रीप्रताप
दिय ग्राम, धाम धन अति अमाप'[1]

कवीन्द्रो के कल्पतरु महाराज प्रतापसिंह की छत्रच्छाया का सुखद आनद कविराज पद्माकर को अधिक न मिल सका। श्रावण सुदी १ सम्वत् १८६० के दिन महाराज प्रतापसिंह का देहान्त होगया, और उनके पुत्र महाराज जगतसिंह को जयपुर की राजगद्दी दी गई। कविराज पद्माकर ने बडे शोक मे कहा –

'गाउँ गज बाजि दै दराज कविराजन को
पटैल को पराभव दै फतूहन फले गए।
कहैं 'पद्माकर' अभै दै राज रैयत को
मन्त्रिन को मत्र दै न काहू सो छले गए॥
साहिब सवाई सुख सम्पति समाज-साज
जगतनरिंदै निज नदै दै भले गए।
वास वैकुंठ करिवे को श्रीप्रताप
पाकसासन के आसन पै पॉव दै चले गए॥'

महाराज प्रतापसिंहजी की एक महारानी श्रीराठौरजी उस समय जोधपुर मे थी। जयपुर से खबर आते ही भादोबदी ६, को मडोर[2] मे वे सती हुई, उनकी प्रशसा मे कविराज पद्माकर ने यह कवित्त कहा –

पाली पैज पन की प्रवेश कर पावक में
पौन ते सिताब सह गौन की गती भई।
कहै 'पदमाकर' पताका प्रेम पूरन की
प्रगट पतिव्रत की सौगुनो रती भई॥
भूमि हू अकाश हू पताल हू सराहै सब
जाको जस गावत पवित्र सो मती भई।
सुनत पयान श्रीप्रताप को पुरन्दर पै
धन्य पटरानी जोधपुर मे सती भई॥

---

१. केसरसभाविनोद कविवशावली २ देवीप्रसाद इतिहास जोधपुर

जयपुर से बूंदी होते हुए सागर :—

महाराज प्रतापसिंह के कविराज पद्माकर उनकी मृत्यु के बाद अधिक जयपुर में न ठहर सके, वे ठाकुर बिहारीजी की मूर्ति के साथ जयपुर से सागर की ओर चल पडे। रास्ते में जब वे कोटा बूंदी होते हुए सागर की ओर आरहे थे, तो इनके लावलश्कर, माल-असबाब, राज-वैभव को देख बूंदी नरेश ने समझ लिया कि कोई शत्रु आक्रमण करने के लिये आरहा है। शीघ्रही सेना को तैयार करने के लिये किले से नगाडे की आवाज आने लगी। यह सुन कविराज पद्माकर ने अपना नाम और परिचय बतलाते हुए यह कवित्त कहा —

'सूरत के साह कहैं कोऊ नरनाह कहैं
कोऊ कहैं मालिक ये मुलुक दराज के।

राउ कहैं कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहैं
कोऊ कहैं साहिब ये सुखद समाज के॥

देखि असबाब मेरो नरमैं नरिन्द सबै
तिनसों कहें मैं बैन सत्य सिरताज के।

नाम 'पद्माकर' डराउ मत कोऊ भैया
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के॥

बूंदी-नरेश ने कविराज पद्माकर का सत्कार किया और बिदाई दी।

सीतानगर की सती और कविराज पद्माकर —

सागर आते समय वे जब सीतानगर जिला दमोह से गुजर रहे थे तब वहाँ सनाढ्यवंशोद्भव पंडित भगवान दत्तजी सिरौठिया के वंश में रानी नाम की उनकी दादी सती हुई। उनके पति का नाम शंकर था। पति शंकर की मृत्यु के समय उनकी आयु केवल २१ वर्ष की थी। सती के चितारोहण के समय (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल ११, मंगलवार संवत् १८६१ के सन्ध्या समय) कविराज पद्माकर वहाँ उपस्थित रहे और उन्होंने 'रानी सती' के समक्ष यह कवित्त पढा —

भुवरस जाल सुधानिधि (१८६१) संवत्
फागुन उज्ज्वल पक्ष प्रमानी।

मंगलवार महा हरिवासर
भानु अथौत रहो दिन तानी ।।
भूरि सुभोगवती भुवि को
भरतार विहीन भयंकर जानी ।
शंकर साथ सती अनुरूपक
शकर साथ सती भई 'रानी' ।।[1]

सागर मे कुछ दिन रहकर कवि पद्माकर राजा जयसिह (कदाचित् सागर जिले का जैसीनगर ?) के यहाँ पहुँचे । दरबार मे आने के पहिले ही लोगो ने राजा साहब को भडका दिया कि आप उसके मुँह मत लगिये, उसकी कविता मे जादू है और उसके प्रभाव मे आकर न देनेवाले राजालोग भी लाखो रुपये दे दिया करते है । आप उसकी धाराप्रवाहिनी वाणी से बचते रहिये । ज्योही कवि पद्माकर राजा जयसिह के सन्मुख पहुँचे तो उन्होने पहले ही कह दिया कि हम आपसे धाराप्रवाहिनी कविता न सुनेगे, हमसे एक अक्षर मे बोलिये, कवि पद्माकर ने तुरन्त कहा 'दो'। इस एकाक्षर 'दो' को सुनकर राजा जयसिह अतिशय प्रसन्न होकर नतमस्तक होगये, तब कवि पद्माकर ने निम्नलिखित कवित्त पढा –

वकसि वितुंड दिये झुंडन के झुंड
रिपु मुडन की मालिका दई ज्यो त्रिपुरारी को ।
कहै 'पद्माकर' करोरन को कोष दिये
षोड़स हू दीन्हे महादान अधिकारी को ।।
ग्राम दिये, धाम दिये, अमित अराम दिये
अन्न जल दीन्हे जगती के जीवधारी को ।
दाता जयसिंह दोय बातै तो न दीन्हौं कहूँ
वैरिन को पीठ और डीठ पर नारी को ।।[2]

कहा जाता है कि यही पद्माकर कवि ने 'जयसिह विरुदावली' बनाई थी, जो अभीतक प्राप्त न हो सकी ।

---

१ श्री शिवसहाय चतुर्वेदी सती प्रथा का रक्तरजित इतिहास चॉद वर्ष ४, खड २, सख्या ३, जुलाई १९२६ पृ. २५५

२. उक्त प्रसग गढाकोटा (सागर) के श्रृगारतिलक तथा शिवपरिणय के सुकवि जानकी-प्रसाद दुबे ने सागर हिन्दी साहित्यसम्मेलन के अवसर पर मुझे सुनाया था ।

दतियानरेश परीक्षित के दरबार मे कविराज पद्माकर—

बसीन की सधि के बाद तो बुदेलखड का नकशा ही बदल गया था। दतियानरेश शत्रुजीत को (सन् १७६२–१८०१) अपने अन्तिम दिनो मे युद्ध मे लडता रहना पडा था। लकवा दादा महादजी सिंधिया की रानियो से सम्बन्ध जोड दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध होगये। उसने गढ सेहुडा पर (जो सिंधिया और होलकर राज्य के बीच पडता था) घेरा डाल दिया और राजा झाऊलाल के द्वारा हिम्मतबहादुर से पत्रव्यवहार करने लगा[1]। दौलतराव सिंधिया की आज्ञा से राजा अम्बाजी इगले ने भी इधर आक्रमण कर दिया। फ्रेंच आफिसर पैरो बहादुर ने अपने कर्नल पेड्रो, (जो पेड्रोसाहब फिरगी कहलाते थे), जेम्स शेफर्ड, जोसेफ बेलासिस, (जो कभी नवाब अलीबहादुर के आश्रय मे था) और कलेवखाँ द्वारा चारोतरफ से घेरा डाल दिया। अम्बाजी इगले के भाई बालाराव ने भी युद्ध मे भाग लिया। अब लकवादादा ने जसवन्तराव होलकर और नवाब अलीबहादुर की सहायता प्राप्त करनी चाही। राजा शत्रुजीत को स्वय इस युद्ध का सचालन करते देख मेजर पैरोबहादुर ने भी युद्ध मे भाग लिया। परिणाम यह हुआ कि पैरोबहादुर, कर्नल पेड्रो, सिम्स घायल होगए, बेलासिस मारे गये, लकवादादा जख्मी हो गए, और बाइयाँ भाग गयी, परन्तु वृद्ध दतियानरेश शत्रुजीत की युद्ध मे मृत्यु हो गई। राजा शत्रुजीत के बाद राजा परीक्षित दतिया की राजगद्दी पर बैठे।[2] राजा परीक्षित ने मराठो से अपने राज्य को छुडाना चाहा और भाडेर लूट लिया।[3] ब्रिटिश सरकार और पेशवा से सन् १८०२ मे बसीन सधि हो चुकी थी जिसके आधारपर बुदेलखड का बहुत सा हिस्सा ब्रिटिश सरकार के आधीन आचुका था। नवाब अली बहादुर की भी कालिंजर किले को लेते लेते उसी युद्ध मे मृत्यु होगई थी। हिम्मतबहादुर अभी जीवित थे, और इसे दतिया नरेश से सन्मान ही नही अपितु उसके गोसाई सरदारो को आश्रय मिलता था।[4] बसीनसधि के अतर्गत १५ मार्च सन् १८०४ मे कुजनघाटपर दतियानरेश रावराजा परीक्षित और कमाडर-इन-चीफ जनरल लेक के केप्टिन बेली के बीच सधि इन शर्तों पर होगई (१) राजा परीक्षित को

---

१ दौलतराव सिंधिया एंड नार्थ इडिया. पत्र ६४, २१३, ३०, १९८ तथा पृ ९३, २६६, ५८, २४५

२ दतिया गजेटियर राजा शत्रुजीत पृ ११

३. तत्रैव राजा परीक्षित पृ ११

४. दतिया गजेटियर आर्मी सेक्शन. ७. टेबिल १५ पृ. २९, ३०

दतियानरेश तथा उनके आनुवंशिक उत्तराधिकार को प्रतिष्ठित किया गया (२) राजा परीक्षित अथवा ब्रिटिश सरकार के मित्र दोनो के मित्र होगे और ब्रिटिश सरकार या दतियानरेश के शत्रु दोनो के शत्रु होगे। (३) भाडेर का इलाका जिसे राजा परीक्षित ने जीता है, गोहद के राना को दे दिया जाय। (४) चौरासी इलाका राजा परीक्षित को मिले, (५) राजा अम्बाजी इगले जब भी राजा परीक्षित के राज्य को क्षति पहुँचावेगे तो ब्रिटिश सरकार उसे रोकेगी आदि आदि[1]। केसरसभा-विनोद की कविवंशावली वर्णन के अनुसार कवि पद्माकर का जयपुर से दतियानरेश परीक्षित के यहाँ आना बतलाया है और यही उनके सुयश के छन्द तथा रामरसायन की रचना करना लिखा है[2] —

"दतिया नरेश बुन्देलवीर, महिपाल परीछत समर धीर।"
"तिहि सुजस गाय लिय ग्राम धाम, व्है कर अजाचि विख्यात नाम
तिहि किय कवित्त बहु काव्य ग्रन्थ, श्रीरामचरित बाल्मीकि पंथ॥"

दोहा

'श्रीपद्माकर सुकवि की कविता सुरसरि धार।
फैली छिति पर छीरसी छीरधि पारावार॥"

कवि पद्माकर ने दतियानरेश राव-राजा परीक्षित के दरबार मे आकर उनके सुयश का वर्णन किया है। दतियालाइब्रेरी मे बहुत खोजने पर एक 'कवित्त सग्रह' मे ये दो छद उनके यश के प्राप्त हो सके है —

(१)

"दाहियतु आपु सत्रुसेननि की सेना हकि,
हम हू अदैनन के नैना दाहियतु है।
कहै 'पद्माकर' सु बाहियतु अस्त्र आपु,
हम हू पवित्र जस पत्र बाहियतु है॥
जग विदित बुदेला राव पारीछित महाराज
रीति यह ऐसी सो सदा निवाहियतु है।
चाहियतु मेरो आपु कवित विसाला
त्योही हम हू तिहारो बोलबाला चाहियतु है॥"

---

१. तत्रैव एपेंडिक्स 'ए' आर्टिकिल्स १-१०, पृ ३९-४१
२ पौत्र गदाधर कृत 'केसरसभाविनोद' हस्तलिखित छन्द १०-१३
अत मेरा इस सबध में पूर्वकथन अशुद्ध ठहरता है देखिये डॉ व्रजनारायणसिंह कविवर पद्माकर और उनका युग, पृ १००

पद्माकरकृत

राम रसायन का हस्तलेख

स्वर्गीय मुंशी मथुरा प्रसाद खरे

के सौजन्य से

श्री दयानद वाचनालय पुस्तकालय, बांदा से प्राप्त

(२)

"हौ तुम सदा ही सविताए बस आभूषन
हम कविता के परगसिवे कौ रवि है ।
कहै 'पद्माकर' कनूनहनि कवै हौ तुम
हम हू रहै त्यौं जुक्तिजूहन सौ कबि है ।।
तुम नृप 'पारीछित' जोरि हो जितो ही जस
तेतो बगराइ हम काहू वै न दवि है ।
हौ तुम सुखिनन में दैनवारे महाराज
हम हू कवित्तन में दैनवारे कवि है ।।

उक्त दूसरे छद मे अग्रेजो से की गई कुजनघाट – सन्धि की शर्तों के कानूनी अर्थ को समझ लेने की शक्ति पर सदेह प्रगट करते हुए अपनी युक्ति से समर्थ कवि ने अपने अह को प्रकट किया है। निस्सदेह यह रचना १५ मार्च सन् १८०४ के बाद की है, और तभी कवि पद्माकर का परीक्षित को 'नृप' तथा 'महाराज' शब्दो से सबोधित करना उपयुक्त ठहरता है। 'रामरसायन' की रचना के बाद कवि पद्माकर को एक नवीन सुख और आनद मिला। भूपमणि परीक्षित ने इन्हे बहुत दिया उनका परिचित यह छन्द यहाँ उद्धृत है –

'जप तप कै चुक्यौ सु लै चुक्यौ सकल सिद्धि,
दै चुक्यौ चुनौती चित्त चिन्तन के नाम* को ।
कहै 'पदुमाकर' महेस सुख जोय चुक्यौ,
ढोय चुक्यौ सुखद सुमेर अभिराम को ।।
भूपमनि 'पारीछत'* राउरो सुजस गाय,
ल्याय चुक्यौ इदिरा* उमगि निज धाम को ।
ध्याय चुक्यौ धनद कमाय चुक्यौ कामतरु
पाय चुक्यौ पारस रिझाय चुक्यौ राम को ।।'

उक्त कवित्त पर प्रसन्न होकर महाराज ने इन्हे जागीर प्रदान की तथा निवास के लिये भरतगढ मे रहने को मकान दिया। इस राजवश का राज-

---

* पाठान्तर 'जाम' (डॉ ब्रजनारायण मिश्र), 'भूपति प्रतापसिह' (गोविंदराव कवीश्वर, जयपुर का हस्तलेख) 'इन्द्र राव सगि' (गोविंदराव कवीश्वर)

गुरुपद पद्माकर के वशजो के पास रहा आया है।[1] 'रामरसायन' की रचना के बाद राजा परीक्षित के आश्रित 'शिवप्रसाद कायस्थ (९६३) ने 'अद्भुत रामायण', सीताराम (१३११) ने 'रामायण' तथा 'जानकीदास' ने भक्तिपरक रचनाएँ की है।[2]

कवि पद्माकर कालिजर मे –

आचार्य प विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'पद्माकर ग्रन्थावली' के 'प्रकीर्णक' मे 'भरतसिह' की प्रशस्ति मे एक छन्द उद्धृत किया है।

'काल ते कराल विकराल काल काल हू ते
कहर कमाल कला कुलिस गनै नहीं।
कहे 'पद्माकर' दिवाकर ते दूनी दिपै
तेज की तरग तैसी तड़िता तनै नहीं॥
जैसी समशेर सेर 'भरत' तिहारे हाथ*
तैसी समसेर सेर काहु के कनै नही।
कहै करि प्रचड जन काटै रिपुमुड तव
मुड रुडमाली पै बटोरत बनै नही॥"

आचार्य मिश्रजी ने 'ऐतिहासिक व्यक्ति' शीर्षक परिचय मे 'भरत' को 'भरतजू' और 'भरतसिह' कहा है और उन्हे कालिजर के किलेदार रामकिसुन चौबे के आठ लडको मे से एक बतलाया है।[3] बुन्देलखड के 'बादा' के समीप दो दुर्ग थे एक 'अजयगढ' और दूसरा 'कालिजर'। पन्नानरेश हिन्दूपति ने कायमजी चौबे को कालिजर का शासक बना दिया था। उनके पुत्र सरमेदसिह की मृत्यु के बाद सन् १७८५ मे धौकलसिह राजा हुए। राजा हिन्दूपति और तत्पश्चात् धौकलसिह ब्रिटिश सरकार से सन्धि कर चुके थे और कलकत्ते से पत्रव्यवहार भी कर चुके थे।[4] सेनापति गाडर्ड ने कायमजी चौबे को मिलाकर केन नदी के किनारे किनारे कलकत्ते की सेना

---

१. कवि पद्माकर और उनका युग डॉ. ब्रजनारायण सिंह (१९६६) पृ ९८.

२ मिश्रबन्धु विनोद पृ ९४६.

* पाठान्तर 'जैसी समसेर भीमसिह महाराज तेरी' डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र के कथनानुसार।

३ बुन्देलखड का सक्षिप्त इतिहास पृ ३०० तथा पद्माकरग्रन्थावली पृ ८७.

४ दफ्तरावसिधिया पत्रसख्या २१ पृ ४९.

को मार्ग दे दिया। रामकिसुन चौवे इन्ही कायमजी के पुत्र थ, जो पन्ना राज्य से स्वतत्र हो, जागीरदार बन गये थे। अलीवहादुर ने इन्ही से कालिंजर जीतने की लडाई लडी और लडते लडते वह मर गये। उनका पुत्र शमशेर जगवहादुर भी उसे न ले सका और बादा मे वापिस जाकर रहने लगा। हिम्मतवहादुर से अब अगरेजो ने सन्धिकर लेना चाही, वह भी अपने भाई उमरावगिरि को अवध के नवाव की कैद से छुडवाना चाहता था। अँगरेजो ने हिम्मतवहादुर से प्रसन्न होकर उसको 'महाराजावहादुर' की पदवी दी। उसकी सेना की सहायता से कर्नल पावेल ने कनवारा तथा कुवसा के युद्धो मे शमशेरवहादुर को पराजित किया। इस प्रकार महाराजावहादुर हिम्मत-वहादुर अन्तर्वेद का शासक वनगया। मौदहा, छीन, हमीरपुर, दौसा आदि परगने उसे प्राप्त होगए। वुन्देलखड के यमुना निकटस्थ एक-भूखड का वह स्वामी वन गया, और सत्तरवर्ष की अवस्था मे जनवरी सन् १८०४ मे वादा के समीप, केन नदी के किनारे कनवारा नामक स्थान पर हिम्मतवहादुर की मृत्यु होगई [१]। कवि पद्माकर अपने इन दोनो आश्रयदाताओ की मृत्यु के वाद उस कालिंजर मे अवश्य आये होगे जहाँ की काली कपाली[२] का उन्होने रक्षार्थ आव्हान किया था।[२] यहाँ भी अँगरेज अपनी सत्ता स्थापित करने मे लगे हुए नजर आये। किलेदार रामकिसुन चौवे के वडे पुत्र वलदेव मर चुके थे, दरियावसिंह अँगरेजो से सधि कर लेना चाहते थे, परन्तु तृतीय पुत्र 'भरतजू' ने वुन्देल–नरेशो के समान समान हक मॉगा और अजयगढ किले के पास के उनके गॉवो को भी वापिस मॉगा। वीर भरतजू ने जनवरी सन् १८१२ मे चढाई कर दी, परन्तु वडे भाई दरियावसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। परिणामस्वरूप भरतजू के कुटुम्व के प्रत्येक व्यक्ति के नाम पर अलग अलग सनदे दी गई।

महाराज जगतसिंह के दरवार मे कवि पद्माकर :–

सम्पूर्ण वुन्देलखड को अँग्रेजो के अधीन देख वुन्देलखडवासी कवि पद्माकर अव जयपुर नरेश जगतसिंह के दरवार मे गये और अपनी ६० वर्ष की अवस्था मे उन्हे यह छन्द सुनाया –

---

१ वुन्देलखड का इतिहास पृ २८०, २८२ तथा डॉ. टीकमसिंह तोमर हिंदी वी-काव्य पृ ३४० तथा फुटनोट।

२ काली कपाली निसदिना निन नृपति की रक्षा करै ' – हिम्मतवहादुरीविरुदावली.

'भट्ट तिलगाने को बुन्देलखडवासी कवि
नृप* सुजस प्रकासी पद्माकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छद छप्पय अनेक भाँति
सस्कृत प्राकृत पढ्यो हौ, गुनग्रामा हौं॥
हय, रथ, पालकी, गयद, गृह, ग्राम चारु
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिह,
तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं॥

नाम, जाति, निवास, व्यवसाय के साथ ही साथ अपनी विद्वत्ता, कविता, अपने वैभव तथा अपने आश्रयदाता से सम्वन्ध परिचय का ऐसा कृतज्ञताद्योतक छन्द हिन्दी मे अन्यत्र नही मिलता।[1]

'भट्ट तिलंगाने को' आरभ मे कहकर अत मे 'विप्र' शब्द प्रयुक्त कर पद्माकर ने अपने आपको 'तैलंग भट्ट ब्राह्मण' कहा है। कवि ने तिलगान को अपनी पुण्यभूमि तथा बुदेलखड को अपनी निवासभूमि बतलाकर दक्षिण और उत्तर का सम्वन्ध हिन्दी के माध्यम द्वारा स्थापित किया है तथा दक्षिण और उत्तर के अभिधान से लोकयात्रा के अपने अनुभव, विभिन्न देशो के गुणदोषो से अपने परिचय, एव देशवार्ता और देशभाषा के अपने परिज्ञान की ओर सकेत किया है। 'भट्ट' शब्द जहाँ स्तुतिकाव्योपजीवी पूज्य अर्थ का द्योतक बनकर, बाद मे 'भाट' 'भटैती' शब्दो का जन्मदायक है, वहाँ वह युद्धविद्या मे निपुण होने के नाते 'भट्ट' 'सुभट' शब्दो का भी जन्मदायक है। कवि पद्माकर जहाँ राजदरबारो मे उपस्थित रहे है, वहाँ युद्ध आने पर रणक्षेत्र पर भी उपस्थित रहे है।[2] 'तिलगाना' और 'बुदेलखड' भारतवर्ष की दोनो वीरभूमियाँ है। कवि पद्माकर ने इन दोनो वीरभूमियो के वीर 'तिलगो' और 'बुँदेलो'[3] का गुणगान किया है। भरतमुनि ने सम्राट् को 'भट्ट' शब्द से सबोधित करने का आदेश दिया है, अत. यह शब्द जयपुराधीश जगतसिह का भी सबोधन है। आगे चलकर यह 'भट्ट' शब्द वहाँ सम्मानित पदवी के रूप मे प्रदान किया जाने लगा, यथा :—

* पाठान्तर 'कवि' या 'नृप'
१ प्रो हृषीकेश शर्मा कवि का आत्मपरिचय सरस्वती जनवरी १९२५ पृ. ५८.
२ प्रतापसिंहविरुदावली छन्द ८१, हिम्मतबहादुरविरुदावली छन्द १८०
३ तत्रैव – छन्द ९१, पृष्ठ २६८, ,, (तत्रैव छन्द २८, पृष्ठ ७)

'कथाभट्ट'[1]। जयपुराधीश जगतसिंह के समक्ष अपने को 'बुंदेलखंडवासी' कहना कुछ विशेष अर्थ रखता है। कवि पद्माकर के पिता मोहनलाल तथा वे स्वय 'कविराज शिरोमणि' अथवा 'कविराज' पद प्राप्त कर के भी बुन्देलखड मे ही बसते रहे– यह सदर्भ कुछ अवश्य लक्षित करता है। 'कवि' या 'नृप' मे पाठान्तर[2] मिलता है। ऐतिहासिक परिवर्त्तनो की दृष्टि से 'नृप' का अर्थ होगा वे नृप जो पहिले जनता का पालन करते थे अब स्वय अगरेजो के कृपापात्र और शरणागत हो गये और वे 'नृप' अब 'महाराजा' और 'महाराजा बहादुर' बनकर परवश और पराधीन होगये है अत '**सुजस प्रकासी**' कवि पद्माकर तभी तक बुँदेलखडवासी बने रहे, जब तक वहाँ वे 'नृप' रहे। किन्तु इस परिवर्तन को देखकर तो वहाँ से चले आने का मन हो गया है। '**पद्माकर सुनामा हौं**' कहने पर भी डॉ हीरालाल ने 'सागर सरोज' मे सागर के सरोजो को देखकर कल्पना कर ली कि पद्माकर का वास्तविक नाम 'प्यारेलाल' था। वे कहते है कि 'जैसे तैलगी पद्माकर, जिनका नाम 'प्रियरत्नम्' के बदले ठेठ बुदेलखडी मे 'प्यारेलाल' रखा।[3] इसका समर्थन भी लाला सीताराम बी ए ने किया था।[4] Nom de plume तथा Nom de guerre के सबध मे मै अत्रैव पृष्ठ ३२ पर लिख चुका हूँ। फिर छन्द (अत्रैव पृ ८७) मे वे भी स्वय कहते है – '**नाम पद्माकर**'। जोरत का शाब्दिक अर्थ है 'अभियोग'। कला के पक्ष मे वह शब्द छन्द शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। यह वर्ण–अवर्ण, लघु–गुरु, युक्–अयुक्, अभग–सभग, गण–अगण के शास्त्रीय ज्ञान के साथ कवि समय–सम्मत पाठ के कौशल का द्योतक है, जिससे छन्दोविचिति का आनन्द प्राप्त हो सके, तथा छन्दोभग, यतिभग, गतिभग के दोषो का निरसन कर सके। भावपक्ष मे 'जोरत' शब्द का अर्थ यश जोडने से है, जिसकी व्यजना आगे चलकर 'जोरत सुजस' तथा 'जस जोरि' आदि शब्दो से होती है। '**कवित्त छन्द छप्पय**' छन्दान्वय का सूचक है। आचार्य नन्ददुलारेवाजपेयी कहते है – कवित्त छन्द का

---

१ महाराज जगतसिंह की महारानी चम्पावती ने राजगुरु के साथ 'कथाभट्ट' की पदवी प्रदान की थी। 'चन्द्रालोक' की कथाभट्टीया टीका - तृतीय सस्करण – निवेदन.

२ 'नृप' पाठान्तर (मिश्रबन्धु विनोद, हिन्दी के कवि और काव्य, जयपुर वैभवम्) वही (गोविंदराव कवीश्वर – विशाल भारत)

३ सागर सरोज, पृ ४१ Eleventh Report on search of Hindi manuscript of N P Sabha P 23

४ Padmakar, nom de guerre of Pyarelal of Banda– A brief History of Hindi literature P 11.

जितना आकर्षण और जितना सहज सौन्दर्य कवि पद्माकर निर्मित कर सके थे शायद ही किसी दूसरे कवि ने किया हो इस छन्द का जो प्रवाह, जो धारावाहिक सौन्दर्य, जो सुपाठयता तथा जो सहज आकर्षण पद्माकर की रचनाओ मे मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है कई बार तो कवित्त छन्द के लिए केवल पद्माकर छन्द पर्यायवाची रूप मे व्यवहृत होता है।[1] रासो का कवित्त छन्द छप्पय ही तो है, यही तो वीररस का लाडला छन्द रहा है। कवि पद्माकर की बानी आरभ से अबतक वीररसगर्भा ही प्रमुखतया रही है [तहँ 'पद्माकर' कवि कहत छकि छप्पय छन्द सु नृप निकट']। 'अनेक भाँति' शब्द के प्रयोग से नाना प्रकार के छन्दो का अर्थ तो होता है, पर कवि पद्माकर के छन्दो मे इससे भिन्न भिन्न रससश्रयत्व का महत्व समझना चाहिये। 'गगालहरी' मे केवल एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है वह भी कवित्त, सवैया आदि नही। रससश्रयत्व के आधार पर ही उनकी छन्दो- रचना हुई है। उन्होने लिखा कम है कहा ज्यादा है। 'सस्कृत प्राकृत पढौ' से उस कविशिक्षा का सूचन है, जो कवि के लिये राजसभा मे अपेक्षित था –

> 'संस्कृतै प्राकृतै वाक्यै य शिष्यमनरूपत ।
> देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरु स्मृत ॥'[2]

कवि पद्माकर ने यही तो पढा था। 'गृहीतविद्योपविद्य काव्यक्रियायै प्रयतेत'। सस्कृत-प्राकृत के युग्म से ही तो हिन्दी को साहित्यशास्त्र का रिक्थ मिला है। साहित्य के राज-सिहासन पर ये दो ही भाषाएँ तो प्रतिष्ठित और चिरासीन रही है। सस्कृत और प्राकृत का अभ्यास ही सुकविरचना का साधन तथा उसका काव्य ही राजस्तुतिमूलक काव्य का हेतु रहा आया है। 'आचार्य देव' ने भाषा के साथ प्राकृत सस्कृत के अभ्यास को महाकवि का पथ माना है। रीति का यही शुभ पथ था। 'जु गुनग्रामा हौ' मे काव्यबध के साथ गुणानुबन्धि का सयोग इस पक्ति का वैशिष्ट्य है। गुणो की शोभा को 'हेतु' या 'हेतव' माना जाता रहा है। अत 'गुनग्रामा' शब्द-प्रयोग उचित है, फिर 'हौ' के अह का औचित्य तो और भी उत्कर्षता का हेतु है। 'हय' 'रथ' 'पालकी' 'गयद' 'गृह' 'ग्राम चारु' की पक्ति कवि पद्माकर द्वारा अर्जित सम्पत्ति और वैभव के प्रमाण है। 'काव्य यशसे अर्थकृते' के प्रत्यक्ष प्रयोजन की चर्चा से कवि ने प्राप्ति और उपभोग का उल्लेख किया

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी कवि पद्माकर प्रारंभिक वक्तव्य पृ ? ? संस्कृत प्राकृत तो काव्य-भाषा की माताएँ है। सुकवि की रचनाएँ सस्कृत या प्राकृत मे ही तो हुआ करती थी।

२ नारद-स्मृति

है। 'जस, सम्पति, आनन्द अति' की उपलब्धि ही कवि पद्माकर के कवि-व्यापार की उपलब्धि है। 'भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया जिन, लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं' के स्थान पर पद्माकर कवि के 'आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौ' का प्रमाण और परिणाम हम उनके राजदरबारो मे तथा राजसी लावलश्कर एव ठाटबाट म देख चुके है।[1] अपनी इस प्राप्त शक्ति, निपुणता और अभ्यास की यह सूचना काव्य शास्त्रीय भी है। 'भट्ट' और 'कवि' शब्द मे कवित्व की शक्ति है, 'रचै कवित नित कवि सुकवि, ढिग सो अभ्यास प्रमान' के अनुसार इसमे अभ्यास है, 'पदपदार्थ पावै तुरत ताहि निपुणता जानु' के मत से यहाँ निपुणता का भी निर्देश है।

'मेरे जान मेरे तुम कान्ह हो जगतसिंह

तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौ,[1] इन अन्तिम दो पँक्तियो मे कवि पद्माकरने अपने महाराजा माधवसिंह और प्रतापसिह से चले आनेवाले पुराने परिचय की ओर इगित किया है। महाराजकुमार जगतसिंह के काव्यारभ, महाराज जगतसिंह के श्रावण शुक्ल १४ सवत् १८६० के राजतिलक[2] तथा दरबार मे उपस्थित होने का पूर्व-सकेत किया है। 'विप्र मैं सुदामा हौं' मे कवि ने वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यगार्थ का सुन्दर प्रयोग किया है। 'विप्र' शब्द ब्राम्हण का द्योतक है अत 'कवि पद्माकर देत है कवित बनाइ असीस' कहकर अपने को स्त्रोता कहा है और अपने नित्य सबध की सूचना दी है। गूढलक्षणा से यदि प्राक्प्रीति लक्षित होती है तो अगूढलक्षणा से दोनो की आभिजात्य भावना भी लक्षित होती है। 'कान्ह' और 'सुदामा' के सयोग से गुणग्राहक और गुणग्राम के ओचित्य और सौभाग्य की व्यजना होती है एव राज्याश्रय-आश्रित की भावना भी व्यजित होती है। 'कान पिछाने छदरस' के ध्वनि-सकेन से काति, ओज, समता, माधुर्य तथा उदारता आदि गुणो की दीप्ति का भी आभास मिलता है। किसी ने ठीक कहा है –

'ख्याता नराधिपतय कविसश्रयेण।
राजाश्रयेण च गता कवय प्रसिद्धिम्॥

राज्ञा समोऽस्ति न कवे परमोपकारी।
राज्ञो न चास्ति कविना सदृश्य सहाय॥'

---

१ पद्माकर की काव्यसाधना पृष्ठ ४०

२ देखिये – पद्माकर की काव्य साधना, कवि परिचय पृ ३४-३५

कवि पद्माकर के इस छद को पढकर एक स्वयसिद्ध महाकवि ने उन्हे टुकडा-खोर* कहा है। मेरा उनसे विनम्र निवेदन है कि वे इन चरणो के अर्थ को ठीक ठीक समझे और यदि न समझ सके तो प्रत्येक चरण के आदि अक्षरो को एकत्र लेकर पढे, उन्हे पढने पर मिलेगा- 'भ जो ह मे'।

'इतिहास जोधपुर' के अनुसार 'भादो सुदी अष्टमी संवत् १८७० को महाराज मानसिह की शादी जयपुर के महाराज जगतसिंह की बहन से और दूसरे दिन महाराज जगतसिंह की शादी महाराज मानसिंह की बाई से गाव (रूपनगर) एलाके किशनगढ मे हुई। महाराज जगतसिह के साथ कवि पद्माकर भी थे। कही ऐसा तो नही हुआ कि इस विवाह-निमत्रण को पाकर ही कवि पद्माकर जयपुर दरबार मे आगये हो? कवि पद्माकर ने महाराज जगतसिंह की प्रशसा मे भी कुछ छन्द लिखे है, उनके हाथी, घोडोकी लडाई का तो क्या उनके लवा और तीतर की लडाई का वर्णन भी किया है।[1] महाराज जगतसिंह की आज्ञा से ही जयपुरनगर, जयपुरनरेश तथा उसके पूर्व रसिक-शिरोमणि नदनदन तथा शक्ति सिलामई और आमेर गढ का स्मरण और मगलाचरण करते हुए रस-ग्रन्थ जगद्विनोद की रचना कवि पद्माकर ने की है। कहा जाता है कि 'जगद्विनोद' ग्रन्थपर प्रसन्न होकर महाराज जगतसिंह ने बारह हाथी, बारह ग्राम और बारह लाख मुद्राएं पारितोषिक मे दी। कवि पद्माकर सवत् १८७० के बाद जोधपुर भी गये, पर वहाँ ठहरे नही।[2] तदनन्तर उनकी इच्छा सीसोदिया दरबार देखने की हुई और वे उदयपुर आगये। उस समय महाराणा भीमसिह गद्दी पर विराजमान थे। गनगौर[3] के मेले मे वे महाराणा के साथ थे।[4] कवि पद्माकर के शब्दो मे उदयपुर के गणगौर के मेले के दिन का वर्णन सुनिये -

> **'द्यौस गनगौर के सुगिरिजा गोसाइन की**
> **छाई उदयपुर में बधाई ठौर ठौर है।**

---

* माधुरी-वर्ष १२-खड-१, सख्या ६, पौष, तुलसी सवत् ३१० पृ ८०९.

१ पद्माकर ग्रन्थावली. प्रकीर्णक, छन्द १९, २०, १६ १७, १८

२ लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुर विरुदावली द्वितीय सस्करण पृ ११, १२

३. मेवाड इतिहास के अनुसार यह गनगौर मेला स १८५१ से अधिक समारोह से मनाया जाता है, जब महाराणा की बहिन का विवाह जयपुर के राजकुमार से हुआ था, — (एनल्स आफ मेवाड पृ १००)

४. मिश्रबन्धुविनोद द्वितीय भाग पृ ९०३—९०४.

देखो भीमराना यो तमासा ताकिबे के लिए
माची आसमानन में बिमानन की झौर है ॥

कहै 'पद्माकर' त्यो धोखे में उमा के गज
गौनिन की गोद में गजानन की दौर है ।

पारावार हेला महा मेला में महेस पूछै
गौरन में कौनसी हमारी गनगौर है ॥

पद्माकर कवि के अन्तैव पृ ६८ पर दिये गये महाराज प्रतापसिह के साथ जयपुर के गनगौर वर्णन और उदयपुर के गनगौर वर्णन मे इस उत्सव की भव्यता और महत्ताके दर्शन अभीष्ट है। राजस्थान का 'गनगौर' उत्सव गौरी की अनुकृतियो का मेला है और यह एक प्रसिद्ध लोकोत्सव है। गोरी की अप्रतिम कृतियाँ इतनी सच्ची ओर ईमानदारी से वनाई गई है कि निर्जीव-सजीव तथा लौकिक-अलौकिक का भेद ही नहीं रह पाया है। कला का यही अभिप्राय है। गौरी के इस पार्थिव राशि–राशि रूपसौन्दर्य को देखने के लिये स्वर्ग से देवताओ के विमानो के झुड के झुड उतर आये है। मेले में रगो से रगे, सजे हुए गजो के वीच गजानन गणेश दिग्भ्रमित हो सचाई ढूढने मे लगे हुए है, उमा के गणेश और महेश दोनो की ऑखो मे मतिभ्रम होगया है। महाराणा भीमसिह के साथ के इस वर्णन मे चाक्षुस् प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अतिरेकता यह प्रदर्शित की गई है कि महेश को अपनी गोरी को ढूढने के लिये पूछना पड रहा है। गोरी के रूपासक्त शिव पूछने के चक्कर मे पड गये है। 'गो' का अर्थ 'वाणी' है और 'रा' का अर्थ 'देना' है, 'गोरी' तथा 'गौर' शब्द इसी से तो वना है अत उमापति का, चलती फिरती गनगौरिन मे वाणी के द्वारा रूप की गौरी को ढूढते हुए पूछना कवि की कल्पना तथा तमाशे को भव्यता प्रगट करना है, जिस हलचल को देख स्वर्ग के देवता भी हँस पड़ें। रमणीयता का यह रूप श्लाघनीय है। अन्य छन्द १, २, ३[१]। पौष शुक्ल ९ सवत् १८७५ के दिन महाराज जगत्सिह का देहावसान होगया, अत जयपुर के दरवार मे कवि पद्माकर को कोई आकर्षण न रहा और वे वूदी नरेश के दरवार में आ गए। यहाँ उन्होने **अमरकोष** का भाषानुवाद किया[२]। कहा जाता है कि कवि पद्माकर जव वूदी से ग्वालियर जा रहे थे तव भील–डाकुओ ने इनका धन लूट लिया, तो कवि पद्माकर ने आल्हा–छन्द मे अपनी कवि–वाणी सुनाई, जिस पर प्रसन्न होकर भील–

---

१ पृ ६८—७१ तक २. कविवर पद्माकर और उनका युग पृ ११०

डाकुओ ने सारा लूटा हुआ धन इन्हे वापिस कर दिया । काश, वे आल्हा-छद प्राप्त होसके होते !

कवि पद्माकर ग्वालियर नरेश के दरबार मे –

उन दिनो आलीजा दौलतराव सिंधिया अग्रेजो को हिन्दुस्तान से खदेडने के इच्छुक हो युद्ध की तैयारी कर रहे थे, अत बूदीनरेश के दरबार से वीर रस छक्के पक्के कवि पद्माकर अब आलीजा दौलतराव सिंधिया के दरबार मे आये[१] । कविवर पद्माकर ने उनके परिचय मे कहा –

महाराज माधवतनय, नृपमनि दौलतराव ।
साहब सिंधियाकुलकलस, दया दान दरियाव ॥

सोवत सेज फनिद की, तब ते सुचित गुविन्द ।
जग जानिब जब ते जग्यो, दौलतराव नरिन्द ॥

दौलतरावसिंधिया स्वय कवि थे ।[२] दौलतरावसिंधिया कुशल राजनीतिज्ञ थे,[३] अम्बाजी इगले की जागीर हस्तगत कर लेने से उनकी आर्थिक स्थिति सम्पन्न होगई थी । ब्रिटिश सरकार ने अपने युद्धकाल मे बहुत सी अनियमित सेनाएँ[४] भरती कर ली थी और युद्ध के समाप्त होते ही उनकी बरखास्तगी कर दी गई परन्तु इन बर्खास्त किये गये सैनिको की जीविका का हल ढूँढा दौलतराव सिंधिया ने । इसका परिणाम वह सघर्ष होता है जो दौलतराव सिंधिया और अग्रेजो के बीच हुआ और जिसकी इति सन् १८०३ की सर्जेअञ्जनगाँव की सन्धि मे हुई । इगलैड की ब्रिटिश सरकार ने वेलेजली की उस महत्वाकाक्षी नीति से तथा उन साजिशो से तग आकर उसे वापिस बुला लिया । ऐसे समय कविवर पद्माकर ने विलायती अग्रेजो के विरुद्ध भडकती हुई दौलतराव सिंधिया की क्रोधाग्नि को मानो आहुति देते हुए कहा –

---

१ डॉ जानकीनाथ सिह 'मनोज' शब्दरसायन वाड्मुख पृ १३, १४.

२ मिश्रबन्धु विनोद नाम (१०७०/२) दौलतरावसिंधिया पृ ८३०, ९०४

३ श्रृगाररसाचार्य पद्माकर जी की नानावर्णालकृत मनोहर 'कविताएं'– जिन्हें सुनकर महाराजा दौलतराव जी जैसे साहित्यप्रेमी इतने मुग्ध होगए कि उन्होंने एक लाख रुपया व एक हाथी कविवर जी को प्रदान कर दिया– रावसाहब लक्ष्मण भास्कर मुळे, २२ वॉ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ग्वालियर

४ ग्राट डफ मराठों का इतिहास पृ ८०७, ८१०

छीन गढ़* बम्बई सुमंद करि मदराज$
बंदर को बंद करि बंदर बसावैगो ।
कहै 'पद्माकर' कटा के¶ कासमीर हू को
पिंजर सो घेरिकै कलिंजर छुड़ावैगो ॥
बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौं
साजि दल दपटि फिरंगिन दबावैगो ।
दिल्ली दहपट्टि पटना हू को झपट्टि करि
कबहुँक लत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो ॥

अंग्रेजो ने अपनी व्यापार नीति से भारत के बंदर स्थानो को अपने अधीन कर लिया था । बम्बई का प्रशासन पहली नवम्बर सन् १८१९ को माउंट स्टुअर्ट एलफिंस्टन के सुपुर्द कर दिया गया और ऐसेही अँगरेज मद्रास, कलकत्ते मे रख दिये गये । भरत जू के बाद कलिंजर दुर्ग भी अँगरेजो के हाथो घेर लिया गया । पटना भी ब्रिटिश सरकार का केन्द्र बन गया था । वजीरुद्दौला फोर्ट विलियम कलकत्ते मे ही बन्दी था । अब इन युद्धो मे भी अवध से घुड़सवार आते थे, बंगाल से सामान, रसद और पशु आते थे, और मद्रास से सेनाएँ, इस तरह फिरंगी भारत के चौकोर छा गये थे । कविवर पद्माकर ने इन्ही बंदरगाहो मे रखे गये बंदर के समान फिरंगियो को दबाने की बात कही है । रणनीति मे भौसले अपने गनीमीकावा से लडना पसद करते थे और सिंधिया को अंग्रेजी कवायद सीखी हुई सेना से लडना पसद था । यह सेना 'कपू'[१] मे ट्रेण्ड होती थी । 'कपू' मे खडे हुए अंग्रेजी सेना के कप्तान, मेजर, सूबेदार को अपनी फिरंगी रंगीन ड्रेस में, यहाँ की देशी सेना को, जिसमे तिलंगो के काले आदमी भी शामिल थे, देखा । वे इधर, उधर, चारो तरफ से अंग्रेजी शब्द Halt की जगह 'हट' 'हट' आवाज से हुकुम दिया करते थे । कविवर पद्माकर ने इस फिरंगी फौज को वर्षा का रूपक प्रदान कर यह छंद कहा है –

कपू बन बाग के कदंब कपतान खडे
सूबेदार साहब समीर सरसायो है ।

पाठान्तर – *'मीनागढ, मीनगढ' $'सुमद मदराज बंग' ¶ कसकि
– मिश्रबन्धुविनोद द्वितीय भाग पृ ९०४

दखिए प नकछेदी तिवारी पद्माकर कवि देवनागर वत्सर. १, अंक १,

१. यह कंपूकोठी' ग्वालियर में आज भी देखने योग्य है –
– Gwalior Today P 168

कहै 'पद्माकर' तिलंगी भीर भूगन को
मेजर तम्बूरची मयूर गुन गायो है ।।
का 'हट' करै को घरराहट घटान को सु
यो ही अरराहट अरावन को छायो है ।
मान-मद-भंगी सफजंगी सैन संगी लिये
रंगी रितु पावस फिरंगी स्वाग लायो है ।।

शिवकवि ने वहा 'दौलतबाग विलास' नामक छोटीसी रचना भी की है। कहा जाता है कि सागरवाले रघुनाथराव के यहाँ जो कुछ पद्माकर ने पाया था उससे दसगुना सिंधिया ने केवल पहली भेट मे दिया। सिंधिया महाराज के यहाँ भी पद्माकर का अच्छा मान हुआ। इनके कथन पर ही पद्माकरजी ने 'आलीजाप्रकाश' नामक ग्रन्थ बनाया।

दौलत आलीजाह नृप हुकुम कियो निधि नेहु।
आलीजाह प्रकास यह सरस ग्रन्थ करि देहु ।।
दौलत आलीजाह को हुकुम पाय सविलास।
कवि पद्माकर करत हैं आलीजाह प्रकास ।।

श्रावण शुक्ल ८, सवत् १८७८ के दिन यह ग्रन्थ समाप्त किया गया था, जिस के प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित सोरठा उद्धृत किया जाता है –

"सिद्धिदुगुन करि जान, उन पर अठहत्तर अधिक।
विक्रम सो पहिचान, सावन सुदि इँदु अष्टमी।"

'सभा' के आर्यभाषा पुस्तकालय मे इसकी प्रति थी, वह सपादन के हेतु किन्ही विद्वान् के पास बाहर गई थी और वह अब तक वहाँ वापिस नही की गई। कवि ने ग्रन्थ के अंत मे लिखा है –

'दौलत नृप के हुकुम ते, आली अतिहि हुलास।
कवि 'पद्माकर' ही कियो, आलीजाह प्रकास ।।

, इति सिद्धि श्री मथुरास्थमोहनलालभट्टात्मजक पद्माकरविरचित आलीजाहप्रकाशकाव्य सम्पूर्णम्।[1]

---

१. 'सुप्रसिद्ध पद्माकरकविस्तयत भाषया सितारा (महाराष्ट्रप्रान्तीय) धिपति रघुनाथ-रावम्, बादाप्रान्तीय हिम्मतबहादुरम्, राजपुत्रप्रान्तीय जगतसिह (जयपुराधीश्वरम्) उदयपुराधीश्वर भीमसिह, ग्वालियराधिपति दौलतरावसेंधियामहोदय चापि परितोषयामास। – भट्ट श्री मथुरानाथशास्त्री 'मञ्जुनाथ' जयपुरवैभवम, पृ ६७.

श्रीयुत दौलतराव सिंधिया के राजदरबार मे एक विद्वान पारिषद् ऊदाजी[1] थे, जिनका परिचय कवि पद्माकर ने राजनीतिवचनिका मे इस प्रकार दिया है –

– दोहा –

गनपति गुरु गोविंद के चरनन को सिरनाइ ।
राजनीति की वचनिका, भाषा कहत बनाइ ।।

श्री खडोजीराव को सुत रानोजी राव ।
ता सुत ऊदाजी उदित, जाको परम प्रभाव ।।

ऊदाजी ताँत्या प्रबल शुभ मतिगुण गभीर ।
नृपमनि दौलतराव को मुख्य मुसाहेब वीर ।।

ऊदाजी के नेह सो पद्माकर सुख पाय ।
राजनीति की वचनिका यो भाषत चित लाय ।।

राजनीति वचनिका के कतिपय दोहे निम्नलिखित है –

किहि देखो परलोक यह, कहब बोलिबो झूठ ।
कारण बिन ही क्रोध कर, वृथहि बैठबो रूठ ।। ३७ ।।

सावधान व्है रहब नहि, मिलब न ज्ञानी पाय ।
इक कारज ही मे रहब, दीरघ काल गमाय ।। ३ ।।

इन्द्रिन के बस व्है रहब, इकले करब विचार ।
अति आलस को ठानिबो, मूरख सो व्यवहार ।। ३९ ।।

कृत निश्चय जो काज कछु, तासु करब न सुहात ।
गुपत न राखब मत्र को लखब न गो द्विज प्रात ।। ४० ।।

सर्ब विरोधी व्है लखब, बड रिपु सो रन-राह ।
राजनीति ये चतुर्दश, है समुझत नर-नाह ।। ४१ ।।

---

१. लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुरविरुदावली पृ ५ और ६
डॉ. व्रजनारायणसिंह कविवर पद्माकर और उनका युग पृ १२४-१२५
The founder of this family Ranoji Khatke served Mahadji Scindhia. His son Udaji was granted a jagir by Maharaja Daulat Rao for distinguished services. The present holder is Sardar Malharrao Khatke.
– Gwalior Today P 211

नाहक वचन उचारिबो, खेलब जुआ शिकार ।
नृत्य गीत बाजान में, जो आसक्ति अपार ॥ ४२ ॥

नारि बिबस रहिबो वृथा, करिबो पुनि मद पान ।
दिवा शयन दश दोष ये, तजे रहत मतिमान ॥ ४३ ॥

जल में गिरि में विपिन में ऊसर कछु जल माँह ।
पांच किला ये समुझ के वन बावन नरनाह ॥ ४४ ॥

स्वामी सचिव सुमित्र बल, कोष किला निज वेश ।
सात अंग ये राज के, समुझत सदा नरेश ॥ ५० ॥

साम, दाम पुनि भेद हू, चौथे दंड गनाय ।
नित नीके समुझत नृपति, ये चारहु सु उपाय ॥ ५१ ॥

साहस दूषण अरथ को, गारि काढिबो कोह ।
दंड लेत अपराध बिन, करत ईर्ष्या द्रोह ॥ ५२ ॥

चुगली सुन इकबारसी, कहत करब अन्याय ।
आठ दोष ये समुझ के, दूर करत हैं राय ॥ ५३ ॥

सुभगशक्ति उत्साह की, मन्त्रशक्ति, प्रभुशक्ति ।
समुझ तीन हू शक्ति में, राखत नृप अनुरक्ति ॥ ५४ ॥

वेद, शास्त्र, विद्या, विपुल, पुनि विद्या कृष्यादि ।
राजनीति विद्या तिहू, विद्यन की है यादि ॥ ५५ ॥

जुद्ध करब कर कूच पुनि, चलब करब सल्लाह ।
करिबो थिति पुनि दोय सो मिल रहिबो स उछाह ॥ ५६ ॥

अतिबल को ले आसरो, रहब छगुन ये जान ।
करत प्रजा पालन नृपति, मन्त्रिन को मत मान ॥ ५७ ॥

दीरघ रोगी शिशु विरध, ज्ञात बाहिरो जोय ।
कातर भयद जु लोभ हीं, उपजावत नित सोय ॥ ५८ ॥

लोभी, कामी, कवष ते चपल चित्त भय पाय ।
दैव करब सो होयगो, यह कह तजत उपाय ॥ ५९ ॥

दुर्भिक्षादिक को भय सदा, कहत रहैं अकुलाय ।
फौज नही करिये कहा, कहत जु तजि व्यवसाय ॥ ६० ॥

तजि सुदेश रिपु देश को रहनवार जो कोय ।
ले अनेक निज शत्रुगन, देशहि रहत जु होय ॥ ६१ ॥

हठवादी, निंदक, निगम, जिहि न समय को ज्ञान ।
ए तिनसो तो मिलत नहि, कबहूँ नपति सुजान ।। ६२ ।।

देश खजानो दुर्ग पुनि, अधिकारी अरु दड ।
पाँच प्रकृति मडल नृपति, समुझत सुनत अखड ।। ६३ ।।

निज चहुँ दिशि रिपु मित्र पुनि, उदासीन चित ल्याय ।
बारह मडल की खबर, राखत हैं नृप राय ।। ६४ ।।

बहुविध कूच मुकाम पुनि, रण करिबे की रीति ।
सो नृप नित समुझत रहत, चाहत अपनी जीति ।। ६५ ।।

व्यूह विरचिबो सेन को, राजन के गुन दोष ।
ये नृप ठानत समुझ के, × × × × रोष ।। ६६ ।।

जूझत जु दैवी काज कछु, ताते पावत सिद्धि ।
दान भोग करि राज में, राखत सफल समृद्धि ।। ६७ ।।

या विधि पाल प्रजानि को पाय सुजस परगास ।
अतकाल ने नृप लहैं, अटल स्वर्ग महँ वास ।। ६८ ।।

× × × × ×

'पद्माकर किन सिह को कियो राज्य अभिषेक ।
अपने बल मृगराज भो हनि गजराज अनेक ।। '

× × × × ×

'ऊदाजी षटकर्म जु करि पद्माकर सो नहु ।
कह्यहु नीति की वचनिका भाषा करि रचि देहु ।। '

दोहे मे कवि का नाम सकेत है, अत निश्चित रूप से यह कवि पद्माकर की रचना है । लाला भगवानदीन ने लिखा है कि 'और, उसी दरबार के मुख्य मुसाहेब 'ऊदाजी' की आज्ञानुसार सस्कृत हितोपदेश का गद्यपद्यमय भाषानुवाद[1] किया । हितोपदेश का भाषानुवाद हमने देखा है, लालाजी ने यह बात कही है, किन्तु उद्धृत अश की अन्तिम पक्ति मे 'राजनीति की वचनिका' नाम दिया गया है । आचार्य प विश्वनाथप्रसादमिश्र ने 'राजनीति की वचनिका' के आरभ और अत का प्रकरण उद्धृत किया है । जहाँ 'अथ राजनीति लिख्यते' कहा गया है और पाच पद्य के बाद 'अथ

वचनिका ' शब्द मिलता है । यहाँ यह स्पष्टतया कहा गया है कि ' **हितोपदेश अरु पंचोपाख्यान और हू जे राजनीति के ग्रन्थ हैं तिनही के अनुसार सौ राजनीति कौ कहत हौं–'** इससे पता चलता है कि यह मात्र हितोपदेश का अनुवाद नही है[1] प्रत्युत यह हितोपदेश, पचतन्त्र के उपाख्यान तथा अन्य राजनीति के ग्रन्थो का आधार लेकर राजनीति के दोहो का सकलन, है जिसमे कही कही आवश्यकतानुसार गद्य का प्रयोग किया गया है । हमने ऊपर कुछ मध्य के दोहे उद्धृत किये है । अत यह सवत् गल्त है कि In 1803 Maharaja Jagat Singh died, and Padmakar came to the court of Daulat Rao Scindia of Gwalior Here he translated the sanskrit work-Hitopdesh Hitopdesh is like Aesop's Fables and has since been translated in many other languages of of the world[2] यह भी कहा जाता है कि उक्त सरदार ऊदाजी ने उन्हे प्रचुर पुरस्कार दिया[3] । डॉ व्रजनारायणसिह के अनुसार इस ग्रन्थ का निर्माण स. १८७९–८० के बीच होगया होगा । कवि पद्माकर ग्वालियर से चरखारी होते हुए बाँदा लौटे ।

कवि पद्माकर चरखारी नरेश के दरबार मे –

चरखारी का राज्य अब छत्रसालवशज अजयगढनरेश गुमानसिह के भाई खुमानसिह को दिया गया था । राजा खुमानसिह की मृत्यु (सवत् १८३९) के बाद राजा विक्रमाजीत (विजयबहादुर) चरखारी–नरेश हुए । उस समय राज्य की व्यवस्था खराब होगई थी । हिम्मतबहादुर के बुन्देलखड–आक्रमण के समय महाराज विक्रमाजीत ने अर्जुनसिह पँवार के भय से उनसे सधि करली थी । प्रमाण[4] के लिये देखिए –

> **' महाराज विक्रमजीत कौ पाती लिखाइ पढाइय ।**
> **उत राज बिगरो सिरस्था आप अब इत आइय ।। ४५० ।।**
>
> **लै नई भुम्मि पमार ने वह सत्रु मारौ जाइगौ ।**
> **लिखि है जिमी सुनि भूप विक्रम मनस मगल छाइगौ ।।**

---

१ मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग पृ. ९०४

२ K B Jindal A History of Hindi Literature P. 12.

३ प लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी पद्माकर भट्ट तैलंग पृ २१

४ **अनूप प्रकाश** अष्टम प्रकाश ४५०–४५३

कुइ तरचौ चाहत सिंधुराज जिहाज जनु जिम पाइगौ।
हर्षन प्रहर्षन मानि पत्री लिखी लै चर आइगौ ॥ ४५१ ॥
महराज को अरु आपकौ हद लौ सुवगन दलौ रहैं।
अब हुकुम हमरैं आपकौ सब भात व्है सिरमौर है ॥ ४५२ ॥
हम आपके हुकुमी तनै हर भात हुकुम बजाइ हैं।
लिषी नृपति विक्रम भए सामिल मिले नृप सुख पाइ हैं ॥ ४५३ ।

और इसी आक्रमण का परिणाम वह नवगाव – युद्ध होता है, जिसका वर्णन हिम्मतबहादुरविरुदावली मे किया गया है। 'चरखारी का राजा विक्रमाजीत तो हिम्मतवहादुर का सहायक था, परतु विजावर, चरखारी और पन्ना के राजवर्गो से अनवन होगई, और हिम्मतवहादुर ने शीघ्र चरखारी पर भी चढाई की। इसी युद्ध के अन्त मे विजावर के राजा, अलीवहादुर के अधीन होगए और विक्रम स १८६० मे राजा विक्रमाजीत विजयवहादुर ने कपनी की सरकार से सधि करली।[1] राजा विक्रमाजीत विजयबहादुर के आठ पुत्रो मे रनजीतसिह था, जिसका लडका रतनसिह सन् १८२२ मे राजगद्दी पर वैठा, पर राज्यारोहण के समय से कई झगडे खडे हुए।[2] ग्वालियर से बादा आते आते कविवर पद्माकरजी चरखारी आये परन्तु चरखारी–नरेश ने अपने दरवार में उन्हे आने की अनुमति नही दी, इसका कारण श्री अखौरी गगा-प्रसादसिंह[3] की दृष्टि मे उनके जयपुर अथवा सेधिया राज्य के निवासकाल मे किसी सुनारिन से अनुचित प्रेम है, कदाचित् उनका यह कथन मिश्रबन्धुद्वारा[4] दिये गये बाँदा के लोगो से सुनी हुई बात पर था कि इन्होने किसी सुनारिन को घर बिठला लिया था परन्तु मिश्रवन्धुने गगालहरी के 'एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि' के अर्थ को समझाते हुए कहा है, और आगे चलकर लिखा है 'इस एक पातक को कोई अपार नही कह सकता। जान पडता है कि रोगी होजाने के कारण पद्माकरजी अपने को उस जन्म का पापी समझते थे, इसी कारण उन्होने ऐसे दीन वाक्य कहे है। मिश्रवन्धु ने डुमराँव निवासी पडित नकछेदी तिवारी के देवनागर में प्रकाशित 'पद्माकर कवि' लेख को उनके ऐतिहासिक भाग का आधार वतलाया है, पर उस लेख में ऐसा कोई सकेत ही नही है। मिश्रबन्धु ने यह भी कह डाला है कि वादा मे बहुत लोग

---

१. बुदेलखड का सक्षिप्त इतिहास पृ २७५, २९४
२ बुदेलखड का सक्षिप्त इतिहास चरखारी पृ २९४
३. पद्माकर की काव्यसाधना पृ ३९
४ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय भाग) पृ ९०६ तथा ९०१

कहते है कि यह ग्रन्थ (रामरसायन) पद्माकर कृत नही है, वरन् उनके सोनारिन से उत्पन्न हुए पुत्र मनीराम का बनाया हुआ है। पद्माकर कवि की अवस्था इन दिनो ६६ वर्ष की होगई थी और वे कुष्टरोगी थे ऐसे समय उनका अनुचित प्रेम हो जाना, फिर उसे घर बिठला लेना फिर मनीराम नाम के पुत्र द्वारा सात काड का 'रामरसायन' ग्रन्थ बना लेना, अनहोनी, असभव तथा अशुद्ध कल्पना है। 'सुवर्ण' बरसाने वाले कवि पद्माकर के प्रति यह कही सुनी बात नितान्त निर्मूल, असत्य, झूँठी और कलंकपूर्ण है। उन दिनो यदि ऐसा हुआ होता तो वे राजा महाराजाओ के उस अतिशय आदर तथा सन्मान के पात्र न बने रहते। मिश्रबन्धु ने 'मनीराम'[१] का भी परिचय सख्या (१२०४) पृ ८८९ पर दिया है, उनका कविताकाल १८७० और विवरण मे उन्हे चन्द्रशेखर कवि का पिता कहा है। चन्द्रशेखर वाजपेयी (सवत् १८५८–१९३२)[२] दरभगा, जोधपुर, पटियाला के राजदरबार मे रहे और ९ ग्रन्थो के रचयिता माने जाते है। सर्व विदित है कि 'रामरसायन' के प्रत्येक काड के अन्त मे लिखी यह पुष्पिका 'सिद्ध श्री मथुरास्थ मोहनलाल भट्टात्मज कवि पद्माकर विरचिते रामरसायने बालकाड समाप्त' बहुत ही स्पष्ट प्रमाण है। आचार्य विश्वनाथप्रसादमिश्र तथा डॉ ब्रजनारायणसिह जैसे विद्वानो ने, जिन्होने उक्त 'रामरसायन' ग्रन्थ को पढा है, उसे पद्माकर कृत ही माना है। मै इस सबध मे पहले ही पृष्ठ ८० पर लिख चुका हूँ। 'रामरसायन' को प्रायश्चित-ग्रन्थ मानना दुष्ट और भ्रष्ट है, वह तो सत्यत राम को रिझाने का, सिद्धि ,प्राप्त करने का तथा भूपमनि राजा परीछित को सपरिवार कथा-श्रवण के आनन्द देने का रामरसायन है। चरखारी नरेश रतनसिह के दरबार मे प्रवेश न मिलने के कई कारण है, यथा – एक, राज्यारोहण के समय के कौटुम्बिक झगडे, अग्रेज कम्पनी की सरकार से प्राप्त चंद-रोजा सनदे, अजयगढ, छतरपुर तथा चरखारी राज्य के बीच सरहदी झगडे आदि। दूसरे, बिहारी (भोज) घनश्यामदास, रावराजा बदीजन, सेवक, अवधेस,[१] आदि दरबारी कवियो की ईर्ष्या भी वहा जागृत थी। अत स्वाभिमानी कविराज पद्माकर ने अपनी हम-तुम शैली[२] मे यह निम्नलिखित छद लिखकर भेज दिया –

> **तुम गढ़ किल्ला सदा जोर कर जीतत हौ।**
> **पिंगल अमरकोष हम जीतत जहाज है।**

---

१ मिश्रबन्धुविनोद तृतीय भाग, कवि सख्या (१८९८), (१८४०), (१९०२), (१९०६) आदि पृ १०७३, १०७०, १०७४, १०८९

२ पद्माकर ग्रंथावली प्रकीर्णक छद (२), तथा अत्रैव पृ ८०,८१

तुम सदा साम, दाम, दड, भेद न्याव करो
चारो वेद हमहूँ सुनावत समाज हैं ॥
हाथी, घोडे, रथ, ऊट, पैदल तुम्हारे साथ
राखत सदा ही हम छप्पय छद साज हैं ।
तुम सौं और हम सौं बराबरि को दावा गिनौ
तुम महाराज हौ तौ हम कविराज हैं ॥

'आवलीयस्' का आधार लेकर कवि पद्माकर, चरखारी नरेश रतनसिंह को महाराज और अपने आपको कविराज कहकर बराबरी का दावा सिद्ध करते हैं। महाराज और कविराज दोनो ही तो अपने यश, कीर्त्ति और वैभव से राजा हैं। भूपति होने से तुम मे भूमि के 'गढो' और 'किलो' को अपने जोर पर जीतने की शक्ति है तथा तुम क्षत्रिय-व्यापार-कुशल हो तो हमारे पास पिंगल (निधि विशेष) और अमरकोष (इन्द्र के कोष) है, जिससे हम भी आसमुद्र क्षितीश है और छन्दश्शास्त्र और अभिधानकोप (आचार्य पिंगल और अमरसिंह कृत अमरकोष) के अध्ययन से अर्थात काव्यभाषा प्राकृत और सस्कृत के विद्वान् होने से हम भी कवि- व्यापार- कुशल हैं। यश के जहाज तथा समर्थ राजाओ को हम भी अपनी कविता के बल पर जीत लेते हैं। तुम्हारे पास राजनीति का साधन है तो हमारे पास काव्य-रीति का वोहिथ है। इस भवसागर को पार करने के लिए हम दोनो ही प्रतियोगिता के कायल है। सामाजिक दृष्टि से महाराज यदि न्याय-व्यवस्था को सँभालते है तो कविराज शिक्षानीति को। तुम्हारे पास सन्धिविग्रह के लिए राजनीति के साम, दाम, दड, भेद आदि उपाय है तो हमारे पास भी वेदवेदाग की विद्या का साधन है, हम भी ऋक्. साम यजुर् और अथर्ववेद विहित विद्या का जनता में प्रचार व प्रसार करते है और उन्हे समाज के प्रति जागरूक रखते है। महाराज! तुम्हारे पास यदि राजशक्ति है, यानादि है तो कविराज होने के नाते हमारे पास भी छप्पय जैसे षट्पदीय छन्दो की सहज शक्ति, और सज्जा है जो काव्य-साधना की सिद्धि है। इन कारणो से तुम महाराज और हम कविराज दोनो अपनी अपनी शक्ति के बल पर बराबर हैं और बराबरी का दावा रखनेवाले समाज की प्रभुता के अग है।

चरखारी मे कवि पद्माकर 'बाँदा' आगये और बाँदा में ही उन्होने 'प्रबोध-पचासा' लिखा, जैसाकि इस अन्तिम पुष्पिका से पता चलता है 'इति श्री बाँदावासी मोहनभट्टात्मज कविपद्माकरविरचित प्रबोध-पचासा समाप्त। इस समय वे वृद्ध थे, रोगी थे, अब बाँध बावने में वे सर्वथा शिथिल और श्री-सम्पत्ति का भार ढोने मे सदा के लिए असमर्थ थे।

'माया चलाय कहाँ क्यों चले चलै आपने संग न आपनी काया'। वैराग्य जाग उठा, अब, 'रैनदिन आठों याम रामराम रामराम, सीताराम सीताराम सीताराम कहिये' की आवाज लग रही थी। उनके महाराज अब प्रभु राम थे 'राम ही राम रसायन बानी' उनकी वाणी थे। 'कलिपच्चीसी' या 'ईश्वर-पचीसी' के २६ छंद भी इसी समय लिखे गये हैं –

'तज बकवाद तीरथन भटको करि पवित्र निज काया है।
अब वचन विचार कहैं पद्माकर यह ईश्वर की माया है।'

कवि पद्माकर के प्रबोध ने अन्त मे यही कहा –

'मानुष को तन पाइ अन्हाइ अघाइ पियौ किन गग को पानी ?'

यही कहते हुए वे पैदल गगा की ओर चल पडे, मार्ग मे उन्हे यमुना नदी मिली कवि पद्माकर ने इसी समय यह छद कहा –

'धारा-रूप धाराधर धावत धरा में किधौं
किधौं भौंर भीरैं भली चली एकै सग है।
'पद्माकर' कहै कैधौं सोभित सहार सुभ
आनंद अगार कै सिगार रस रंग है ॥
कैधौं कुहू रैन रही रसिहै महीतल में
कैधौं जडे नीलमनि गन के उमंग है।
कैधौं तमतोम छटा छाजती छबीली किधौं
इदीवर सुन्दर कलिंदी के तरग है ॥'

'कहै 'पद्माकर' न ऐहै काम सरस्वती साँच हू कलिंदी काम करन न पावैगी' कहते कहते अब त्रिवेणी की ओर न जाकर कवि पद्माकर कानपुर की गगा की ओर चल पडे, बढ ही रहे थे कि उनका कुष्ट रोग अच्छा होने लगा। अपने पातक-स्वरूप कुष्ट रोग से वे कहने लगे –

'जैसे तैं न मोको कहूँ नेक हू डरात हुतो
ऐसै अब तोसों हौंहू नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पद्माकर' प्रचंड जो परैगो तो
उमडि कर तोसो भुजदड ठोंकि लरिहौं।
चलो चलु, चलो चलु, विचलु न बीच ही ते
कीच बीच नीच तो कुटुब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि
गंगाकी कछार में पछार छार करिहौं ॥

गगा की कछार से वढते वढते वे पतितपावनी गगा के रेणुतट पर आगये और उन्हे ऐसा लगा —

'रेनुका की रासन में कीच कुस कासन में
निकट निवासन में आसन लदाऊ के ।
कहै 'पदमाकर' तहाँई मजु मूरन मे
धौरी धौरी धूरन में पूर में प्रभाऊ के ॥
वारन में पारन में देखहु दरारन में
नाचति है मुकुति अधीन सव काऊ के ।
कूल औ कछारन में गगाजलधारन में
मझरा मझारन में झारन मे झाऊ के ॥

पाप–पुज कुष्ट रोग दूर होने लगा तो कवि पद्माकर ने कवित्त कहा —

'आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे में
गाठ हू के खास दुख दूरि वुटि वुटिगे ।
कहै 'पद्माकर' कुरोग में सँघाती तेऊ
गैल में चलत घूमि घूमि घुटि घुटिगे ॥
दगादार दोष दीह दारिद विलाइ गये
फिकिर के फद विन छोरे छुटि छुटिगे ।
जौलौ आऊँ आऊँ तेरे तीर पर गगे तौलौ
वीच हा में मेरे पापपुज लुटि लुटिगे ॥

शरणागतवत्सला गगा के तीर पर उन्होने देखा —

'परो एक पतित पराउ तीर गगाजू के
कुटिल कृतघ्नी कोढी कुठित कुढगी अघ ।
कहै 'पद्माकर' कहौं मै कौन वाकी दसा
कीट परि गए तन आवै महा दुरगंध ॥
पाप हाल छूटिगे सु लूटिगे विपत्ति जाल
टूटिगे तडाक दै सुनाम लेत भवबध ।
'गं' कहै गनेस वेस दौरि गही वाँह अरु
'गा' के कहै गरुड चढाई लीन्हो निज कध ॥'

सुरसरि मैया के सरसैया घाट पर कवि पद्माकर ने पातकी की पुकार सुनी और तत्क्षण उसके मोक्ष का इतिवृत्त देखा —

'सुरसरि मैया एक पातकी पुकार्‍यो तोहि
ऐसो दिव्य दीन्हो तप तेज वाहि तैने है ।

कहै 'पद्माकर' स्वलोक तिहि आगे रखि
करत प्रनाम सुरवृंद सब नै नै हैं ।।
व्याकुल विलोकि वह बोल्यौ देवि देवन सो
कोऊ ना डराहु तुम्हें और कछु दैनै हैं ।
इन्द्र यौं कहत मोहि लैनैहै न इन्द्रलोक
संभुलोक लैनै कै गुविंदलोक लैनै है ।।'

'गगा' और 'गगालहरी'ने कवि पद्माकर को पातकी कुष्ट रोग से उन्मुक्त कर दिया था, जैसा कि निम्नलिखित छद से स्पष्ट है –

'कीजत फिराद सुन लीजियें हमारी गगा
साखन के साथी दुख दिग्गज डिगाए तू ।
कहै 'पद्माकर' जू जानत न कोऊ हुतो
तीन जस जगा जगा जग उमगाए तू ।।
छोड़ि छोडि मन तन सोए ते गरीब जेते
तेते पूरे पूरे पुन्यपटल जगाए तू ।
आयो हुतो हौ तो कछु लीबे को तिहारे पास
जनम के जोरे मेरे पातक भगाए तू ।।'

कानपुर के गगातटवर्त्ती सरसैया-घाट पर वे कुछ दिन रहे । वह स्थान **पद्माकर की कोठी**[१] के नाम से अबतक विद्यमान है ।

कवि पद्माकर के निधन के समय के विषय मे अबतक प्राप्त हुए इतने सन् सवत् है –

१. सन् १८०३ – रा ब डॉ. हीरालालने पद्माकर का निधन सन् १८०३ मे रघुनाथराव की आपासाहब की मृत्यु के १ वर्ष बाद मानी है ।[२]

२ सन् १८२० – काशीनागरी प्रचारिणी सभा की ११ वी खोज रिपोर्ट (प्रकाशित १९२९)मे इसे सन् १८२० ई लिखा है ।[३]

३. सन् १८३३ – श्रीयुत एफ ई के महोदय ने इसे सन् १८३३ माना है ।[४]

---

१. प. नकछेदी तिवारी पद्माकर देवनागर वत्सर १, अक १

२ माधुरी (सवत् १९८६) सम्पादकीय नोट पद्माकर शतवर्षी

३ माधुरी (फाल्गुन ३०८ तु स.) वर्ष १०, २, २ पृ १९४ सशोधन सख्या ५

४. A history of Hindi Literature, page 96

४ सन् १८३८ – मिश्रबन्धुविनोद, प्रथमभाग (पृ १३०) मे लेखक ने कवि पद्माकर की अँगरेजी भाषा के कवि वाल्टर स्कॉट से समानता करते हुए लिखा है कि सयोगवश दोनो की मौत भी एक ही सवत् मे हुई (अर्थात् सन् १८३८)।

परन्तु मेरी दिवगत माता से पूछने पर पता चला कि कवि पद्माकर के प्रपौत्र प कृष्णकिशोरजी अपने जीवनकाल मे गगादशहरा के दिन अपने प्रपितामह कवि पद्माकर का श्राद्ध और तर्पण करते आये है। दादा की जायदाद के दाखिल खारिज[1] के रजिस्टर से यह ज्ञात होता है कि कवि पद्माकर की मृत्यु सवत् १८८४ तदनुसार सन् १८२७ है। अत कवि पद्माकर की निधन तिथि **गगा दशहरा ज्येष्ठ शुक्ल दशमी सवत्** १८८४ मानना चाहिए।

कवि पद्माकर के वशज

कवि पद्माकर की मृत्यु के बाद ही उनके भाई कमलाकर भट्ट[2] की मृत्यु होगई थी पर उनके भाई प्यारेलाल की मृत्यु उनसे पहिले होगई थी, अत अब दादा की दुरई माफी पर इन तीनो भाइयो के जिन पुत्रो के नाम चढाये गये वे कवि पद्माकर के पुत्र मिहीलाल व अम्बाप्रसाद (अम्बुज), कवि कमलाकर भट्ट[2] के पुत्र छोटेलाल व रामकृष्ण तथा स्व प्यारेलाल के पुत्र दिनकर थे। सुकवि मिहीलाल का परिचय उनके पुत्र गदाधर भट्टने इन शब्दो मे दिया है –

'मिहीलाल कवि जयनगर, रावल सभा सिताब।
पूरि समस्या ग्रामधन पायहु सुकवि खिताब॥'

सुकवि मिहीलाल का जन्म सवत् १८३३ मे हुआ और उनकी मृत्यु सवत् १८९६ मे हुई। उनका निवासस्थान जयपुर था।

उनकी कविता का नमूना नीचे दिया जाता है –

आयो द्वारपाल नोतो ले हमारे हाल
तासो मैं कहीती बात जानी पर उर की।

---

१ असल दाखिलखारिज हुकुम इन्दराज नाम मिहीलाल व अम्बाप्रसाद पिसरान पद्माकर भट्ट मुतवफी व छोटेलाल व रामकृष्ण पिसरान कमलाकर भट्ट मुतवफी व दिनकर बरादर
(१) दाखिलखारिज मौजा दुरई माफी अल मरकूम १९ जनवरी सन् १८२७ तथा देखिये.–
(२) कानून दोहम सरकार मुद्दई बनाम अम्बाप्रसाद मिहीलाल दिनकर वगैरह

२ डॉ ग्रियर्सन का प्रथम हिन्दीसाहित्य का इतिहास पृ २७३. कृष्णानन्द व्यासदेव संख्या (६३८) रागसागरोद्भव, रागकल्पद्रुम।

'मिहीलाल' छोड़ि ब्रजवालन को बैर
ठानत है कन्या एक कारे वनचुर की ।।
पहिले करीती क्रूर कूबरी त्रिभंगी
भयो रंग मे मिलैगो रंग छोड़ लाज पुर की ।
ए हो ब्रजराज ब्याह विविध भले ही करो
लिखतौ पठैहौ नेक सूरत ससुर को ।।

कवि पद्माकर के दूसरे पुत्र का नाम अम्बुज था । इनका जन्म सवत् १८३७ कहा जाता हैं । सवत् १८७५ तदनुसार सन् १८१८ उनका रचनाकाल है ।

अबा अम्बुजरूपमय पाय राज सनमान ।
जयपुर, दतिया नगर पुनि बांदावास निवास ।।

मिश्रबन्धुने कवि सख्या (१९५३) पर अम्बुज कवि का नाम लिखा है तथा उनके ग्रन्थ का नाम 'नायिकाभेद' तथा नखशिख'[1] लिखा है, विवरण में उनके नीति के दोहो का भी सकेत किया है । और कविताकाल १९०० लिखा है, जो सही है । उनकी मृत्यु भी इसी सवत् मे हुई थी । कविता का नमूना नीचे दिया जाता है –

– अथ हाँसी वा मुसक्यान वर्णन –

क्षीरधि की छीर कैधौ नीर सर आपको है
कैधौ हीरहारन की हाट ही सम्हारी है ।
हँसन की पांति कैधौं गुन को है भाँति भली
कीरति की सालि कैधौ शारद की सारी है ।।
'अम्बुज' कहत वसुधा मे कै सुधा की धार
कैधौ हास रस की हरौल भीर भारी है ।
चंद उजियारी कि विहारी की वसीकरन
सीकरन वारौं कैधौ हँसनि तिहारी है ।[2]

दूसरा पद्य है – – पद्य ८.

१ मिश्रबन्धुविनोद. तृतीय भाग कविसख्या (१९५३) पृ १०८२,
ग्रियर्सन कविसंख्या (६५५) तथा सर्वेक्षण १२ पृ २७९. सरोजसर्वेक्षण पृ १३४.
साहित्य का इतिहासदर्शन (प्रथम सस्करण), १२, पृ १६२
राजस्थान का पिंगल साहित्य सख्या (२१०) पृ १७७

२. परमानन्द सुहामे 'नखशिख हजारा' प अम्बुज कवि. पृ,१२२.

फूलन के फरस फबे हैं कुज कुजन म
फैल फैल फैले हैं फुहारन को नीर है ।
चन्दन की चहल चहूँघा त्यों मची है वेस
छिरके हैं गुलाबजल टाटिन उसीर है ।।
'अम्बुज' कहत तित चालो वलि मेरे कहै
कदम अशोक थोक भौरन की भीर है ।
सहित सुगध मद मद वहै झूकन सो
हीतल करनहारी सीतल समीर है । [1]

कवि अम्बुज को भी जयपुर तथा दतियानरेश राजा परीक्षित के यहाँ राज-सन्मान मिला था । तदनन्तर वे बाँदा आगये ।

सुकवि मिहीलाल के चार पुत्र थे जैसा कि निम्नलिखित सोरठा वतलाता है –

– सोरठा –

वसी, गदा, सुचन्द, लक्ष्मी श्रीधर तार जग ।
महीलाल कवि नन्द, जानहु चारु सुचारु चित ।।१६।। [2]

पद्माकरजी के वशवृक्ष से इन चारो के नाम वशीधर, गदाधर, चन्द्रधर और लक्ष्मीधर हैं । वशीधरभट्ट जी अच्छी कविता करते थे । इनका ग्रन्थ 'घोटक शतक' कहा जाता है । नमूना नीचे दिया जाता है –

'सावन सुजन सग झूलन को झूला परै
जालदार जाली विच बूँदन बधाओ रे ।
'वसीधर' भनत विशाल आसपास
तैसी तेज अरुणाई रुचि बेल वगराओ रे ।।
पीरी पचरग चुस्त चुनिकै चतुर चार
चिरनी चरच चख चन्द्रक चढाओ रे ।
ये रे मनमोही मनमोहन के मोहिबे को
चूनरी चटक रँगरेज रग लाओ रे ।।

गदाधर भट्ट – ये महाशय मिहीलाल के पुत्र और प्रसिद्ध कवि पद्माकर के पौत्र थे । इनका जन्म सवत् १८६० मे हुआ । ये दतियानरेश भवानीसिंह के आश्रित कवि रहे ।

१, पद्माकर विशालभारत सावन १९९१ पृ १४
२. गदाधरकृत केसरसभाविनोद कविवशावली वर्णन छद १६

'नृपति भवानीसिंह को गावत सुजस हमेश ।
सुकवि गदाधर बसत तहँ दतिया नगर सुदेश ॥'

× × × ×

'जौं लौं जन्हुकन्यका कलानिधि कलानिकर
जटिल जटानि बीच भाल छवि चन्द पैं ।
'गदाधर' कहै जौलौ अश्विनीकुमार
हनुमान नित गावै राम सुजस अनद पैं ॥
जौलौ अलकेस बेस महिमा सुरेस सुर
सरिता समेत सुर भूतल फनिंद पैं ।
विजै नृप श्री भवानीसिंह भूपमनि
बखत बिलद तौलौ राजौ मसनद पैं ॥

× × × ×

'श्री लोकेन्द्रभवानिसिंहनृपते प्रीतिप्रद सर्वदा
ग्रन्थोऽयं रचितो गदाभ्रकविना व्यालेखियत्पाणिना ।
श्रीमत्केशरसत्सभानृपमनो हर्षाय माघे शुचौ
पचम्यां निधिशक्तिनन्दवसुभ' संख्यावृतेवत्सरे ॥'

× × × ×

'केसरसभाविनोद ग्रन्थ कृतवान् गदाधर सुकवि ।
प्रीत्यै भूयाद्विदुषा नितरा नीतिप्रवीणानाम् ॥'

× × × ×

'दोर्दण्डोद्धतकार्मुकोज्झित शरव्रातैर्हतद्वेषण
स्फूर्जच्चन्द्रकिरीटकीर्त्तिकुमुदो भूदेव देवद्रुम
श्रीमद्वीरभवानिसिंहनृपति प्रोद्यत्प्रतापांशुमान्
श्रीलोकेन्द्रबहादुरो विजयता बुन्देलचूडामणिः ॥'

'सम्वत् १९४० विक्रमी मे कई सकेतपत्र प्रेपित करने के पश्चात् दतिया राजधानी बुन्देलखड से जगत् विख्यात सर्व सद्‌गुणाकर पच श्री पद्माकर जू तैलग वैकुण्ठवासी के पौत्र भट्ट पच श्री गदाधर जू कविवर मेरी राजधानी सुठालिया मे सुशोभित हुए और मुझको (सुठालिया–नरेश महाराजा माधव-सिंह वर्मा को) अपनी कविताशक्ति, वाक्‌पटुता और नम्रता से आश्चर्य मे निमग्न कर दिया । यद्यपि अस्सीवर्ष के वृद्ध थे तथापि काव्य, कोप, अलकार,

१ देखिये सरोज सर्वेक्षण पृ २३३ तथा मिश्रबन्धुविनोद

व्याकरण जिस विषय का प्रश्न कीजिये ऐसी शीघ्रता से उत्तर देते थे कि मानो सरस्वती आपकी जिव्हाग्रवास करती थी'। 'उन्होने मेरे इस वचन को सादर स्वीकार कर यह 'छन्दोमजरी' नामक ग्रन्थ निर्माण किया, इनके वश की कविता की जो ख्याति है, उसका उल्लेख निरर्थक है, क्योंकि पद्माकर जू के कवित्त आसमुद्रात सूर्य्यवत् देदीप्यमान है। कविवर जी कुछ इस एक ही ग्रन्थ के कर्त्ता न थे उन्होने कई बडे बडे ग्रन्थ, जैसे 'कामाधक' सस्कृत-नीति ग्रन्थ का विविध छन्दो मे श्रीमान् महाराजाधिराज सवाई रामसिंह जी जयपुराधीश की आज्ञानुसार छह हजार श्लोक का ग्रन्थ उनके स्वहस्त का लिखा हुआ मेरे पुस्तकालय मे प्रस्तुत है।' छन्दोमजरी उनका अतिम ग्रन्थ है –

"श्री पद्माकर पद्मपद ध्याय सु प्रतिभा हेत।
बरनत छदोमंजरी जो है छद निकेत ॥२८॥
संवत् नभ आश्रम सु निधि चन्द्रमास वैशाख।
प्रगटी छदोमजरी अषती कर अभिलाष ॥२९॥

अत इस रचना का आरभ वैशाख अक्षयतृतीया सवत् १९४१ तथा समाप्ति-तिथि –

'प्रतिपद मेचक भाद्रपद नभश्रुति निधि शशि सार।
सवत् नगर सुठालिया ग्रन्थ लयो अवतार ॥'

भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा सवत् १९४१ है। कवि गदाधरने यह ग्रन्थ समाप्त कर भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी स १९४१ के दिन महाराजा माधवसिंह का जन्मोत्सव भी वही मनाया। रविवार कार्त्तिक सुदी १४, सवत् १९४२ तदनुसार २० नवम्बर १८८५ ई के दिन यह छन्दोमजरी, भारत जीवन प्रेस काशी से मुद्रित हुई। इसके आरभ मे श्री गणेश, शिव के साथ नागराज की स्तुति भी है, यथा –

'फुकरत शेष फनवृद प्रति फबि फुलिग विष झरझरत।
कच्छपन पिट्ठ भूधारतन भूविदार भूधर धरत ॥'

एव नृपति वशावली और आशीर्वचन के वाद ग्रन्थ शुरू होता है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग है। गण, देवता, शुभाशुभ, मित्र दास, उदासीन, शत्रु भाव, दग्धाक्षर, गुरु लघु विचार के वाद प्रस्तार, सूची. पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, सुमेरु, खडमेरु, पताका, मर्कटी और प्रत्यय का वर्णन है। पूर्वार्ध मे

---

१ छन्दोमजरी की भूमिका महाराजा माधवसिंह वर्मा पृ १, २, ३

'श्रीधर' थे। इनका कविताकाल संवत् १८८४ से संवत् १९३२ तक था। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं (१) दशकुमार चरित (पद्यानुवाद,[1] भर्तृहरिशतक (पद्यानुवाद), (३) भारतसार (संवत् १९००,) (४) गजेन्द्र चिन्तामणि। ये जयपुर में भी रहते थे।

इनकी कविता का नमूना यह है –

'है सिर टोप रसालन के
    नवपल्लव की कफनीन सुहायो।
धूम पराग सुरागित साकिल
    कोकिल कंठ मनोज बँधायो।
'श्रीधर' कुन्दकली फटकावलि
    पौन सभीत सबै हरषायो।
जाचक बैरी वियोगिन प्रान
    ऋतुराज फकीर है माँगन आयो॥'

कवि अम्बुज के पुत्र विद्याधर जी थे। ये भी कवि थे। इन्होंने पीयूषवर्षी जयदेव कृत 'चन्द्रालोक' की सटीक व्याख्या की थी। इनका संवत् १९४७ का एक ग्रन्थ 'कवि कल्लोल नाटक' है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है –

'वाणी के द्वैवर्ण की गाथा अकथ अपार।
तथा स्वल्पमति कर कह्यौ ग्रंथानंद प्रकार॥१॥
सम्वदेद निधि छिति विदित संवत् विक्रम सुद्ध।
माघदमास सुपक्षसित तिथि दिगवासर बुद्ध॥२॥

इति श्रीकविकुलावतंस पद्माकरभट्टात्मज अम्बुजतनय विद्याधर विरचित कविकल्लोलाख्य समाप्तम्। शुभभूयात्।   – पंडित कृष्णकिशोर।'

कवि पद्माकर के वंशवृक्ष विषयक कविता[2] भी इन्ही विद्याधर की बनाई हुई है, जिसके उद्धरण यत्रतत्र दिये हैं तथा पं नकछेदी तिवारी 'अजान'[3] कवि ने भी इनके नाम का संकेत किया है। इनका जन्म संवत् १८९० तथा इनका देहावसान संवत् १९६९ में हुआ।

---

१ का ना प्र सभा के हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का विवरण ८.५ (१) [illegible] राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ २४३ में हलधर और श्रीधर को भिन्न माना है।

२ लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुरविरुदावली भूमिका पृ १२

३ पं नकछेदी तिवारी पद्माकर [illegible] देवनागर, वर्ष १ अंक १

दई कृशानु एक ओर आय दुष्ट क्रोध ने
भजै सुजीव कौन ओर छेम ठौर लेखिए ।।

ऊमटनरेश माधवसिंह के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है । पुष्पिका है – सिद्धि श्रीमन्महाराज श्री १०८ माधवसिंह देववर्माज्ञप्त श्रीमत्कवि-चक्रचूडामणि पंच श्रीमत्कवि पद्माकरभट्टात्मज पंच श्री कवि मही‍लाल भट्टात्मज पंचश्री कवि गदाधर कृत छंदोमंजरी ग्रन्थेऽर्द्ध समविषमवृत्त दंडादिक वर्णन नाम द्वितीय प्रकरण । समाप्तोय ग्रन्थ ।

कवि गदाधरभट्ट के निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं –

(१) वृत्तचन्द्रिका[1] (सं १८९४), (२) कामन्दक (सं १८९५)[2] जयपुर-महाराज सवाई रामसिंह की इच्छानुसार संस्कृत-नीति का छह हजार भाषा-छन्दो मे अनुवाद, (३) विरुदावली (सं १८९८), (४) विजेन्द्र विलास (सं १९०३), (५) केसरसभाविनोद (१९३९), (६) ऋतुराज-शतक[3], (७) छन्दोमञ्जरी (सं. १९१४), (८) अलंकारचन्द्रोदय[4] ४१ इनका कविताकाल संवत् १८९४ से संवत् १९४२ तक माना जासकता है । इनकी भाषा खूब साफ, सानुप्रास और श्रुतिमधुर है । गदाधरजी का काव्य परम प्रशंसनीय और मनोहर है ।

कवि गदाधर के छोटे भाई चन्द्रधर[5] उर्फ चन्दूलाल का जन्म संवत् १८६३ मे हुआ था । कानून दोहम के बाद वे सरकारी वकील बनाये गये और उन्होने बांदानगर मे कोठी बनवाई, जिसमे कवि पद्माकर द्वारा पूजित श्रीराधाकृष्ण विहारीजी की मूर्तियाँ स्थापित की । इनका व्यवसाय वकालत भी था । सन् १८५७ मे जब गदर हुआ तो जलालपुर मे जाकर इन्होने जनता को विप्लव की आग से बचाया, अत ये सरकार और जनता दोनो के प्रिय पात्र बने । इनकी वकालत मे सहयोग देनेवाले इनके भाई विद्याधर थे, जो उनके सालि-सिटर भी थे । अपने अन्तिम समय मे इन्ही के पुत्र पं कृष्णकिशोर को चन्दूलाल वकील ने गोद मे लिया था जो उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी तथा ग्राम दुरई माफी के माफीदार तथा चन्दूलाल द्वारा निर्मित मन्दिर मे कवि पद्माकर की पूजित ठाकुर विहारी जी की प्रतिष्ठापित मूर्तियो के सरबराहकार तथा मुन्तजिम लम्बरदार बने । वंशीधर के सबसे छोटे भाई लक्ष्मीधर उपनाम

---

१ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण १ भाग छ प १/३७

२ ४ मिश्रबन्धुविनोद. तृतीय भाग संख्या (२०७९) पृ १२२५–११२६

३ प्राप्तिस्थान डा दीनपालसिंह राठौर आज्ञामऊ जिला एटा

५ राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ २४४

'कौन सुने फरयाद दीन की तुझ बिन किसकी अटकी है ।
जग से याद कफस लालच में लगी मोह की फटकी है ।।
फँसा मुर्गदिल जाल हिर्स मे माल चुगाले चटकी है ।
साहब 'जुगलकिशोर' गौर कर बिरद आपके वटकी है ।।'

गौरीशंकर जी इन सब भाइयो मे छोटे थ । इनका उपनाम 'सुधाकर' था। दतियानरेश महाराज भवानीसिह की बडी सरकार गोविंदकुँअर कवि गदाधर की शिष्या रही तथा छोटी सरकार कचनकुँअर लक्ष्मीधर की शिष्या रही। दतियानरेश लोकेन्द्र गोविन्दसिह ने 'सुधाकर'जी को 'कवीन्द्र' की उपाधि प्रदान की तथा उनकी छोटी सरकार सुँगरावारी रानी ने कवीन्द्र गौरीशकर जी से शिक्षा दीक्षा ली। का. ना प्र स. के हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको के विवरण से उनके दो ग्रन्थो[1] का पता चलता है (१) नीति विलास(१९५२) (२) विश्वविलास नाटक (१९५६) परन्तु इनके, (३) प्रताप पचीसी, (४) कीर्तिपचीसी, (५) रामायण कवित्त, (६) राधाष्टक[2] आदि छोटे छोटे ग्रन्थ भी कहे जाते है। भगवती की भावना सबधी एक कविता का नमूना इस प्रकार है -

सेवक हौ रावरो हमेश पदकंजन को
तेरो हौ कहाय अब कौन द्वार छीजिये ।
'सुधाकर' कहूं नाहि जानत हौं काव्यकोष
सस्कृत प्राकृत मे कैसे नाम लीजिये ।।
यो ही जन्म जायगो सो हुइहै अब आगे कहा
याही तै कृपा की कोर मेरी ओर कीजिये ।
कीजिए सब कामना सु नामना तो तिहारी रहै
राखो उर भावना सु ये ही वर दीजिये ।।

कवि रामप्रताप 'प्रभाकर' के पुत्रो मे गोविंदराव गिराधर थे, जो कवि थे तथा जयपुर के श्री दादूमहाविद्यालय मे हिन्दी के शिक्षक थे । उनकी कविता का नमूना यहाँ दिया गया है -

'मोद सहित जयनगर में श्रीयुत मान नरेश ।
करत राज सतयुग सदृश ज्यो निजपुर अलकेश ।।

---

१. का. ना. प्र सभा हस्तलिखित हिन्दीपुस्तकों का विवरण छ प. २/४०
राजस्थान का पिंगल साहित्य पृ. २४३

२. कुँअर महेन्द्रपाल सिंह • विशालभारत, जुलाई १९३४ पृ १५

कवि पद्माकर के प्रपौत्रो मे वशीधर के पुत्र पन्नालाल, गदाधर कवि के पुत्र रामानुज, चन्द्रधर वकील के पुत्र कृष्णकिशोर, तथा लक्ष्मीधर के पुत्र रामप्रताप 'प्रभाकर', जुगलकिशोर 'दयाकर', गौरीशकर 'सुधाकर' थे। इन पुत्रो मे 'प्रभाकर' और 'सुधाकर' अच्छे कवि थे। प्रभाकर का जन्म सवत् १९१३ तथा मृत्यु सवत् १९६० है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको के सक्षिप्त विवरण छ प १।७७ के अनुसार इनके निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते है :–

(१) प्रतापकीर्त्तिचन्द्रोदय (१९५२), (२) षड्ऋतुवर्णन (षट्ऋतु चन्द्रिका), (३) भर्तृहरिनीतिशतक, (४) यज्ञोपवीत सरोज, (५) हम्मीर कुल कल्पवृक्ष (१९५६), (६) अलकार (१९५९) प गोविन्दराव कवीश्वर के कथनानुसार, (७) आनन्दचन्द्रिका (बिहारी की सतसई पर टीका), (८) शिवप्रादुर्भावोत्सव, (९) लोकेन्द्र विनोद, (१०) माधवविनोद (११) मसनद महोत्सव, (१२) काव्यालम्ब, (१३) शान्तिशतक, (१४) शिकारशतक और है। ये दतिया, टीकमगढ और पन्ना मे रहे। सवत् १९५८ मे पन्ना मे उपद्रव हुआ और महाराज को राज्य से अलहदा होना पड़ा, तब से ये भी जयपुर मे रहने लगे। डुमरगाव के महाराज के यहाँ भी ये कुछ दिन रहे, जहाँ इनका परिचय अन्य कवियो से हुआ। इनकी कविता का नमूना[1] इस प्रकार है –

'महल मसान बसै मूसक मवास लसै
गुजरै बिलार दिनरैन जाके पास सें।
'प्रभाकर' कहै जिन्द जुरिकै जलूसी सजै
मसनद ऊपर परिंद सुखरास से ॥
सूकर सृगाल सबै कूकर सरप गोह
गिरगिट गोजर विराजत विलास में।
प्रेत परयक राचै, भवन में भूत नाचै
खाविस भँडारिन उलूक आमखास में ॥'

अग्रेजी राज्य के अधीन इन राजसी दरबारो का जब यह हाल था, तो कविता के क्षेत्र मे भी आमखास मे रहनेवालो को कितना भय लगता होगा ?

कवि प्रभाकर के छोटे भाई जुगलकिशोर थे, जो निस्सन्तान होकर मरे। ये भी 'दयाकर' के उपनाम से कुछ कविता कर लेते थे। उर्दूफारसी मिश्रित इनके छन्द की चार लाइने सुन लीजिए•

१. कुँअर महेन्द्रपालसिंह विशालभारत जुलाई १९३८ पृ १५

सन् १९५१ मे इनकी मृत्यु होगई। डॉ भालचन्द्रराव तेलग आजकल U G C. के प्रोफेसर तथा मराठवाडा विद्यापीठ (महाराष्ट्र) के हिन्दीविभाग के अध्यक्ष हैं। इनके ज्येष्ठ पुत्र चि. कृष्णकान्त तैलग, गवर्नमेट इजिनियरिंग कॉलेज रायपुर (म प्र) के मेटलर्जी विभाग मे रीडर तथा छोटे पुत्र चि चन्द्रकान्त तैलग गवर्नमेट डिग्री कॉलेज अव पिपरिया (म प्र) मे फिजिक्स विभाग में असिस्टेट प्रोफेसर हैं। बडी कन्या सौ. इन्दुरेखा बी ए बी टी, कवि लाल के वशज चि कमलनयनगोस्वामी बी. ए बी टी को बीकानेर मे तथा छोटी कन्या सौ सुषमा एम ए जयपुर मे देवर्षि श्रीकृष्णकलानिधि के वशज चि जगदीशचन्द्र को व्याही गई है। कविवर पद्माकर के प्रपौत्रात्मज की सन्तानो तक का विवरण देकर इस वश-परम्परा के परिचय को यहाँ समाप्त किया जाता है।

'ये मद्वंश्या आसते तत्रविप्रा –
एतेष्वस्माकं सन्तु नित्य प्रणामा।
स्वीयं वृत्तं सर्वथा प्रापणीयम्
पत्रद्वारा नागरर्क्षरैर्न ॥'

– वशावली (सवत् १९४७)

चार वरण आश्रम सहित बसत प्रजा सुखधाम ।
धर्म कर्म निज कुल अवधपुरी ज्यों राम ॥ ' [1]

'समस्यापूर्त्ति' मे भी ये कुशल थे । 'षट्ऋतु वर्णन' [2] इनका ग्रन्थ है । संस्कृतग्रथ 'जयपुरवैभवम्' मे इनका परिचय इन शब्दो मे प्राप्त होता है –

' कविवर पद्माकरकुलजमसहजकविता यस्य ।
गणय गिराधरकविमिमं कविगणेन विन्यस्य ॥ ' [3]

गोविंदराव कवीश्वर जयपुर मे चाँदपोल दरवाजे के अन्दर जाट कुएँ के रास्ते मे रहते थे । 'अजान कवि' तथा 'कुँअर महेन्द्रपालसिह' ने अपने उन लेखो मे इन्हीका आधार लिया है । चि कमलाकर इनके पुत्र है जो 'साहित्य सदावर्त' की सस्था के सचालक है, विद्वान् अध्यापक है, तथा कवि है, चि विमलाकर, विश्वम्भर, लक्ष्मण तथा रत्नाकर इनके अन्य पुत्र है । कवि प्रभाकर के दूसरे पुत्र बलवन्त थे । उनके अन्य भाई गौरीशकर तथा जुगुलकिशोर के समान ये भी निस्सन्तान दिवगत हुए ।

प. कृष्णकिशोर कविवर पद्माकर के प्रपौत्र थे, इनका उपनाम 'कृपाकर' था । [4] इनका जन्म सवत् १९२० मे बाँदा मे हुआ । प कृष्णकिशोर भी कविता करते थे । ये पहिले छतरपुरनरेश राजा विश्वनाथसिह के यहाँ भी रहे तथा उनकी दतियावाली महारानी बाईजूराजा को इन्होने ही शिक्षादीक्षा दी । छतरपुर मे कोतवाली के सामने इन्हे घर दिया गया । लाला भगवानदीनजी का परिचय यही कृपाकरजी से हुआ और उनको इन्होने ही 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' का हस्तलेख सम्पादनार्थ दिया । उनका पुत्र दामोदर उन दिनो उन्हीके पास उर्दू और अग्रेजी पढता था । [1] प कृष्ण-किशोरजी अपनी पैतृक जायदाद के प्रबध के लिये बांदा तथा माफी दुरई ग्राम मे रहने लगे । यही दुरई ग्राम मे सवत् १९६३ मे छोटे पुत्र चन्द्रशेखर उर्फ भालचन्द्र का जन्म हुआ । तदुपरान्त सवत् १९६४ मे प कृष्णकिशोरजी का देहान्त होगया और इनकी विधवा पत्नी श्रीमती गोदाबाई को यही दोनो पुत्रो का लालन–पालन, भरण–पोषण करना पडा । दुर्भाग्यवश बडे पुत्र दामोदर की शैशवकाल मे ही मृत्यु होगई और अब अपने एकमात्र पुत्र भाल-चन्द्र के साथ वे अपने भाई रामकृष्णशास्त्री के सरक्षण मे आकर रहने लगी ।

---

१. कुँअर महेन्द्रपालसिंह विशालभारत
२ का ना प्र सभा का हिन्दीपुस्तकों का विवरण छ प २/४०
३ जयपुरवैभवम् प मथुरानाथ शास्त्री 'मञ्जुनाथ', पृ. २७७
४ लाला भगवानदीन हिम्मतबहादुर विरुदावली भूमिका, पृ ११

सवत् १८५५ बादा के नवाब अलीबहादुर की प्रशस्ति का छन्द – १ (पृ. ५२)

सवत् १८५६ सागरनरेश रघुनाथराव आपासाहब की प्रशस्ति के छन्द – ३ (पृ. ५३, ५६–५७), अन्य छन्द – २ (पृ. ५८)

सवत् १८६० जयपुर–आगमन तथा समस्या–पूर्ति छद – १ (पृ. ६०)

जयपुरनरेश प्रतापसिह की प्रशस्ति के छन्द – १६ (पद्माकर–ग्रन्थावली प्रकीर्णक, पृ. ३०३–३०८)

'तूंगा-युद्ध–वर्णन' छन्द – १ (पृ. ४६)

'प्रतापसिहविरुदावली' की रचना (प्रकाशित)।

महाराज प्रतापसिह का 'र ावधन' छन्द–१ (पृ. ६८)

'पद्माभरण', 'भूपणचेतावनो', 'लिलहारी लीला'[१] (प्राप्त) (पद्माकरग्रथावली, पृ. ३६–३८, पृ. ३४–३५ तथा प्रकीर्णक छन्द सख्या ७३, (पृ. ३२३).

जयपुर का 'गनगौर–उत्सव–वर्णन तथा गनगौरी–वन्दन' छन्द–७ (पृ ६८–७१), अन्य छन्द-३ (पृ. ७३–७४.)

हाथी, लवा, तीतर युद्ध-वर्णन, छन्द-३ (पद्माकर ग्रन्थावली' पृ. ३०७– ३०८),

महाराज प्रतापसिह के देहान्त पर छन्द-१ तथा महारानी राठौरजी के सती-सस्कारपर छन्द-१ (पृ ६६).

सिहासनासीन महाराज जगतसिंह के राजतिलक पर छन्द-१ तथा उनके द्वारा अश्व-दान पर छन्द-१ (पद्माकर गन्थावली, प्रकीर्णक, छन्द १९–२० पृ ३०८–३०९)

सवत् १८६१ फाल्गुन, शुक्ल ११, सीतानगर (दमोह) की 'रानी' के सती–सस्कार पर कवि पद्माकर का छन्द-१ (पृ. ७७–७८).

सवत् १८६१ लगभग) जैसीनगर नरेश जयसिंह का प्रशस्ति छन्द-२ (पृ ८८) तथा 'जयसिह विरुदावली' (अप्राप्य)

---

१ 'पद्माकर' यो व्रजनारि कहे हम हैं हरि के ग घोरनहारी'– अन्तिम चरण

कवि पद्माकर की काव्य-कृतियाँ

कवि पद्माकर की प्राप्त, पाप्य तथा अप्राप्य काव्य-कृतियो का ऐतिहासिक क्रम निम्नलिखित है –

सवत् १८१९ पन्नानरेश हिन्दूपति की स ाय्ता से अजयगढ– नरेश महाराज गुमानसिंह के अवध के नवाब शुजाउद्दौला के सेनापति करामातखाँ तथा अनूपगिरि (हिम्मतबहादुर) के माथ हुए 'तेंदुवारी युद्ध' का वर्णन, छन्द-७ (पृ २५-३७)

अजयगढनरेश महाराज गुमानसिंह का रूप-वर्णन छन्द – १ (पृ ३४)

सवत् १८२५ जयपुरनरेश महाराज माधवसिंह के ओजभरे स्वरूप का वर्णन. छन्द – १ (पृ ४१)

यहीं कहीं 'बैरीसाल' कृत 'भाषाभरण' अलकार-ग्रथ का अवलोकन.

सवत् १८३५ अजयगढनरेश महाराज गुमानसिंह का कवि पद्माकर द्वारा 'महाभारत-कथा-श्रवण' तथा उनकी काव्य-रचना।

सवत् १८३७, कार्तिक, शुक्ल, ११ ग्राम दुरई माफी का पादार्घ्य-दान। सेनापति नौने अर्जुनसिंह की खड्ग-सिद्धि, कवि पद्माकर को मत्रगुरु बनाना तथा उनकी प्रशस्ति में 'अर्जुन-रायसा' की रचना (अप्राप्त)

सवत् १८४१ सितारावीश रघुनाथराव पेशवा 'राघोवा' के दरबार मे आगमन तथा उनकी प्रशसा मे छन्दोरचना (अप्राप्य)

सवत् १८४८ बुन्देलखड आकर रणसज्ज हिम्मतबहादुर की प्रशस्ति मे निर्मित छन्द – १ (पृ- ४३) तथा उनका आश्रय।

सवत् १८४९ 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' की रचना (प्राप्त) नवगाव युद्ध में पराजित नौने अर्जुनसिंह की मृत्यु पर कहे गये छन्द–२ (पृ ३९-४०) उत्तमगिरि के विवाह-वर्णन के छन्द–२ (पृ ५१-५२)

संवत् १८८४ बांदा में आनेपर प्रबोधपचासा अथवा 'प्रबोधपचाशिका' की रचना, जैसा कि 'इतिश्री बाँदावासी मोहनभट्टात्मज कवि पद्माकर विरचित प्रबोधपचासा समाप्त' से सूचित होता है। ईश्वरपच्चीसी अथवा कलिपच्चीसी की रचना, जैसा कि 'इतिश्री कवि पद्माकर विरचित ईश्वरपच्चीसी सपूर्णम्। श्री शिवार्पणमस्तु।' इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। एक दतिया (दिलीपगढ) से जिसमें 'ईश्वरपच्चीसी' नाम लिखा है, दूसरी जयपुर से जिसमें 'कलिपच्चीसी' नाम मिलता है। 'यमुनालहरी' कदाचित् बाँदा से कानपुर आते आते 'घाटमपुर' के समीप रचित की गई हो। इसका एक हस्तलेख 'दतिया राजकीय पुस्तकालय मे प्राप्त है।

डॉ मोतीलाल मेनारिया ने 'कलियुग पच्चीसी'[1] को 'ईश्वरपच्चीसी' ग्रन्थ से भिन्न माना है। सर्व प्रथम श्री वियोगी हरि द्वारा 'सम्मेलन पत्रिका' में यह प्रकाशित की गई थी। डॉ. मेनारिया ने 'भगवत्पंचाशिका'[1] को एक इससे अलग ग्रन्थ माना है। इनके अतिरिक्त 'प्रतापसिंह सफरनामा' और 'अश्वमेध' ये दो ग्रन्थ 'श्री वल्लभ वंशवृक्ष' के आधार पर और माने जाते है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी इस ग्रन्थ 'अश्वमेध भाषा'[2] का संकेत किया है। पर, कवि पद्माकरभट्ट के पिता कविराजशिरोमणि मोहनलाल ने 'रामाश्वमेध' की रचना की है। इसका हस्तलेख 'श्री दयानन्द वाचनालय पुस्तकालय, बाँदा' से प्राप्त हुआ है, जिसका सम्पादन और प्रकाशन शीघ्र ही हो रहा है। हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार 'श्री गार्सी द तासी' ने 'पद्माकर' को 'पद्माकरदेव (कवि)' लिखा है, उन्हे 'कमल के तालाब का देवता' कहा है और लिखा है 'ग्वालियर के लोकप्रिय गीतो (कविताओं-अनु)' के रचयिता हिन्दू कवि हैं, जिन्होंने १८१० से १८२० तक लिखा और जिनका एक कवित्त 'करीम' ने उद्धृत किया है।

संवत् १८८४ कानपुर की सुरसरिता के मार्ग से आरंभ हुई तथा 'मरसैया घाट' पर समाप्त पापोन्मोचिनी गंगालहरी रचना, जिसमें आचार्य विश्वनाथप्रसादमिश्र द्वारा प्राप्त १० नवीन छन्द सम्मिलित कर लेना चाहिये।

---

१ पद्माकर ग्रन्थावली पृ २९, ३०, ५२, ५३ राजस्थान का पिंगलसाहित्य पृ १५६. खडीबोली काव्य में अभिव्यंजना डॉ आशागुप्त पृ १३१, १३२

२ पद्माकर ग्रन्थावली, पृ. ४९

संवत् १८६२ दतियानरेश महाराज परीक्षित के सुयश के छन्द-२ (पृ ८०-८१) कथा-श्रवण हेतु '**रामरसायन**' की रचना (मुद्रणार्थ यन्त्रस्थ) तथा कथा-पारायण का कवित्त छन्द–१ (पृ ८१) एवं छन्द–१ (पद्माकर ग्रन्थावली प्रकीर्णक छन्द ८६ पृ ३२७)[1]

संवत् १८६६ (लगभग) कालिंजर के किलेदार के पुत्र भरतसिंह (भरतजू) की प्रशंसा का छन्द–१ (पृ ८२)[2]

संवत् १८७० जयपुरनरेश जगतसिंह के समक्ष अपना परिचय छन्द–१ (पृ ८४) '**जगद्विनोद**' की रचना (प्राप्त) तथा प्रकाशित।

संवत् १८७० जोधपुर[3] की यात्रा, प्रशस्ति–छन्द (अप्राप्य)

संवत् १८७३ उदयपुरनरेश महाराणा भीमसिंह के दरबार में भेंट तथा उदयपुर के गनगौर-उत्सव का वर्णन, छन्द– १ (पृ ८८-८९)

संवत् १८७५ बूँदीनरेश राजा विशनसिंह के यहाँ आगमन तथा संस्कृत अमरकोष[4] का भाषानुवाद (अप्राप्य)

संवत् १८७६ ग्वालियर आते आते भील डाकुओं के बीच '**आल्हागीत**'[5]

संवत् १८७८ ग्वालियरनरेश आलीजाह दौलतराव सिंधिया की प्रशस्ति का छन्द- १ (पृ ९१) उनके कपू का वर्णन, छन्द- १ (पृ ९१-९२) '**आलीजाप्रकाश**' की रचना। (अप्रकाशित)

संवत् १८८० ग्वालियरनरेश दौलतराव सिंधिया के विद्वान् पारिषद् ऊदाजी रानोजी खटके के स्नेह पर '**राजनीतिवचनिका**' अर्थात् 'हितोपदेश अरु पंचोपाख्यान' की रचना। छन्द- ६ तथा ३७ से ६८ तक (पृ ९३-९५) तथा पद्माकर ग्रन्थावली, (पृ ३१ से ३३)

संवत् १८८३ चरखारीनरेश रतनसिंह के समक्ष कहा हुआ बराबरी का दावा वाला छन्द- १ (पृ ९८ तथा ९९)

---

१ उक्त छन्द को 'जयसिंह विरुदावली' का कहा जाता है (देखिए 'पद्माकर की काव्यसाधना, पृ ६१–६२), पं गोविन्दराव कवीश्वर इसे 'आलीजा–सागर' का अंश कहते हैं, परन्तु है यह महाराज परीक्षित के समय का कथा–पारायण का कवित्त, मिलाइये ऐसा ही छन्द (पृ ८१).

२ डॉ बलदेवप्रसाद मिश्र इसे महाराणा भीमसिंह का प्रशस्ति–छन्द मानते हैं।

३ देखिए लाला भगवानदीन कृत हिम्मतबहादुर विरुदावली की भूमिका. पृ ८

४ डॉ ब्रजनारायण सिंह कविवर पद्माकर और उनका युग, पृ १०४, १२२

५ डॉ ब्रजनारायण सिंह ने इसे उदयपुर से जयपुर आते हुए कहा है, पर है यह रचना बूँदी से ग्वालियर आते हुए मार्ग की।

से मत न मिलने पर उनके लिए कटु-तिक्त का प्रयोग नहीं किया गया। यदि कोई यह कहे कि वुद्धि की सूक्ष्मेक्षिका से हट जाने से यहाँ चिंतन की परम्परा का सत्पक्ष भी तो प्रवधित नहीं हुआ, तो यही कहना है कि वह आगे सस्कृत मे ही कहाँ विकसित हुआ? शास्त्रचिन्तन की पडितराज जगन्नाथ तक आते न आते एक प्रकार से परिसमाप्ति ही हो गई। नया कुछ कहना मानो रह ही नहीं गया। ऐसी स्थिति मे यदि हिन्दी के मध्यकालिक शास्त्रकवियो ने शास्त्रचिन्ता की सिद्धावस्था मे ही रहना उचित समझा, तो वे ही एकात दोष के भागी क्यों समझे जाते है ?

हिन्दी मे साहित्य-शास्त्र का सागर पद्माकर तक आते-आते प्रसन्न पद्म-आकर के सुनिर्मल जल की भाँति अपने खारीपन का परित्याग करके मधुमय ही नहीं हो गया, परिमित भी हो गया। साहित्य-शास्त्र का निर्यास ही हिन्दी ने ग्रहण किया। सागर का मथन करके उसके कुछ वहुमूल्य रत्न निकाल लिए और उन्हे ही काट-छाँट कर ग्राहको के सामने वे रखते रहे। हिन्दी ने सस्कृत मे विकसित विभिन्न साहित्यशास्त्रीय मतो मे से दो ही प्रवाहो को मुख्य रूप से ग्रहण किया है-एक अलकार मत का प्रवाह, दूसरा रस मत का प्रवाह। पद्माकर ने पद्माभरण और जगद्विनोद दो ही शास्त्रग्रन्थ क्यो प्रस्तुत किए? इन्ही प्रवाहो के प्रदर्शन के लिए। पद्माभरण मे तर्क-दृष्टि से कुछ दोष अवश्य दिखाई देते है फिर भी वह हिन्दी के अलकार ग्रन्थो में से वहुतो से स्पष्ट है। इसमे थोडी सी सस्कृत-पद्धति भी हिन्दी मे लाने का प्रयास किया गया है, जैसे लुप्तोपमा के प्रसग मे, किन्तु उसका परित्याग हिन्दी पहले ही कर चुकी थी इसलिए उसका स्वागत सग्रह नहीं हुआ। जगद्विनोद का जैसा प्रचलन रीतियुग मे था वैसा पद्माभरण का नहीं। किन्तु आधुनिक युग मे भाषाभूषण का स्थान वडे मजे मे पद्माभरण ने प्राप्त कर लिया है, यह उसके पठन-पाठन मे प्रमाणित है।

पद्माभरण जगद्विनोद की भाँति 'विनोद' अर्थात् रजनतत्त्व-प्रधान शास्त्र ग्रन्थ नहीं है। यदि 'पद्माभरण' के वदले 'पद्माविनोद' प्रस्तुत होता तो कदाचित् जगद्विनोद की ही भाँति उसका प्रचलन हुआ होता। 'रजन' तत्व की प्रधानता लक्षण ग्रन्थ मे दोहो की अपेक्षा कवित्त-सवैयो से अधिक आती है। लक्षणपर्यवसायी लक्ष्य यदि दोहो मे रखे जाते है तो रजन के प्रसार का अवकाश कम मिलता है। ज्ञात होता है कि विहारी ने लक्षणपर्यवसायी लक्ष्य न लिखकर स्वतन्त्र लक्ष्य अपनी सतसैया मे इसी से रखे है। उनके 'मुक्तक' ने लक्षण से भी 'मुक्ति' पाने का प्रयास किया है। भले ही, उससे पूरा 'मोक्ष' न मिला हो। यदि लक्षण का अनुधावन ही उनके दोहे करते, तो

पद्माकर कवि का व्यक्तित्व

भारत मे भारती-साधना की अखड परम्परा अत्यन्त प्राचीन कल्प से चली आ रही है। यही साधना है जो भावना मे 'सर्व खल्विदम्' को मानती है और निसग इतनी है कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' होती है। अन्यत्र ऐसी सार्वजनीन कल्पना नही है। यहाँ वाङमय के काव्य और शास्त्र जो दो भेद किए गये, उनमे से काव्य मे सग्रह और त्याग का जैसा परिनिर्मल स्वरूप दृग्गोचर होता है वैसा शास्त्र मे नही। उसका मुख्य हेतु यह है कि काव्य 'अविचारित रमणीय' है, उसमे 'विचार' का 'विवाद' कम है, लगभग 'नही' के समकक्ष है। जो कुछ 'है' वह रमणीय है। उसमे रमने का, लीन होने का परिणाम है विश्वता का सग्रह और अहंता का त्याग। इस कोटि का त्याग और इस सीमा का सग्रह कि त्यागी सग्राहक के अन्त करण मे सर्वसाधारण की विश्वव्यापिनी मूर्ति ही प्रतिष्ठित रह जाती है, वह भावसत्ता मात्र रह जाता है। सवादी स्वर ही हृत्तत्री मे झकृत होता है, विवादीसे वह विरहित रहता है, पर 'शास्त्र' और 'शस्त्र' मे केवल आकारतो भेद है। इसलिए शास्त्र कभी-कभी आकारवृद्धिपूर्वक शस्त्र निकाल बैठता है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि साहित्य के क्षेत्र मे शास्त्र-चितन करते हुए इसको प्राय बचाने का प्रयास साहित्य की मनीषा करती आई है। कही-कही कोई मुखर हो गया है। किसी के मत का खडन करके अपने मत का मडन करना, किसी स्वचितित सिद्धात की स्थापना करना 'अहम्' को प्रत्यक्ष सामने ला खडा करना है। यदि चितना मडन पर ही अधिक दृष्टि रखती है खडन पर उतनी नही, तो वाग्युद्ध स्पृहणीय रहता है। महाभारत के योद्धाओ की भाँति युद्ध-कार्य से विरत होते ही एक ही थाल मे सहभोजन की सद्गति आ जाती है। किन्तु खडन मे विशेष रत होने पर पडितराज जगन्नाथ की भाँति कभी कभी किसी के लिए अरुतुद वाग्बाण भी छूट ही पडते है।

हिन्दी मे काव्यकवि और शास्त्रकवि दोनो ही सर्जना की सीमा के नैकट्य के कारण शास्त्रार्थ के असत्पक्ष से हटे ही रहे। इसलिए हिन्दी के मध्यकाल मे 'अमरभारती' की परम्परा कम से कम इस दृष्टि से विकसित ही हुई। काव्य के रमणीय पक्षके प्रवर्धन का यह अच्छा फल हुआ कि पूर्ववर्तियो

भी शृंगार की श्यामता वे नही हटा सके। जब केशवदास की केशव की दासता भी इसका परिष्कार नही कर पाई, तो पद्माकरभट्ट की 'भट्टता' क्या कर सकती थी। पर इस यथार्थ, अतियथार्थवादी, नूतन मनोवैज्ञानिक युग मे आकर भी जब हिन्दी के शृंगारकाल के शृंगारी कवियो का पुनर्मूल्यांकन नही किया गया, विहारी को ही झाँक कर रह गया, आलोचना का बचपन प्रौढिमा को नही पहुँचा, तब इसे उन कवियो का अभाग्य कहा जाय या हिन्दी की वर्तमान आलोचना का।

एक बात अब दबी जबान से अवश्य कही जा रही है कि उस युग का काव्य 'स्वस्थ' था, 'सुस्थ' चाहे न रहा हो। 'स्वस्थ' का चाहे जो अर्थ लगाते हो समीक्षक, पर उन्होने अभी एक अर्थ नही लगाया है। वह है 'परस्थ' का प्रतिपक्ष। उस युग के कवियो ने स्वप्रत्यय से ही, स्वकीय निरीक्षण से ही ऐसा किया था उसमे 'परप्रत्यय' नही था। मनोविज्ञान के वैज्ञानिक या शास्त्रीय ग्रन्थो के सकेत पर उनकी ये रचनाएँ निर्मित नही हुई। कामशास्त्र या कोककारिकाएँ उसका आधार नही बनी। जो सकेत है वे साहित्यशास्त्र के ही है, जो तत्त्व है वह सजातीय है या स्वकीय। काव्यशास्त्र का परपरित-कथित भी कहते चले है और स्वीय पर्यवेक्षण भी पिरोते गए है। शृंगार-चारित या श्यामचरित के सूत्र में पिरोए मानस-मोती ही गए है, सुजन नही तो सुजान-सहृदय उसे पहनते भी है। पर साहित्य के 'सामाजिक' के आसन पर कोई समाजवादी बैठ जाए तो इन कवियो की खैर नही।

प्रतीत होता है कि हिन्दी साहित्य का शृंगारकाल मध्ययुग मे उसका पूर्ण साहित्यिक यौवन था। उसमे शृंगार की रसिकता ही नही थी, रसिकता का शृंगार भी था। रस का सहज प्रवाह भी था और वर्ण-रमणीयता की सुघट्ट सघटना भी। जिस युग मे व्यक्तितत्व या व्यक्तित्व का विशेष महत्व माना जाता हो, उसमे भी जब इन कवियो के व्यक्तितत्व पर कोई लुब्ध-मुग्ध नही हुआ तब यही कहना पडता है कि सहृदय भावक ने आलोचक के व्यक्तित्व का त्याग कर किसी और के स्वाँग का शृंगार किया है, इसी से उस युग के शृंगार का स्वाँग उसे नही रुचता। शास्त्रकार को एक और छूट मिलती है। जिस शास्त्र के विवेचन मे वह प्रवृत्त हो, यदि उसके सत्यापन के लिए कुछ ऐसे उदाहरण, दृष्टात, वर्णन – उल्लेखन की अनिवार्यता हो जो सामाजिक दृष्टि से शसनीय न हो तो उसे दोषमुक्त समझा जाता है। यदि शृंगारकालीन कवि किसी ऐसे लक्षण का लक्ष्य प्रस्तुत कर रहा है जिसके लिए उसे वैसा ही लिखना चाहिए था, तो भी न्यायाधीश आलोचक उसे 'दौरा सपुर्द' ही कर देता है।

जैसा वैभव वे दिखा सके वैसा दिखा ही न पाते। बिहारी ने बुद्धिमत्ता से काम लिया और उनके दोहे दमक उठे। मतिराम ने 'ललितललाम' में इसी रजकता पर ध्यान दिया है इसी से उसका प्रचलन अधिक हुआ। मतिराम ने मतिमत्ता से काम अवश्य लिया। पद्माकर ने सरस रजकता के विनियोग का ध्यान पद्माभरण में नहीं रखा, विशुद्ध साहित्य–शास्त्रीय शुष्क प्रयोजन की ही निष्पत्ति की। शास्त्र–कारिका, सूत्र आदि के समास से जहाँ सतुलित विमर्श–परामर्श में समर्थ होता है, वहीं वह कठिन या शुष्क भी हो जाया करता है। किसी 'रसिक' के कहने पर पद्माभरण लिखा ही नहीं गया। उसकी रचना के प्रेरक का उल्लेख उसमें नहीं है। कोई पृच्छा करने वाला 'रसिक' नहीं है और समाधानरूप में उसका प्रणयन नहीं हुआ। राधा और राधावर माधवके कृपा–स्मरण और कवि–सुकवियो के पथ को देख–लखकर ही उसका उद्भावन हुआ है। यह विशुद्ध साहित्यिक प्रयोजन से ही बना है और 'पद्म' या 'पद्माकर' की ही स्वेरणा इसमें हेतु है। अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि किसी शिष्य-सुत या 'वाला बालकहु' को समझाने के लिए, वितराम् कविप्रयोजन से उसका सर्जन हुआ है।

'जगद्विनोद' मे रजकता का, रसिकता का भी पूरा ध्यान है इसे कविप्रिय ही नही रसिकप्रिय भी जो बनाना था। रजकता रसराज मे अधिक होती है इसी से इसमें रसराज का विशेष विस्तार है। 'पद्माभरण' यदि ललितललाम नही बन सका तो 'जगद्विनोद' निश्चय ही 'रसराज' हो गया। 'रसराज' से भी अधिक उसके प्रसार का हेतु उसका यही हृद्यत्ता है, इसका निर्णय करते हुए उन्होने पूर्ण मतिमत्ता का भी परिचय दिया और सम्यक् रसवत्ता का भी। अलकार के लक्षण ग्रन्थ मे रसराज की रसवत्ता आकर उसके अलकरण मे वैसी सहायता नही पहुँचाती। प्रणेता की मति अलकार की सामग्री जुटाती–जटती रहती है और मन रसराज की रमणीयता मे तिरते–तिरते बूड जाता है। इस द्विचित्तेपन के कारण न माया मिलती है न राम।

जगद्विनोद मे किए गए रसराज शृगार के विस्तार मे उसका विलास भी निहित है। यह विलास अकेले इसी में नहीं है, अन्य आचार्य–कवियो के रसग्रन्थो में भी है। केशवदास ऐसे आचार्य सामाजिक दृष्टि से 'गणिका' को छोडकर राधा–माधव या गोपी–कृष्ण के स्वकीय–परकीय तत्त्व को ही ग्रहण करके चले, पर श्रृगार-विलास से फिर भी पिंड नही छूटा। 'केशव' ने सामाजिक अमर्यादा का 'शव' निकालकर शिवतत्त्व का अधिक सयोजन तो किया, पर 'केशव' अपने 'केश' का क्या करते, शिव की शुक्लता आने पर

मतिराम की कृति मे यौवन की निकाई देखन की, सहज सौंदर्य के निकट पहुँचने की, गार्हस्थ जीवन के यथार्थ रूपदर्शन की जैसी छटा है, वैसी नवीन कल्पना, नवोद्भावना कहाँ है ? जिस रमणीयता मे क्षण-क्षण नवता दृष्ट होती रहती है, उस नवता की उद्भावित झलक जैसी देव मे है वैसी उनमे कहाँ है ? मतिराम मे भाषा का स्फीत प्रवाह है तो देव मे पहाडी नदी की उच्छलता है। वहाँ मथर-गभीर गति है तो यहाँ प्रखरता है, रोडो से टक्कर।

मुन्शी या मनीषी भिखारीदास की या का कलम यदि काफिया रदीफ की बारीकी मे कमाल दिखाए और अलकार, नायिकाभेद, लक्षण-व्यजना का लेखा-जोखा लेने मे महारत हासिल करे, पुराना बहीखाता ठीक से सम्हाले और देवदत्त जाति-पाँति के निरीक्षण की नवीनता दिखाने मे दत्तचित्त हो तो दोनो का मेल कैसे मिल सकता है। कहाँ है भिखारीदास मे अभिधा, लक्षणा मे लक्षणा व्यजना मे अभिधा आदि उल्टी नवीन कहन। भिखारीदास क्या किसी मे नही है। भिखारीदास परपरा के भीतर ही, पुराने मे ही कुछ नवीन अवश्य लाने के पक्ष मे थे और देव का व्यक्तित्व पुराने की साधुता से आगे बढ जाता था। दूर की कौडी खोज निकालना था, ऐसे जैसी कोई न निकाल सका हो। देव की देन मे यद्यपि नवीन उद्भावना की ऐसी स्थिति है तथापि उसमे पद्माकर के से चित्र कहाँ है ? उन्ही मे क्यो, न केशवदास मे, न सेना-पति मे, न मतिराम मे, न भिखारीदास मे। बिहारी में वैसे चित्र अवश्य है। पर छोटे है। निकट से, ध्यान मे देखने के है। यहाँ, पद्माकर के काव्य-तरग मे अनायास, निरावरण, स्फुट रेखाकन है। होली सभी खेलते रहे होगे, उसके खेल भी देखते रहे होगे। पर पद्माकर ने जैसा देखा-दिखाया और किसी ने कहाँ लखा-लखाया। गगा देवी के अभगा तरगा तो 'केशव' ने भी भावसिंधु मे लेटे-लेटे देखे है पर गगालहरी पद्माकर से ही लहराई। केशव ने चाहे जिस व्याज से स्तुति की हो पर व्याजस्तुति की प्रस्तुति पद्माकर मे ही है। उस शैली की वैसी-उतनी और उत्तम रचना अन्यत्र हिन्दी मे कही नही है, सस्कृत मे कही नही है किसी देशी भाषा मे नही है, फिर परदेशी और विदेशी भाषा मे वैसा पदन्यास खोजने-दौडने से थकावट ही थकावट हाथ लगेगी।

रही भाषा। सो पद्माकर ने तैलग होकर जैसी व्रजभाषा लिखी, वैसी बुन्देली के केशवदास नही लिख सके, काव्य-नारिकेल की कठोरता ने उनको कठिन काव्य का प्रेत ही बनाकर छोडा। सेनापति व्रज के निकट रहकर भी अनूपनगर मे बसकर भी भाषा की वैसी अनूपता नही ला सके, गगातट मे शैत्यपावनत्व का अनुभव करते हुए भी वह प्रवाह प्रसन्नता नही पा सके जो

इन कवियो के स्वकीय व्यक्तित्व के अविकास की वात भी उठाई गई है। ठीक ही उठाई गई है। वाग्विकल्प अनत है और प्रति कविस्थित विकल्प से कर्ता का व्यक्तित्व निकाल लाना सहज नही है। ऐसी स्थिति मे तो और भी कठिन है जब एक ही प्रकार की खेती सबने की हो। एक ही सी हरियाली या 'हरियारी' जब सब मे हो। किन्तु एक पृच्छा रही जा रही है। क्या इन कवियो के व्यक्तित्व की खोज उसी तन्मनस्कता से कभी की गई है जिससे हिन्दी के वर्तमान काव्यकारो या कथाकारो की की गई है ? दूसरी जिज्ञासा यह भी होती है कि क्या किसी आलोचक ने प्रमुख आधुनिक प्रणेताओ के व्यक्तित्व के अतिरिक्त क्या सभी के व्यक्तित्व का सधान कर डाला है ? यदि इस युग के सम्बन्ध मे वैसा नही हो सका, तो फिर उसी युग के सम्बन्ध मे ऐसा क्यो कहा जाता है ? क्या आज के प्रधान प्रणेताओ का व्यक्तित्व जैसे स्फुट है, या स्फुट किया जाता है क्या उस युग के रचयिताओ मे वह स्फुट नही है और प्रयास करने पर स्फुट नही किया जा सकता ? क्या केशवदास, सेनापति, मतिराम, देव, भिखारीदास, पद्माकर आदि का व्यक्तित्व स्फुट नही है ? क्या एक ही प्रसग को आधार बनाकर लिखे गए इनके निर्माण मे लुप्तव्यक्तित्व का ही दर्शन या व्यक्तित्व का आदर्श नही है ? कवियो ने दर्शाया ही नही, प्रणेताओ ने प्रदर्शन ही नही किया अथवा आलोचको ने लोचा ही नही, समीक्षकों ने निरीक्षण ही नही किया। गिन लीजिए कि केशवदास मे 'भाखा' के श्लेष कितने मिलते है ? जिनके कुल के दास 'भाखा' नही बोल पाते थे, ये 'भाखा' मे लिखकर 'मदमति' भले ही कहे गए हो या बन गए हो, पर श्लेष के लिए सस्कृत साहित्य का आश्लेष उन्होने छोडा ही कहाँ ? 'भाखा' मे जो कुछ उन्होने उतारा उसमें अधिकतर 'अमरभारती' का ही अवतार है।

सेनापति चाहे देव सेनापति हो रहे हो, पर उन्होने देव-वाणी का वैसा विकास नही दिखाया। हिन्दी या 'भाखा' का पूर्ण वाग्विलास उनकी रचना में विलसित है। उनकी काव्य की खेती चाहे लम्बी-चौडी न हो या वैसी होकर भी देखने में ही न आई हो, खोजी को उसकी पगडडी का पता ही न चला हो पर उनकी खेती अपनी है, बीज अपने है, जुताई अपनी है, बुवाई अपनी है, सिचाई अपनी है, रखाई अपनी है, कटाई अपनी है, खलिहान में अनाज की राशि अपनी है। कही-कही सस्कृत के घनश्याम की रसवृष्टि भी हुई हो, व्रज के कुज का धीर समीर भी बह गया हो, विरह-सूर्य की प्रतप्त किरणे भी तप गई हो तो इस पर हिन्दी के किसान का वश ही कहाँ था। परपरा की प्रकृति द्वारा सभी उसे पाते रहे है, हिन्दी वाले ने भी निसर्गत उसे प्राप्त किया है।

जाहिरै जागति सी जमुना जब बूडै बहै उमहै वह वैनी।
त्यो 'पदमाकर' हीर के हारन गगतरगन को सुखदैनी।
पाइन के रँग सो रगि जात सी भाँति ही भाँति सरम्वती सैनी।
पैरै जहाँई जहाँ ब्रजबाल तहाँ-तहाँ ताल मे होत त्रिवैनी॥

यदि किसी ने त्रिवेणी के तट पर सगम के दर्शन किए हो तो पद्माकर ने जो रमणीय दृश्य यहाँ अकित किया है उसे वह भली भाँति हृदयगम कर सकता है। वहाँ यमुना और गगा की धाराएँ अलग-अलग प्रतीत होती है। सगम की रेखा इस प्रकार दोनो को विभाजित कर देती है मानो सजल चित्र खिचा हुआ हो। ब्रजबाल तैर रही है ताल मे और वह जलाशय है, जल का तीर्थ है, कोई धार्मिक तीर्थ नही, जिसका माहात्म्य हो, पर उसके कारण वह ताल आज त्रिवेणी सगम हो गया, तीर्थराज बन गया। यमुना की नीलिमा ही नही दिखती है, गगा से मिलती यमुना मे आलिगन, प्रवाह और उमग की जैसी वृत्तियाँ प्रतीत होती है वे वेणी के बूडने, बहने और उमहने मे है। गगा यमुना मे तो मिली नही, यमुना ही गगा में जा मिली। गगा को इससे सुख ही हुआ। वेणी ही हीरे के हारो से जा उलझती है, हार थोडे ही उलझने जाते है। नागपाश की विशेषता वेणी मे भी और कालियनाग को बसाए रखने वालो यमुना मे। नीलिमा दूर से ही झलक जाती है, हीरे के हार पानी में पडे है इससे उतने चमकते नही। यमुना दूर ही से प्रतीत होने लगती है। गग-तरग यमुना से कही अधिक तीव्र और धारा विशेष प्रखर है। यमुना मिलने के अनतर उसमे कमी आ गई, गति कम हो जाने से हरी-भरी दौड के, जल की चचलता के कम हो जाने से कुछ स्थिरता आई, सुख मिला। जहाँ एक ओर यमुना इतनी प्रत्यक्ष है वही सरस्वती अप्रत्यक्ष है। पाँव मे जो सहज रग है उससे 'सरस्वती सी' दिखने लगती है। उसका भान भर होता है। वह प्रत्यक्ष कहाँ होती है? 'भाँति ही भाँति' इसलिए कि अन्य रगो के साथ उसका मेल होता रहता है। कहना इतना ही है कि सगम के साथ उसकी समग्रता पूरी उतारी गई है। वेणी चोटी भी है और सरित्प्रवाह भी।

अधिक उदाहरण न देकर होली का एक चित्र यहाँ और दिया जाता है–

फाग के भीरे अभीरन ते गहि गोबिन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीनि पितम्बर कमर ते सुबिदा दई मीडि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कह्यो मुसकाइ लला फिरि आइयो खेलन होरी।

गगा लहरी मे निमज्जित होने के लिए गगातट की ओर बढने वाले पद्माकर ने सहज ही पा ली। कवि रत्नाकर के श्लेष के भँवर बहुतो को चक्कर मे डालते रहे और डालते रहते है। वे भवर ऐसे घनचक्कर है कि कइयो को घनचक्कर बन जाना पडा है। 'रत्नाकर' के 'रत्न' तह मे, भीतर गहराई मे चले गए है, मरजीवा ही जो पर खेल कर ला पायेगे। पर पद्माकर की भाषा के 'पद्म' प्रफुल्ल है, सुकुमार है, सजीव है। भवर यहाँ भी है, मधुव्रत इनके निकट भी पहुँचते है, पर य मरजीवा नहीं है। जीवन मुक्त है, जीते जी उस पर मरते है, जीने के लिए मरते है उसमे जा बँधते है। वज्र कठोर रत्नो के वे पारखी नही है, व मरद के मार्मिक मधुव्रत है। चमक-दमक से कोई प्रयोजन नही है, पराग का प्रराग। उसी पर लोट-पोट होते रहते है।

जब केशवदास ऐसे कविपति और कवित्तरत्नाकर के सेनापति की, ब्रज की परिक्रमा मे बसे हुओ की, यह गति तो फिर अतर्वेदी के मतिराम और अवध के भिखारीदास की क्या कथा? ब्रजपरिसर के इष्टिकापुर के देव मे और चाहे जो विशेषता रही हो, पर भाषा मे अशेषता तो नही है। पद्माकर ने कवित्त-सवैये अधिक लिखे है। पर कवित्तो की पदमघटना और सवैयो की पदसपदा मे अन्तर है। कवित्तो मे सवैये की अपेक्षा अक्षरो का पटपर अधिक चौडा होता है। इसलिए कारीगरी दिखाने के लिए विस्तृत भूमि यही मिलती है। अलकार की छटा, वक्रोक्ति की भगिमा, चारुत्व का स्वरूपनिष्ठ और सघटनाश्रित रूप इनमे जैसा दिखाई देता है वैसा सवैयो मे नही। विचारिए क्या कारण है कि 'गगालहरी' मे एक भी सवैया नही है। क्या गगा की भक्ति मे पद्माकर सवैया लिखना कोई दोष मानते थे? ऐसी कोई बात नही प्रतीत होती। भक्ति की रचना 'प्रबोध पचासा' मे सवैये भी है। 'गगालहरी' के लिए कवित्त-बावनी ही क्यो लिखी, सवैये का सयोजन क्यो कही नही किया। इसी से कि व्याजस्तुति अलकार की छटा दिखाना ही प्रधान प्रयोजन था। यह दूसरी बात है लहरी के अवयव के अतिरिक्त और अलकार की छटा तथा अवयव की विद्युदघटा के व्यतिरिक्त उसमे कोई तरलता भी कही कही ध्वनित होती हो। वर्णो मे रग ही रग न हो, ध्वनि भी स्फुट या अस्फुट हो, पर स्पष्ट साध्य वह है नही। वसन्त, पावस आदि के वर्णनो मे वर्ण-वक्रोक्ति यदि निर्बधता की सीमा पार कर गई तो इसमे उनकी शैली की ही अतिमा है। सवैयो मे वैसा क्यो नही हुआ? उनका रवैया दूसरा है। वहाँ वर्णछटा सहज है, स्वयमागत है, प्रयत्नकृत नही है। भाव की शक्ति ही शब्दशक्ति बन गई है। इसी से भावस्फूर्ति, रूपज्योति, पदभूति-प्रपूर्ति सब की समजसता है। देखिए—

कोई हँसी-खेल है कि सब इसे खेल लेगे। बरसाने की गोपी से होली के खेल मे लेने के देने पडते है। चले थे रग बरसाने पर उन्ही पर बरस गई गोरी घटा। घनश्याम पर आज घटा ही घहर गई, तप्तकाचनवर्णाभा श्यामा ने आज श्याम को रस मे, रसराज मे डुबो दिया।

देखने मे सवैया सीधा सा और उसकी भगिमा टेढी-मेढी। इतने पर भी यदि पद्माकर का व्यक्तित्व स्फुट न हो तो कोई क्या करे? जो पद्माकर सागर मे जन्मे उन्होने रस-सागर तरगायित कर दिया। क्या कहे, सागर मे पद्माकर या पद्माकर मे सागर।

'शिव के मस्तक पर है गगा
इसके मस्तक पर है सागर।
फिर क्यों न पूज्य हो देवो का
औ लक्ष्मी का यह हो आगर॥
सागर में कमल नही खिलते
पर हुए यहाँ पर 'पद्माकर'।
सागर मे सीपी मिलती है,
पर इस सीपी में है सागर॥'

– कीर्ति

होली पर बहुतो ने लिखा है, पर इसका जोड हिन्दी में कही नही है। फाग का खेल खेलने में भिडे, लगे हुए, भीड-भडक्का करने वाले 'भीरे' होकर भी 'अभीर' है। क्या खेलेगे खेल ? इसी से तो उनमे से जो 'गोविन्द' है, गायो को चराते-खोजते है, सब मे बडे दक्ष है उन्हे पकड ले गई कौन, 'गोरी'। ये 'काले-कलूटे', वह गोरी चिट्टी। ये बलराम के भाई और वह अबला। गोरी ने ही, वृषभानुजा ने ही, चरा दिया आज गोविन्द को, 'हलधर के बीर' को। आए थे बडे तपाक मे फाग का खेल खेलने, पर सारा बलबूता न जाने कहाँ चला गया। बडी दुर्गत हुई। जैसे भी चाहा वैसे ही घसीट डाला मनमोहन को, मनमानी सजा दी गई नन्द के लाडले को। गोरी कोई फाग खेलने नही बैठी थी, ये ही सिर चढे चले आये थे, अबीर की झोली लिए। उन्ही की झोली उन्ही के सिर उलट दी गई। बीर बनकर आए थे, पर लेकर चले थे 'अबीर'। सारी वीरता भूल् गई। वीरता का बाना क्या था, ललाजी के पास कमर मे पटुका, जिसे कसके चले थे, वह भी छिन गया। आए थे वीर बन के और चले क्या होकर केशवजी। दूसरे के मुँह मे रोली-गुलाल लगाने का हौसला लेकर चले थे, सारा मुँह उन्ही का लाल सो गया, ललमुहे बन गए कलमुहे । अब रोने के सिवा रह क्या गया जब 'रोरी' मल दी गई। जिससे छेडछाड करने चले थे उसने सारी शेखी निकाल दी । स्वाभाविक है कि उसे इस सफलता पर हर्ष हो और उसकी अभिव्यक्ति नेत्रो की चचलता से हो। 'फाग के भीरे' अभीरो के बीच से किसी गोरी के गोविन्द को पकड कर सडक से, डगर से, राजडगर से घर के भीतर खींचते ले जाना कोई साधारण कार्य नही है, हँसी ठट्टा नही है, इस सिद्धि पर सारा शरीर नाच उठता है, उसके तो केवल नेत्र ही नचकर रह गए। कही गोविन्दजी को सफलता मिलती तो वे सर्वाङ्ग नृत्य, पूरा रास किए बिना न रहते, पर लज्जाभूषणा गोरी के नेत्र ही नाच सके । उधर हर्ष मे नेत्रो की चचलता ने देखा कि इन्हीं की झोली से अबीर उलटकर इन्ही की बनत बनाई गई है तो हँसी भी आ गई । बहुत सम्हाला गोरी ने, अट्टहास करना चाहिए था इस अवसर पर, पर दरवाजे पर भीड लगी है, स्वयम् वह नारी जाति है बेचारी इससे मुसकराकर ही रह गई। उसके लिए जो वाणी भीतर से उठी थी वह परा, पश्यती, मध्यमा मे बैखरी हो इसके पहले वात–वायु जठराग्नि को लिए दिए माथे मे जो पहुँच गई तो उसके वेग का प्रभाव पहले नेत्रो पर ही पडा, फिर होठो पर आया। अन्त मे मुसकराती हुई उसकी दृष्टि पीताबरधारी के पीताबर छिन जाने पहुँची तो वाणी कहाँ तक रुकती, मुँह खुल ही पडा । वृषभानुलली समझ कर चले थे लला होली खेलने। यह

ल के स्थान पर कही कही र का प्रयोग भी हुआ है।[९] इनकी भाषा में ड ढ का प्रयोग शब्द के मध्य तथा अन्त दोनो मे मिलता है।[१०] न्ह तथा म्ह का प्रयोग शब्दो के आदि तथा मध्य रूपो मे होता है।[११]

हकार के लोप के उदाहरण बहुत मिलते है। जैसे, कहा अथवा काह के लिए- 'का' का प्रयोग। विसर्ग का प्रयोग केवल कतिपय तत्सम शब्दो मे बहुत ही विरल रूप मे मिलता है। द्वित्व की प्रवृत्ति पद्माकर की भाषा में बहुत है जो वीर रस की प्रकृति के बहुत अनुकूल है। जैसे, छुटत-छुट्टत; टुटत-टुट्टत, दिक-दिक्क। प्राकृत शब्दो के प्रयोग मे सावर्ण्यीकरण की प्रवृत्ति इनकी भाषा मे बहुत मिलती है. जैसे- खग्ग, दग्ग, वग्ग, उदग्ग, धम्म, गज्जे शब्दो मे। उच्चारण की दृष्टि से इनकी भाषा की सबसे बडी विशेपता यह है कि खडी बोली के आकारान्त पुल्लिग शब्द (सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, भूत कृदन्त, कुछ परसर्ग, कभी कभी वर्तमान कृदन्त, ओकारान्त रूप मे उच्चरित होते है।[१] व्रजभाषा मे औकारान्त उच्चारण की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। पद्माकर ने अपनी भाषा को आधुनिक रूप देने के लिए इसे बहुत कम अपनाया है। इनकी भाषा मे प्रासगिक भाव तथा ध्वनि के अनुरूप अनुरणन ध्वनि का प्रयोग बहुत मिलता है जैसे-

घम घम घमाघम झम झमाझम धम धमाधम व्है ठई।
चम चम चमाचम तम तमातम, छम छमाछम छिति छई।

मात्रापूर्ति के लिए वर्णागम का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है, यथा-

रूसि रही घरी आधिक लौं तिय झारति अंग निहारति छाती।

यहाँ आधिक मे वर्णागम का प्रयोग दिखाई पडता है।

उनकी भापा मे कटु व्यजनो के स्थान पर यथास्थान कोमल वर्ण-मैत्री द्वारा भापा को कोमल तथा मधुर बनाने का प्रयत्न किया गया है[२]

---

९ होली - होरी। काली - कारी १० बडो, चढनो, जड, कोढ। ११ न्हानो. कन्हैया, तुम्हारो, साम्हू।

१ जई प्रबल वीर पमार अर्जुन सिंह हर्पित है हियो।
इमि साजि दल हिम्मतबहादुर नृपति वीर हला कियो।
अति कठिन भूमि मवास-ऊार अजैगढ सोहै किलो।
चहुँ ओर पर्वत बन सघन तहाँ आपु डीलनि नृप मिलो। (हिम्मतबहादुरविरुदावली)

२ साजहि सेज सिंगार तिय पिय मिलाप के काज। (जगद्विनोद) पद्माकर पंचामृत पृ १०५) सेज, सिंगार. तिय, पिय काज शब्दों में कटु वर्णों के स्थान पर कोमल ध्वनियाँ लाई गई हैं।

पद्माकर की काव्य-कृतियों में प्रयुक्त ब्रजी

कवि पद्माकर की ब्रजी मे निम्नलिखित ध्वनियो का प्रयोग मिलता है, जो हिन्दी की ध्वनियो से विशेष भिन्न नही है।

स्वर-ध्वनियाँ – पद्माकर की भाषा मे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एँ, ए, ओँ, ओ, ऐँ, ऐ (अ ए) औँ, औ (अ ओ) नामक स्वर निरनुनासिक तथा अनुनासिक दोनो रूपो मे पाये जाते है। ए, ओ नामक स्वर पाली से विकसित होकर प्राकृत तथा अपभ्रंश से होते हुए पुरानी हिन्दी में पहुँचे फिर पुरानी हिन्दी से ब्रजी मे आये।

व्यजन ध्वनियाँ – पद्माकर की भाषा मे निम्नाकित व्यजन-ध्वनियाँ प्रयुक्त हुई है –

कठ्य – क्, ख्, ग्, घ्, ङ।

तालव्य – च्, छ ज्, झ्, ञ्।

मूर्धन्य – ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, र्, र्ह्, ड़, ढ़।

दन्त्य – त्, थ्, द्, ध् न्, न्ह्, ल्, ल्ह्, स्।

ओठ्य – प्, फ्, व्, भ्, म्, म्ह्, ह्।

व्यजनो मे र्ह, न्ह्, ल्ह्, म्ह् आदि महाप्राण रूपो का प्रयोग हुआ है। इनकी ब्रजी मे ऋ का उच्चारण रि रूप में,[1] य का ज रूप मे,[2] व का प्राय ब रूप मे,[3] श, ष का उच्चारण प्राय स रूप मे,[4] कभी-कभी ष का उच्चारण ख रूप में, ण का उच्चारण कभी कभी न के रूप मे,[5] ञ का उच्चारण कभी कभी न के सदृश[6] तथा ङ का उच्चारण भी कभी कभी न[7] सदृश होता है। म का परिवर्तन कभी कभी वँ या बँ रूप मे हो जाता है।[8]

---

१ मौलिश्री का रूप मौलसिरी रूप में अंकित है। (पद्माकर पचामृत), पृष्ठ १३०

२ योग का जोग रूप में उच्चारण होता है। 'जोग को मोचन', (पद्माकर पचामृत)

३ वे का बे रूप में उच्चारण मिलता है। बेऊ आये द्वारे (पद्माकर पचामृत) पृ १९३

४ श ष का उच्चारण मे रूप में होता है। सैल तजि बैल (पद्माकर पचामृत) पृ १९३
तृमना बिसामिनि या बिलाई सी बाढी है (पद्माकर पचामृत) पृ २३१

५ रणधीर – रनधीर पृ १८ (पद्माकर पचामृत) (हिम्मतबहादुरविरुदावली)

६ कुञ्ज – कुज ७ तरङग – तरग पृ २४३ पद्माकर पचामृत ८ ग्राम – गाव

'कहै पद्माकर लवगनि की लोनी लता
लरजि गई ती फेरि लरजनि लागी री।'
'पात बिन कीन्हे ऐसी भाँति गन वेलिन के
परत न चीन्हे जे ये लरजत लज है।'

इनकी भाषा मे छन्दो के अनुरोध या अनुप्रास के लोभ से शब्दो के द्वित्व रूप अधिक मिलते है, पर शब्दो के तोडे-मरोडे रूप कम मिलते है। जैसे दोत (दावात), मजाखे (मजाक), गुपित (गप्त) ऐसे दो ही चार प्रयोग मिलते है। जहाँ कही ऐसे विकृत या तोडे मरोडे शब्द मिलते है वहाँ उसका कारण प्रान्तीय उच्चारण का अनुकरण अथवा कही-कही तुकान्त का अनुरोध है। किन्तु वे ऐसे ढग से रखे गये है कि उनका विकृत रूप भी मूल अर्थ को तुरत व्यक्त कर देता है।

पद्माकर के समय मे बुन्देलखण्ड मे ब्रजी काव्यभाषा के ही रूप मे रह गई थी। बोल-चाल मे बुन्देली का प्रयोग होने लगा था। वस्तुत ब्रजी के दक्षिणी रूप का विकास बुन्देली बोली के रूप मे हुआ। पद्माकर सागर मे पैदा हुए, बुन्देलखण्ड मे पाले पोसे गये तथा शिक्षा पायी। अत तैलग ब्राह्मण होते हुए भी उन्हे बुन्देली की मातृभाषा के रूप मे बोलने का अवसर मिला। बुन्देलीके प्रति सहज स्नेह तथा अपनी काव्य-भाषा को जन-जीवन के अधिक निकट ले आने के प्रयत्न के फलस्वरूप उनकी काव्य भाषा मे बुन्देली के सज्ञा शब्द, क्रियापद, मुहावरो तथा लोकोक्तियो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। उनकी भाषा मे बुन्देली के संज्ञा शब्द-जैसे , दोत, मजाखै, सपटो, छिक, पहुँचो, छूटो, नाका, आदि , क्रियापद, जैसे, बगरना, उलछारना, छिरकना, उकढना, छियना, हुती आदि प्रयुक्त हुए है। इनकी कविता मे बुन्देली के देशज शब्द जैसे, मडामड, अडाअड, झपट्टा, भडाभड, आदि भी प्रयुक्त हुए है किन्तु ये देशज शब्द ध्वनि अनुरणन मूलक होने के कारण सहज ही मे बोध गम्य हो जाते है।

इनके शब्द-प्रयोग मे यत्र-तत्र बुन्देली की अनुनासिकता भी मिलती है। जैसे, 'जाति चली ब्रजठाकुर पै ठमकाँ ठमकाँ ठुमकी ठकुराइन' यहा 'ठमकाँ ठमकाँ' मे अनुनासिकता बुन्देलीपन के कारण आई है। इनकी आरभिक कवित ओ मे बुन्देली के शब्द अधिक मिलते है पर धीरे-धीरे उनकी सख्या कम होती गई है। भाषा मे विशेष प्रकार का वाग्योग उसकी विशिष्ट शक्ति का द्योतक होता है। मार्मिकता लाने के लिए प्रत्येक समर्थ भाषा वाग्योगो का अधिक व्यवहार करती है। पद्माकर की भाषा मे विशेष प्रकार के वाग्योगो का प्रयोग हुआ है। प्रसगानुसार यहाँ पर केवल बुन्देली मुहावरो

पुरानी व्रजी में प्रथमा एकवचन का उ बहुवचन मे दृगनु, बननु आदि रूपो का निर्माण करता था। इससे भाषा की सफाई नष्ट हो जाती थी। अर्थ मे भ्रम उत्पन्न होता था। पद्माकर ने बहुवचन मे अन्त्य उ का त्याग कर एक ओर भाषा मे सफाई ला दी है तो दूसरी ओर उसे अधिक व्याकरण-सम्मत बना दिया है।[1]

प्राचीन व्रजी मे प्राकृत-अपभ्रंश की पुरानी परम्परा के अनुकरण के फलस्वरूप षष्ठी की 'हि' विभक्ति सामान्य कारक के रूप मे प्रयुक्त होती थी। यथा–रामहि, करहि, तिनहि। इससे भाषा में भ्रम उत्पन्न होता था। इसलिए आधुनिक व्रजी मे इसका परित्याग कर दिया गया। पद्माकर ने भी सामान्य कारक की 'हि' विभक्ति का बहुत कम प्रयोग कर के अपनी भाषा को सरल तथा आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार उन्होने इमि, जिमि, तिमि के स्थान पर यो, ज्यो, त्यो का प्रयोग कर के अपनी भाषा को सरल तथा चलता रूप दिया है।

पद्माकर का शब्द–भाण्डार बहुत विस्तृत है। शब्दो की विविधता से इनकी भाषा में एक और शक्ति का समावेश हुआ तो दूसरी ओर कृत्रिमता का निवारण तथा चलतापन का प्रवेश। इनकी भाषा का मेरुदण्ड व्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार तद्भव शब्द हैं। इनकी व्रजी मे एक ओर प्रचलित तत्सम शब्दो का प्रयोग है तो दूसरी ओर प्राकृत तथा अपभ्रंश के पुराने शब्द विशिष्ट भाव–वृत्ति के अनुरोध से रखे गये हैं। जैसे, अपभ्रंश भाषा के शब्द खग्ग, वग्ग, उदग्ग, धम्म, रित्ति, कित्ति, फब्बै, बिज्जुल आदि। प्राकृत भाषा के शब्द, जैसे, नाह, ईछन, दोह, लोयन, शोभिजै, कहियत, आवहिं, करहिं, रामहिं, आदि शब्द इनकी भाषा मे प्रयुक्त हुए है। पद्माकर ने अपनी व्रजी में सजीवता तथा चलतापन लाने के लिए अरबी–फारसी के उन शब्दो का प्रयोग काफी मात्रा में किया है जो उस समय की व्रजभाषा मे खप चुके थे और जिनका प्रयोग साधारण जनता जमकर करती थी। जैसे, तखत, बखत, बुलन्द, वजीर, जाहिर, जालिम, जरूर, नुकता, फरद, साहिबी, हद, नफा, दफा आदि। पद्माकर भाषा की प्रकृति से भली भाँति परिचित थे। इसलिए उन्होने विदेशी शब्दो को व्रजभाषा के व्याकरण से अनुशासित किया है। विदेशी सज्ञा शब्दो से उन्होने क्रियाएँ भी बनाई है पर उन्हे व्रजभाषा के व्याकरण के अनुसार निर्मित किया है। जैसे विदेशी सज्ञा शब्द लरजीदन से उन्होने 'लरजना' क्रिया पद का निर्माण किया है।

---

१ कूलन में केलिन में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकन है। जगद्विनोद पृ १५७

पद्माकर की भाषा मे प्रयुक्त बुन्देलखण्ड तथा अन्तर्वेदी, जन-जीवन के उपर्युक्त शब्द तथा वाग्योग पुकार-पुकार कर कह रहे है कि उन्होने भाषा की कृत्रिमता को दूर करने का वरावर ध्यान रखा है । कवि ठाकुर के समान ही इनकी व्रजी का स्वरूप विशुद्ध काव्य भाषा का स्वरूप नही है ।

पद्माकर की व्रजी मे शब्द के सामान्य रूपो के प्रयोग को देखने के पश्चात् अव उनके विशिष्ट रूपो पर विचार करना चाहिए ।

सज्ञा रूप – (पद्माकर की भाषा मे)

अकारान्त–भीर	उकारान्त–वेनु
आकारान्त–भैया, कन्हैया	ऊकारान्त–हितू
इकारान्त–सौति	ओकारान्त–तिनको
ईकारान्त–गोरी, रोरी	औकारान्त–माथौ

यहाँ सभी प्रकार के सज्ञा-रूप मिलते है । किन्तु ओकारान्त पुल्लिग रूपो की वहुलता है जो आधुनिक व्रजी की सर्वप्रमुख विशेषता है । पद्माकर मे खडी बोली की आकारान्त पुल्लिग सज्ञाओ, विशेषणो, सम्बन्ध वाचक सर्वनामो, परसर्गो, क्रियार्थक सज्ञाओ, भूतकालिक कृदन्तो तथा कभी वर्तमान कालिक कृदन्तो का रूप ओकारान्त हो जाता है ,

प्राचीन व्रजी मे अकारान्त सज्ञाओ को उकारान्त करने की प्रवृत्ति मिलती है किन्तु पद्माकर ने अपनी भाषा मे आधुनिकता लाने के लिए इसका प्रयोग वहुत कम किया है । जैसे बेन–वेनु । इसके अतिरिक्त प्राचीन व्रजी मे ओकारान्त की तुलना मे औकारान्त रूप अधिक मिलते है किन्तु पद्माकर ने अपनी भाषा मे आधुनिकता लाने के लिए औकारान्त सज्ञा शब्दो का प्रयोग बहुत कम किया है । कभी-कभी व्यजनान्त स्त्रीलिंग अकारान्त शब्दो का प्रयोग उन्होने इस प्रकार किया है कि उसके अन्त मे 'इ' जोड दिया जाता है । जैसे-सौत–सौति, आग–आगि ।

पद्माकर की ब्रजी में तृतीय प्राकृत भाषाओ की परम्परा के अनुसार दो लिंग तथा दो वचनो का प्रयोग मिलता है । उन्होने अकारान्त पुल्लिग शब्दो को ईकारान्त कर के स्त्रीलिग वनाया है । जैसे, सखा–सखी, लरिका–लरिकी । उन्होने उकारान्त या ऊकारान्त शब्दो मे 'नी' या 'नि' प्रत्यय जोडकर स्त्रीलिंग वनाया है, जैसे, साधु से साधुनी । इसी प्रकार ईकारान्त शब्दो मे ई के स्थान पर इनि प्रत्यय जोडने से स्त्रीलिंग बनाया है । जैसे, माली से मालिनी । अकारान्त व्यजनान्त सज्ञाओ के अन्त मे इन या इनी प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिंग बनाया गया है । जैसे, ग्वाल–ग्वालिनी, गरीब–गरीबिनि । ग्वालिनि का प्रयोग निम्नप्रकार से हुआ है –

और लोकोक्तियो के प्रयोग से उत्पन्न विशिष्ट वाग्योग का उदाहरण दिया जाता है। जैसे, बुन्देली मुहावरो का प्रयोग नीचे की पक्तियो मे देखिए।

'जहाँ जहाँ मैया तेरी धूरि उडि जाति गगा,
तहाँ तहाँ पापन की धूरि उडि जाति है।'

•

'एक दिना नहिं एक दिना कबहूँ फिरि वे दिन फेर फिरेगे।'

उपर्युक्त पक्तियो मे बुन्देली बोली के मुहावरो–'धूर उडना,' 'दिन फिरना' का बहुत ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। बुन्देली लोकोक्तियों का प्रयोग नीचे की पक्तियो मे देखिए —

(१) साँचहू ताको न होत भलो जो न मानत है कही चार जने की।
(२) जो विधि भाव मे लीक लिखी सो बढाई बढै न घटै न घटाई,

इनकी भाषा में कही-कही अन्तर्वेदी के सज्ञा शब्द तथा क्रियापद भी मिलते है

अन्तर्वेदी के सज्ञा शब्द– जैसे, आउ, चापट, करबी, घाल, खासे. खसबोह।

क्रियापद–जैसे, अभिरना, हिलगना, बुटना, हाँगना आदि इनकी म प्रयुक्त हुए है। इनकी कविता मे अवधी के शब्दो का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है। पद्माकर के समय तक आते-आते तुलसी के 'मानस' के प्रचार के कारण अवधी भाषा पूर्व से पश्चिम तक ऐसी गूँजी कि ब्रजभाषा की कविता मे भी अवधी के शब्दोका मनमाना व्यवहार होने लगा। अवधी के 'कस' तथा 'साधा' शब्दोका सटीक प्रयोग पदमाकर की निम्न पक्तियो मे देखिए–

'रामहि राम कहै रसना, कस ना तु भजै रस नाम सहे को।'

× × ×

सावनी तीज सुहावनी को सजि सूहे दुकूल सबै सुख साधा।

इसी प्रकार क्रियापदो मे पूर्वी अवधी के भयउ, बयउ* रूप कही-कही मिलते है।

---

* तहँ पद्माकर' कवि बरन इमि, तमकि ताउ दुहुँ दल भयउ।
नृप मनि अनूपगिरि भूप जब, करत खग्ग रन जम बयउ।
हिम्मतबहादुर विरुदावली पृ ३१

सयुक्त क्रिया की दृष्टि से अन्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ के समान ब्रजी मे सयोगात्मक कालो की सख्या अत्यन्त सीमित है। अत क्रिया के अनेक अर्थो को व्यक्त करने के लिए ब्रजी मे दो तथा कभी कभी तीन क्रियाओ का एक साथ प्रयोग मिलता है। पद्माकर की ब्रजी मे इस प्रकार की सयुक्त क्रियाओ का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे पाया जाना है। जैसे -

दो प्रधान क्रियाओ का सयोग-दैबो करो।

तीन प्रधान क्रियाओं का संयोग-दुहि जैबो करो।[१]

चार प्रधान क्रियाओ का सयोग-कह्यो चहति रहि जाति (ज वि ११६)

दो क्रियाओ तथा एक सहायक क्रिया का सयोग-

छाकिबो करति है। **बाकिबो करति है।**[२]

पूर्वकालिक कृदन्त के साथ क्रिया का सयोग, जैसे- लै चली, हरषि उठति पृ. १४६ ज वि.

वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ सयोग, जैसे -खेलत फिरै।

पद्माकर अकारान्त तथा आकारान्त धातुओ मे इ प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक क्रिया बनाते है। जैसे, चल-चलि, कर-करि, धा-धाइ, निम्न पक्ति मे इस प्रकार की क्रिया की स्वाभाविक और सहज योजना हुई है,-

नैन नचाइ कही मुसुकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।

कभी-कभी वे एकारान्त धातुओ को ऐकारान्त में परिवर्तन करके पूर्वकालिक क्रिया बनाते है, जैसे, दे-दै, ले-लै। इनकी भाषा में उकारान्त धातुओ मे साधारणतया उ के स्थान पर वै हो जाता है। जैसे, छु-छुवै। साथ ही इनकी भाषा मे सहायक क्रिया 'हो' का पूर्वकालिक कृदन्त रूप साधारणतया ह्वै हो जाता है।

पद्माकर की भाषा मे आ अथवा व या ब प्रत्यय जोड कर प्रेरणार्थक क्रिया बनाई गई है। जैसे, खवाइबो, जियावतो आदि का प्रयोग इसका प्रमाण है। निम्न पक्ति मे इस प्रयोग को देखा जा सकता है-

को जियावतो आजु लौं, बाढे विरह बलाय।

पद्माकर की भाषा मे क्रियार्थक सज्ञा के दो रूप मिलते है। एक 'व' या 'बो' प्रत्ययान्त वाले और दूसरे 'न' प्रत्ययान्तवाले। पूर्वकालिक क्रियाके अन्त

---

१. पद्माकर पचामृत पृ ७८

२ पद्माकर पचामृत पृ १०६

'भाजन सो चाहत, गँवार ग्वालिनि के कछू, १'

पद्माकर ने प्राणहीन वस्तुओ को भी प्रसगानुसार पुल्लिग, स्त्रीलिग बनानेका प्रयत्न किया है । पद्माकर की ब्रजी मे अकारान्त, आकारान्त, ईकारान्त, ऊकारात सज्ञाओ मे बहुवचन के लिए 'न' प्रत्यय जोडा गया है । जैसे, बाग–बागन, कूल–कूलन, घोडा–घोडान, रोटी–रोटिन, बहू–बहून । पर जहाँ विभक्ति का लोप है वहाँ बहुवचन के लिए नि प्रत्यय रखा गया है । जैसे पुलक–पुलकनि । कभी-कभी अन्त स्वर को अनुनासिक मे परिवर्तित करके बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति पद्माकर मे दिखाई पडती है । जैसे आँख–अँखियाँ रोटी-रोटीं । बहुवचन बनाने के लिए व्यजनान्त स्त्रीलिग सज्ञाओ मे कभी-कभी 'एँ' जोडा जाता है । यथा लट–लटैं ।

पद्माकर की आरभिक कविताओ में परसर्गो के पुराने रूप प्रयुक्त हुए है । जैसे, सौं, कौं, तैं, मैं । पर आगे चलकर उन्होने आधुनिक ब्रजी के परसर्गो का प्रयोग किया है । जैसे, तृतीया मे सौं के स्थानपर सो, द्वितीया एव चतुर्थी मे कौं के स्थानपर को या कों, पचमी मे तैं के स्थानपर ते और सप्तमी मे 'मैं' के स्थान पर मे का प्रयोग मिलता है ।

सर्वनामो के विविध रूपो मे पद्माकर ने उत्तम पुरुष एक वचन मे–'मे', 'मै', 'हौं', 'हो', 'हूँ' तथा बहुवचन मे 'हम' का प्रयोग किया है । इनके विकारी रूप, एक वचन मे मो, मोहि, मेरो, मै को मेरी, मेरे तथा बहुवचन मे हमे, हमारे, हमारो हमारौ, हमारी, हमरो आदि का प्रयोग पद्माकर ने किया है । इसी प्रकार मध्यम पुरुष मे तूँ, तू, तुम, तैं, ते, तो के विकारी रूप तेरो, तेरौ, तुम्हारी, तुमारी, तेरे, तुम्हारे, तिहारे भी मिलते है । सर्वनामो के प्रयोग मे तिहारे, तिहारो, तिहारी, तोय आदि बुन्देली शब्द भी प्रयुक्त हुए है । सर्वनामो के पुराने रूपो– याहिको, काहिको, जाहिको, ताहिको, मे से हि निकाल कर याको, काको, जाको, ताको रूप बनाकर इन्होने भाषा मे सफाई तथा चलतापन लाने का प्रयत्न किया है ।

पद्माकर की भाषा मे साधारण क्रिया के तीन रूप मिलते है । एक तो 'नो' से अन्त होने वाला रूप मिलता है, जैसे, आवनो, जावनो । दूसरा 'न' से अन्त होने वाला– जैसे, आवन, जावन और तीसरा रूप 'बो' से अन्त होने वाला मिलता है । जैसे आयबो, जायबो, जाबो, कीबो, लीबो, दीबो आदि । पद्माकर की ब्रजी में क्रिया पुरुष, लिग, वचन के अनुसार बदल जाती है ।

---

१ पद्माकर पचामृत पृ १९८

मे 'बो' प्रत्यय लगाकर प्रथम प्रकार की क्रियार्थक सज्ञा बनाई जाती है– यथा देखि–देखिबो । निम्न पक्ति मे इसका प्रयोग स्वाभाविक है–

आज की छबि देखि भटू, अब देखिबो को न रह्यो कछु बाका ।

धातु मे 'न' प्रत्यय लगाकर उन्होने द्वितीय प्रकार की कियार्थक सज्ञाये बनाई है जैसे–

आई खेलन फाग वह तुम ही सो चित चाहि ।

पद्माकर ने वर्तमानकालिक क्रियाओ की रचना स्वरान्त धातुओ मे त प्रत्यय जोडकर बनायी है, जैसे, जा–जात, दे–देत । निम्न पक्ति मे इसका प्रयोग देखिये–

मन मौज देत महेस है ।

व्यजनान्त धातुओ मे पुल्लिग में 'अन्' या 'तु' प्रत्यय, स्त्रीलिंग मे 'ति' प्रत्यय जोडते है [1] और कभी-कभी इसके उपरान्त 'होना' सहायक क्रिया का रूप जोडते है, जैसे–

फहरत सुजस निसान, सान जय दुदुभि वज्जिय

यत्र-तत्र 'अतु'प्रत्यय वाले रूप भी मिलते है । जैसे, गावतु, बजावतु । वर्तमानकाल मे लघ्वन्त रूपो के अतिरिक्त दीर्घान्त रूप भी मिलते है । आवतो, जातो, भावतो आदि रूप इसी प्रकार के है ।

वर्तमान निश्चयार्थ मे पद्माकर की ब्रजी मे धातु मे निम्नांकित प्रत्यय लगाये जाते है –

(१) प्रथम पुरुष एक वचन में औ (चलौ) बहुवचन मे ऐ (चलै)
(२) मध्यम पुरुष एक वचन मे ऐ (चलै) बहुवचन मे औ (चलौ)
(३) अन्य पुरुष एक वचन मे ऐ (चलै) बहुवचन मे ऐ (चलै)

यथा– विरदावली कविवर पढै

पद्माकर की भाषा मे वर्तमान काल के बहुवचन क हिं प्रत्ययान्त वाले पुराने रूप भी मिलते है–

जुर्द्धहिं सुभट त्रिसुद्ध सुद्ध अति उद्धत कुर्द्धहि

किन्तु इन पुराने रूपो का प्रयोग बहुत कम हुआ है । इनकी जगह पद्माकर करै, जायँ, आवै आदि नवीन रूपो का प्रयोग कर के अपनी भाषा

---

१ मग में धरति न पाइ ।

१–इनकी भाषा मे स्वर प्रतिस्थापन की प्रक्रिया से सम्बन्ध तत्त्व प्रगट होता है जैसे, गो-गे, भो–भे, भये–भई ।

२–कही-कही व्यजन–प्रतिस्थापन मे सम्बध तत्त्व प्रगट होता है । जैसे, जा–गयो

३–कभी-कभी कुछ ध्वनियो को घटा कर सम्बध तत्त्व प्रगट किया जाता है जैसे त्रिशूल–शूल,

४–कभी-कभी मूल शब्द या प्रकृति के कुछ उपसर्ग जोडकर सम्बध तत्त्व प्रकट किया जाता है । जैसे विहार, अनुताप, परिताप

'सुकविन सहित विवेक' । 'सुनाम लेत भव बन्ध' ।

५–इनकी भाषा मे सम्बन्ध तत्त्व कभी कभी मूल शब्द के बीच मे आया है । जैसे, प्रेरणार्थक क्रियाओ–खवाइबो, जियावतो मे ।

६–इनकी भाषा मे सबध तत्त्व कभी कभी मूल शब्द के अन्त मे आता है । जैसे कूल, कूलन, केलि, केलिन, बाग, बागन ।

७–शब्दो की आवृत्ति से भी इन्होने रूपग्राम बनाने का प्रय न किया है । जैसे, कडाकड, सडासड, धडाधड, गडागड ।

वाक्य रचना–पद्माकर के युग मे ब्रजभाषा के व्याकरण के अभाव तथा अनपढ एव अशिक्षित लोगो द्वारा कवित्त तथा सवैया रचे जाने के कारण ब्रजभाषा की वाक्य रचना पद्य मे और अधिक अव्यवस्थित हो जाती थी । शब्दालकार की धुन मे कवियो का ध्यान भाषा के सौष्ठव एव सफाई की ओर नही जाता था । इससे च्युत सस्कृति तथा ग्राम्यत्व दोष आ जाता था । पद्यात्मक रचना मे छन्द की आवश्यकता के कारण कविगण शब्दो के साधारण क्रम मे प्राय उलट फर कर देते थे । इससे कविता मे दूरान्वय दोष उत्पन्न हो जाता था, भाषा का प्रवाह भग हो जाता था । किन्तु पद्माकर की भाषा मे शब्दो की व्यवस्था ठीक होने के कारण उसका स्फीत प्रवाह निरन्तर बना रहता है तथा भाषा का अपेक्षित सामर्थ्य सुरक्षित रहता है ।

अर्थ-परिवर्तन –पद्माकर मुख्यत अभिधा के कवि है । अत इनकी भाषा मे अर्थ-परिवर्तन के उदाहरण, मुहावरो, लोकोक्तियो तथा लक्षण के अन्य प्रयोगो मे ही मिलते है, पद्माभरण के रूपक उदाहरणो मे प्रयोजनवती लक्षणा, इनके युद्धवर्णन के रूपको मे गौणी सारोपा, रूपकातिशयोक्ति के रूप-वर्णनो मे गौणी साध्यवसाना, हेतु अलकार के स्थलोपर शुद्धा सारोपा या शुद्धा साध्यवसाना, गगालहरी मे रूपमाला अलकार के प्रयोगो मे शुद्धा साध्यवसाना, निदर्शना के प्रयोगो मे शुद्धा लक्षणा, तथा मुहावरो एव लोकोक्तियो

'ऐसी भई सुनि कान्ह कथा
जु बिलोकिहिगी तब होयगी कैसी ।'
'बूझिहैं चवैया तब कैहो कहा, दैया !
इत पारिगो को मैया! मेरी सेज पै कन्हैया को ।'

प्राकृत 'इज्ज' तथा 'ज्ज' प्रत्ययान्त वाले रूप तथा अवधी के ब प्रत्ययान्त वाले रूप भी भविष्यत् काल की रचना में कहीं-कहीं मिलते हैं । यथा-

बल विद्या रूपादि कौ कीजै कहा गुमान (पद्माकर पचामृत पृ १८४)

पद्माकर की ब्रजी की रूप-रचना समझने के लिए उसमे प्रयुक्त रूपग्रामो को भी सक्षेप मे देख लेना चाहिए । पद्माकरकी भाषा मे सबसे अधिक सख्या अर्थदर्शी रूपग्रामो की दिखाई पडती है । इसके भीतर सज्ञा, धातु, सर्वनाम, विशेषण, अव्ययो का प्रयोग हुआ है । सख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान सम्बन्धदर्शी रूपग्रामो का है । पद्माकर ने सम्बन्धदर्शी रूपग्रामो के भीतर परसर्गो तथा प्रत्ययो का प्रयोग किया है । भाषा-रचना के आधार की दृष्टि से पद्माकर की ब्रजी मे चार प्रकार के रूपग्राम मिलते है — मुक्त रूपग्राम, बद्ध रूपग्राम, बद्धमुक्त रूपग्राम, रिक्त रूपग्राम । इनकी भाषा में मुक्त रूपग्राम के भीतर सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्ययो का प्रयोग दिखाई पडता है । बद्धरूपग्राम के भीतर प्रत्ययो तथा उपसर्गो का प्रयोग हुआ है । बद्धमुक्त रूपग्राम के भीतर इन्होने परसर्गो का प्रयोग किया है जो सर्वनाम के साथ आबद्ध है किन्तु सज्ञा के साथ मुक्त है । रिक्त रूपग्राम मे एक रूपग्राम की दो बार आवृत्ती होती है पर अर्थ तत्त्व एक ही रहता है । जैसे, कडाकट, जडाजड, धडाधड ।

इनकी भाषा मे अन्य कवियो की तुलना मे रिक्त रूपग्रामो का सर्वाधिक तथा सुन्दर प्रयोग हुआ है जिससे अर्थ मे स्पष्टता तथा प्रभविष्णुता आ गई है । जैसे- नीचे के उदाहरण से देखिए —

सडो की सडासड् भुसुडो का भडाभडी ।
मस्तो की मड़ामड जडाजड् जजीरन की ।
पत्रो की पडापड् गरज्जो को गडागडी ।
धक्को का धड़ाधड अडग को अड़ाअडी में ।
व्है रहे कड़ाकड़् सुदन्तो की कड़ाकडी ।

पद्माकर की ब्रजी मे निम्नाकित प्रकार की रूपग्रामिक प्रक्रियायें दिखाई पडती है ।

विदेशी शब्दो का प्रयोग करके, छन्दो के अनुरोध या अनुप्रास के लोभ से शब्दो को तोडने मरोडने वाली प्रवृत्ति का त्याग करके इन्होने भाषा की कृत्रिमता को दूर करने का प्रयत्न किया है ।

८— इनकी भाषा मे चढाव-उतार से इतना अधिक प्रवाह है, शब्द योजना इतनी सधी है, पदो मे इतना लोच तथा लालित्य है कि इनके छन्दो को पढते समय शब्दावली पाठक के मुँह से अपने आप झरती चली जाती है।

९— अपनी काव्य-भाषा मे रोचकता लाने के लिए इन्होने विविध साधनो को अपनाया है । जैसे, एक ही शब्द को दूर तक दुहराना, झङ्कार उत्पन्न करनेवाले शब्दो की योजना, कोमल कान्त पदावली का प्रयोग, चमत्कार उत्पन्न करने वाले वक्रोक्ति मूलक अलकारो का अधिक प्रयोग तथा, अनुप्रासिक वर्णमैत्री का प्रयोग।

१०— हिन्दी की परम्परागत प्रकृति की रक्षा के लिए इन्होने अपनी व्रजी मे विविध प्रकार की भाषाओ का पुट भरा है । हिन्दी मे भाषा की सजावट के लिए सस्कृत तथा प्राकृत दोनो भाषाओ के शब्द रखे जाते थे। पद्माकर ने भी इस परम्परा की रक्षा का ध्यान रखा है । पुरानी भाषा का पुट दिये विना भाषा मे जीवनी शक्ति तथा सस्कृति नही आती। इसे पद्माकर अच्छी तरह जानते थे। इसलिए उन्होने अपनी काव्य भाषा मे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श आदि सभी पुरानी भाषाओ का पुट दिया है ।

साराश रूप मे यह कहा जा सकता है कि व्रजभाषा की सघनता की जैसी विशेषता बिहारी मे है, वाग्योग का जैसा चमत्कार घनानन्द मे है, भाषा की जैसी स्वच्छता ठाकुर मे है, व्रजी का जैसा स्फीत प्रवाह मतिराम मे है, भाषा की जैसी सरलता बोधा मे है, वैसी सम्मिलित विशेषता पद्माकर मे है। समर्थ, स्वच्छ, प्रौढ, प्राञ्जल, सरल स्फीत व्रज भाषा लिखने वाले रीतिकालीन कवियो मे भाषा की दृष्टि से पद्माकर का स्थान प्रथम श्रेणी के कवियो में माना जायगा ।

के प्रयोगो में निरूढा लक्षणा के स्थलो पर विविध प्रकार के अर्थपरिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से पद्माकर की भाषा के विषय मे निम्नाकित निष्कर्ष निकलते है।

१–पद्माकर जैसा भाषा के प्रति सर्वस्व समर्पण हिन्दी के किसी अन्य कवि मे नही है।

२–ब्रजभाषा क्षेत्र के सरल शब्दो को रखकर प्रसगबोधार्थ अनुरणन मूलक ध्वनियो का प्रयोग करके अपनी भाषा मे सर्वाधिक व्याप्त ठेठ शब्दो को स्थान देकर, प्राकृत तथा अपभ्रश काल से आगत 'हि,' 'हुँ' जैसी कारक की सामान्य विभक्तियो का न्यूनातिन्यून प्रयोग करके, अर्थ मे भ्रम उत्पन्न करने वाली 'उ','हि' जैसी विभक्तियो का परित्याग करके, प्राचीन ब्रजी के सज्ञा के औकारान्त, पुराने परसर्गो, सर्वनाम के प्राचीन रूपो, क्रिया के पुराने रूपो का त्याग करके, ब्रजी के आधुनिक रूपो का सर्वाधिक मात्रा मे प्रयोग करके, बुन्देली जनजीवन मे अतिशय प्रचलित बोलचाल के, शब्दो को अपना करके, शब्दो को तोडने मरोडने या विकृत करने वाली पद्धति का न्यूनातिन्यून प्रयोग करके, कविता की सर्वाधिक सरल शैली अभिधा का सर्वाधिक मात्रा मे प्रयोग करके पद्माकर ने अपनी काव्य भाषा को सरल बनाने का प्रयत्न किया है।

३– उन्होने अपनी काव्य-भाषा मे सफाई लाने के लिए अनावश्यक रूपो को त्याग दिया है, तथा शब्दो की व्यवस्था ठीक रखी है।

४– तत्सम, तद्भव, देशज, जनजीवन मे प्रचलित बोलचाल के शब्दो तथा जनता में अतिशय प्रचलित विदेशी शब्दो का प्रयोग करके उन्होने भाषा सम्बन्धी अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

५– उन्होने विविध प्रसगो के अनुकूल विविध प्रकार की भाषा गढ कर ब्रजी के ऊपर अपने अनन्य अधिकार को प्रमाणित किया है।

६– ब्रजभाषा की निजी प्रकृति–उसकी मधुरता तथा कोमलता की रक्षा के लिए उन्होने नाना प्रकार के साधनो को अपनाया है। जैसे–, भविष्यत् काल की रचना मे 'है' प्रत्यय का अधिक प्रयोग करके, कोमल व्यजनो का सर्वाधिक प्रयोग करके, विदेशी शब्दो को ब्रजभाषा के व्याकरण से अनुशासित करके, तद्भव शब्दो का सर्वाधिक मात्रा में प्रयोग करके, ब्रजभाषा की प्रकृति को व्यक्त करनेवाले ओकारान्त शब्दो का सर्वाधिक प्रयोग करके उन्होने ब्रजभाषा की प्रकृति की रक्षा की है।

७– बुन्देली, अन्तर्वेदी, अवधी, प्राकृत, अपभ्रश, जनता मे व्याप्त

बाढत बिथा की कथा काहू सौं कछू ना कही
लचकि लता लौ गई लाज ही की लेज पर ।
बीरी परी बिथरि कपोल पर पीरी परी
धीरी परि धाय गिरी सीरी परी सेजपर ।।

इसमे तुषार मृदित कमलिनी मृणाल कोमला बाला की बदन वल्लारी प्रिय को नही पाने के कारण जो उदास और दु खितावस्था मे पडी है, उसका कैसी सुन्दर भाषा मे चित्र खीचा है । अर्थ स्पष्ट है और यद्यपि उसमे चमत्कार प्राचुर्य है पर इस स्थल मे केवल भाषा की सरलता और मनमोहकता दिखाना अभिप्रेत है, अत अर्थ की गवेषणा नही करेगे ।

सरलतम भाषा मे कैसी मनोहर कविता होसकती है, इसके उदाहरण-स्वरूप और भी छन्द उपस्थित किये जाते है–

हौं, अलि आज बडे तरके भरिकै
घट गौरस कौ पग धारी,
त्यो कब को घौ खर्यौ री हुतौ
'पद्माकर' मो हित मोहिनीवारौ ।
सांकरी खोरि में कॉकरी की
करि चोट चलौ फिर लौटि निहारौ
ता खिन ते इन आंखिन तें
न कढ्यो वह माखन चाखनहारौ ।।

कितनी सरल भाषा मे यह आभीरबाला अपनी सुहृत् सखी से माखन चाखनहार के प्रेम का वर्णन कर रही है । जिस प्रकार की मनोरम भाषा का प्रयोग आभीरी के मधु मधुर मुख से होना चाहिए था, उसका पूर्ण निर्वाह किया है । यहा पाण्डित्य दिखाना अभिप्रेत नही है, न वर्णन की चकाचौध से चित्त आकर्षित करने की योजना । एकान्त मे रहस्य सलाप करते हुए जैसी स्वाभाविक भाषा का प्रयोग प्राय ललनाजन करती है, उसी का प्रयोग किया है । कितना सुन्दर पदविन्यास है, कैसा स्वाभाविक लालित्य है, कितनी मृदुता और मनोरमता है, सहृदय पाठक इस पर विचार करै, इस प्रेमगर्विता की भाषा से पद्माकर को अपनी भाषा पर गर्व होसकता है । ऐसे छन्द ढूढने पर भी नही मिलते, जिनमे हम केवल भाषा का चमत्कार दिखा-सके । भाषा के साथ भाव इतना दृढ सम्बद्ध है कि भाषाप्रधान छन्दो का प्राय अभाव-सा है, तथापि पद्माकर की भाषा के सौन्दर्य प्रदर्शन के लिए हम कुछ और छन्द रखते है ।

पद्माकर की भाषा

पद्माकर की भाषा सुमधुर व्रजभाषा है, जो इन महाकवि के काल में अत्यन्त उन्नत और प्रौढावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। परन्तु इनकी भाषा में बहुत से राजस्थानी, भाषा आदि के भी शब्द आगये है, जिनको एक प्रकार से व्रजभाषा के अन्तर्गत ही मान सकते है और एक प्रकार से नहीं। परन्तु यहा पर भाषा की शुष्क विवेचना करना कि इनकी किस काल की व्रजभाषा है, किस प्रान्त की भाषा का इनकी भाषा पर प्रभाव पडा है, और कहाँ २ की बोलियो के शब्दो का इन्होने प्रयोग किया है यह हमारा उद्देश्य नही। यहाँ पर हमारा दृष्टिकोण दूसरा है। बिना भाषा के केवल ध्वनि से यद्यपि राग निकाला जासकता है और सगीत भी नियमबद्ध किया जासकता है, जिससे हृदय के एकान्तमय गम्भीर प्रदेश में सुप्त ललित भावनाएँ जीवित और जागृत् होसकती है, परन्तु भाषा के विना काव्य का निर्माण नही होसकता। जब वसन्त के समय कोकिल के पञ्चम स्वर से प्रिय जनो की स्मृति हो जाती है तब कोकिला के मधुर स्वर मे काव्य सहोदर ध्वनि की अनुभूति हो सकती है परन्तु वह काव्य नही है। कविता के लिए भाषा की सर्वप्रथम आवश्यकता है, उसकी समीचीनता से उत्तम काव्य मे सहायता मिलती है और भाषा के दोष से काव्य की उद्देश्य प्राप्ति मे विघ्न उपस्थित होते है। अत यद्यपि काव्य में रस आत्मा है और शब्द और अर्थ में अर्थप्रधान है, तथापि भाषा का महत्त्व भी कुछ कम नही, इसकी विशेष विस्तार से विवेचना करने की आवश्यकता नही।

हमे पद्माकर की कविता मे यह देखना है कि प्रसाद गुण है या नही, पदलालित्य कहा तक पाया जाता है। प्राञ्जलता और मधुरता लाने में ये कवि कहाँ तक समर्थ हुए है और इनकी भाषा साधारण विशिष्ट कोटि की है, किंवा अनन्य साधारण गुणगुम्फिता है।

" खेल को बहानो कै सहेलिन के सग चलि
आई केलि-मन्दिर लौं सुन्दर मजेज पर
कहै 'पद्माकर' तहां न पिय पायो तिय
त्योंही तन तें रही तमीपति के तेज पर ॥

मरीचिका मे पडकर सरस रस का पान करने मे अक्षम हो जाते है। व्रजभाषा की स्वाभाविक मधुरता के कारण और उसकी क्रिया के रूप मे मृदुता के कारण इन पदो मे जो मनोरमता आगई है, वह अन्यथा सम्भव नही थी। आधुनिक खडी बोली मे यद्यपि 'सतराने' का प्रयोग नही होता है तथापि यहाँ केवल नाद-साम्य के प्रयोजन को रखते हुए यदि इस पंक्ति का रुपान्तर कर दे तो इसका पाठ इस प्रकार होगा, 'सतराया करो, बतलाया करो, इतराया करो, करो चाहो वही'। पाठको ने देखा होगा कि सतरैबो करो आदि मे जो मधुरता है वह इसमे नही आती है। अतः बहुतसी मधुरता का श्रेय भाषा को है और बहुतसा कवि के भाषा पर आधिपत्य का। इसमें कोई सन्देह नही रह जाता कि एक प्रकार की क्रिया के प्रयोग से और 'करो' की पुन पुन आवृत्ति से मनोहरता और रमणीयता को वृद्धि होती है, जिसके सहृदयो के श्रवण प्रमाण है। विचार करना यहाँ पर यह है कि क्या केवल इसे श्रवणमधुर बनाने के लिए ही पुनरावृत्ति की गई है?

यहा पर शब्दो की पुनरावृत्ति की गई है। शब्दो के लिए नही अर्थ के लिए। उसी शब्द को दुहराया गया है, जिसके भाव को खचित करने की आवश्यकता है। जब हम अपने किसी सुहृद् को देख उसके समागम से हृष्ट हो उसका स्वागत करते हुए 'आइए! आइए!! आइए!!! की आवाज़ लगाते है तब क्या हमारा आशय होता है शब्द की पुनरावृत्ति से श्रवण मधुरता उत्पन्न करना? कथमपि नही। हमारा अभिप्राय रहता है उसके आगमन सबधी औत्सुक्य, हर्ष और स्वागत के भावो को प्रगट करना और जब यह भाव विशेष रूप से हृदय उदधि से उमडते है तो बलात् मुख से भी ऐसे शब्दो को निकालते है जो हृदय के घनीभूत भावो का परिचय दे सके। प्रस्तुत छन्द मे इसी सिद्धान्त पर जो बारम्बार 'सतरैबो करो' आदि की पुनरावृत्ति की गई है वह इस भाव को विशेप रूप मे प्रकट करने के लिए कि तुम चाहे जो किया करो उसमे हमे कुछ नही कहना, यदि केवल एक विपय में हमारा आग्रह मानलो। अन्य कामो मे जो प्रत्येक विपय मे पूर्ण स्वच्छन्दता दी गई है, उसी पर विशेप जोर देने के लिए बारम्बार स्वतन्त्रता देने के शब्दो का प्रयोग किया है और थोडे से काल के लिए नही, प्रत्युत सर्वदा के लिए यह स्वाच्छन्दय दिया जा रहा है। एक प्रकार से यह परतन्त्रता के रज्जुजाल को जो बारम्बार काटकर पूर्ण स्वाधीनता का दान दिया जा रहा है, वही इस कवित्त की जान है, क्योकि स्वाधीनता का पूर्ण भाव ही दिखाना इसका अभिप्राय है। नायिका को स्वामी की ओर से स्वेच्छाचारिता का यह जो Concession दिया जा रहा है इसी को खचित करने के लिए पुन. पुन यह

"अब व्है है कहा अरविन्द सो आनन इन्दु के हाथ हवाले पर्‌यो ।
'पद्माकर' भावै न भावै बनै, जिय ऐसे कछूक कसाले पर्‌यो ।।
इक मीन बिचारो बिंध्यो बनसी पुनि जाल के जाइ दुमाले पर्‌यो ।
मन तो मनमोहन के संग गो तन लाज मनोज के पाले पर्‌यो ।।"

इस छन्द में भाव इतना सुन्दर है और इतनी मनोमोहकता से रक्खा गया है कि एक प्रकार से इसे भाषा के उदाहरण मे रखना भी अन्याय है परन्तु भाव पर यदि दृष्टि न भी दे, जो कि एक प्रकार से असम्भव है, तो केवल भाषा पर ही चित्त मुग्ध हो सर्वस्व निछावर करने को उद्यत होजाता है । 'अरविन्द सो आनन' इन्दु के हाथ पड गया है। 'मन' मोहन के सग गया। उचित ही है वह मनमोहन है । मध्या नायिका है, अत लाज और मनोज के द्वैत शासन मे तन का पडना भी स्वाभाविक है। बेचारी मीन की सी दशा है । बसी में विंधी और फिर जाल मे पडी । कैसी सुन्दर उपमा है ? कितनी हृदयहारिणी ! अस्तु, यदि अर्थ के चमत्कार पर दृष्टिपात करना प्रारम्भ किया जायगा तो वापस लौटने की चित्तवृत्ति ही न होगी । पदावली पर दृष्टिक्षेप करना उचित है । 'अरविन्द सो आनन' 'हाथ हवाले पर्‌यो' 'कछूक कसाले पर्‌यो ' 'मन तो मनमोहन' 'लाज मनोज के पाले पर्‌यो' प्राय आदि से लेकर अन्त तक कैसे हृदयग्राही मार्मिक और मधुर पदो की योजना है जो बरबस मन को हर लेते है । कितनी प्राञ्जलता है, कितनी कोमल कान्त पदावली है ? इस विषय मे सहृदय ही प्रमाण हैं। परन्तु पद्माकर की भाषा के जहा अनेक भक्त है वहा दोषराशि देखने वाले भी है । प्राय आक्षेप किया जाता है कि पद्माकर ने भाषा को भाव से अधिक प्रधानता देदी है । परन्तु वास्तव मे ऐसा है नही । अर्थ का चमत्कार प्रत्येक स्थान मे भाषा की मनोरमता से कही अधिक है अत एकाध छन्द के अर्थ की विशिष्टता पर पुन प्रकाश डालना पडेगा । यहा पर हम ऐसे एकाध छन्द उदाहरणस्वरूप रक्खेगे, जहा भाषा की मधुरता मधुरता कोटि की है और विचार करेगे कि क्या अनुप्रास प्रसाद गुण आदि ने भाव को भुलादिया गया है ?

'सतरैबो करौ बतरैबो करौ इतरैबो करौ करौ जोई चहौ ।
'पद्माकर' आनद दीबो करौ रस लीबो करौ सुख सो उमहौ ।।
कछू अतर राखौ न राखौ चहौ पर या विनती इक मेरी गहौ ।
अब ज्यो हिय मे नित बैठी रहौ त्यो दया करिकै ढिग बैठी रहौ ।।

परन्तु आश्चर्य होता है तब, जब कि जिनसे आशा की जाती है कि वे अन्तस्तल तक पहुँचकर मर्म को पहुँचेगे, वे भी काव्यक्षेत्र में शब्दविन्यास की

द्रेक मे सहायक मानते हैं । यहाँ अनुचित शब्दो की भी भरमार नही है, न पुनरुक्तिदोष है प्रत्युत भावव्यजना की उच्चतम कला का विलास है । भाषा की प्राञ्जलता मे जितना उच्च स्थान पद्माकर का है, उतना अन्य कवियो मे बहुत कम का है, यद्यपि भाषा के चमत्कार के साथ २ प्रत्येक छन्द मे अर्थ का चमत्कार भी उच्चतम कोटि का है-जैसे सत्कवियो की कृति मे होना स्वाभाविक है । अतः हम ऐसे छन्द देने मे अक्षम है जिन मे केवल भाषा मे ही चमत्कार हो । तथापि कुछ छन्द ऐसे उपस्थित करते है जिनमे पदो की मधुरता हठात् मन को आकर्षित कर लेती है । 'अविदितगुणापि सत्कविभणिति कर्णेपु वमति मधुधाराम् ।' 'अनधिगतपरिमलापि हृग हरति मालतीमाला' । यथा—

" सजि व्रजबाल नन्दलाल सो मिलै कै लिए
लगनि लगालगि मे लमकि लमकि उठै ।
कहै 'पद्माकर' चिराग-ऐसी चादनी-सी
चारचो ओर चौकनि मे चमकि चमकि उठै ।
झुकि झुकि झूमि-झूमि झिलि झिलि झेलि झेलि
झरहरी झापन मे झमकि झमकि उठै ।
दर दर देखो दरीखानन मे दौरि दौरि
दुरि-दुरि दामिनी सी दमकि-दमकि उठै ।"

अथवा दूसरा छन्द देखिए—

" चहचही चहल चहूँधा चारु चन्दन की
चन्द्रक चुनीन चौक चौकन चढी है आब ।
कहै 'पद्माकर' फराकत फरसबन्द
फहरि फुहारनि की फरस फबी है फाब ।।
मोदमदमाती मनमोहन मिलै के काज
साजि मनिमन्दिर मनोज कैसी महताब ।
गोल गुल गादी गुल गिलमै गुलाब गुल
गजक गुलाबी गुल गिन्दुक गुले गुलाब ।। "

इन दोनो छन्दो मे जो अनुप्रास की इयत्ता दृष्टिगोचर होती है वह पद्माकर की विशेष सम्पत्ति है । 'लगनि लगालगि मे लमकि लमकि उठै' में लकार का लावण्य सुमधुर 'ग' और 'म' से मिलकर किसी ललना की गौर मधुरता की मूर्ति-सी उपस्थित कर देता है । 'चिराग-ऐसी चादनी सी चारचो ओर चौकनि मे चमकि चमकि उठै' इसमे पदो के प्रारम्भ मे 'चकार' केवल अनुप्रास ही उत्पन्न नही करता है, प्रत्युत चन्द्रिका से चकामित चौक के चित्र को चित्रित-सा कर देता है । तृतीय पंक्ति में 'झकार' और चतुर्थ पंक्ति मे 'द'

भी स्वातन्त्र्य तुम को है, वह भी है, और वह भी है और वह भी। इसी प्रकार जो असीम स्वातन्त्र्य नायिका को है, उसी को चित्त मे वज्रकीलायति करना उद्देश्य है जिसकी पूर्ण रूप से सिद्धि होती है। यह मुग्धा स्वाधीनपतिका का उदाहरण है, जिसके लक्षण मे कहा गया है–'जा तिय के आधीन है प्रियतम रहे हमेस' अर्थात् स्वाधीनपतिका तब होती है जब नायिका के अधीन प्रियतम की सब वृत्तियाँ हो। इस अधीनता के विचार को पति की ओर से पूर्ण स्वच्छन्दता देकर, उसका पद पद पर उल्लेख कर सहृदय-हृदयो मे दृढबद्ध किया गया है। प्रियतम अपना सब अधिकार छोड रहा है, केवल एक पुरस्कार के बदले मे और वह यह कि 'ज्यो हिय में नित बैठी रहो, त्यो दया करिकै ढिग बैठी रहो'। इस अधिकार को मागने मे भी, प्रथम भाग मे नायिका के सतत नायक के हृदय मे वर्त्तमान रहने से वह उसके मनमन्दिर की अधिष्ठात्री देवी है, यह स्पष्ट कर दिया है। और द्वितीय भाग मे जो अनुनयपूर्वक अधिकार मागा गया है, 'दया करिकै ढिग बैठी रहो' उसमे भी नायिका का नायक की मनोवृत्ति पर पूर्ण अधिकार है–यह ध्वनित होता है। अत अनेक अधिकार-दान के प्रतिदान मे यद्यपि नायक एक अधिकार माग रहा है तथापि जो अधिकार वह माग रहा है वह भी वास्तव मे नायिका के ही अधिकार की वृद्धि है - यह विदग्ध समुदाय समझेगा ही। इस प्रकार पूर्ण रूप से सब अधिकारो का नायिका में सन्निवेश किया है, जिससे यह छन्द स्वाधीनपतिका का प्रकृष्ट उदाहरण हुआ है। जब मनुष्य कोई एक वस्तु मागता है और उसके बदले मे बहुत वस्तुए देने की घोषणा करता है तब जो वस्तुए वह देना चाहता है उनके महत्त्व का विस्तार करने के लिये प्रत्येक का परिचय पृथक् पृथक् विशेष रूप से कराता है - ऐसी ही व्यापार की नीति है। अपने पलडे को अधिक वजनदार बनाने के लिए जो स्थल-स्थल मे जोर दिया जा रहा है वह प्रेम व्यापार की चरम कला का परिचायक है। यहाँ आवृत्ति होती है, शब्दो के लालच से नही, भाव की महत्ता खचित करने के लिए। उत्तररामचरित मे वनदेवता वासन्ती के मुख से भगवान् रामचद्र के प्रति जो उपालभ के वचन है–

'त्व जीवित त्वमसि मे हृदय द्वितीय त्व कौमुदी नयनयोरमृत त्वमङ्गे।' अर्थात् तुम मेरे जीवनस्वरूप हो, तुम मेरे द्वितीय हृदय हो, तुम मेरी नयन की कौमुदी हो तुम मेरे अङ्ग मे अमृत के समान हो।

इन वचनो मे 'त्व' शब्द का जो बारम्बार प्रयोग किया गया है वह भावविशेष पर जोर देने के लिए शब्द के लालच से नहीं। इसी प्रकार

होगी। विरहिणी नायिका तो भूषणादि से अनलकृत रहेगी। खडिता नायिका को भी अपने शरीर को अलकृत करने मे अरुचि होगी। परन्तु कवित्त को पढ़ने से तो कोई जगमग करती हुई क्षण क्षण विलक्षण लावण्य से नेत्रो में चकाचौध उत्पन्न करनेवाली नायिका का अनुमान होता है। पाठकगण विचार करे कि ऐसा उज्ज्वल शृगार करनेवाली कौनसी नायिका है? क्या यह अभिसारिका तो नही है? असित पक्ष मे प्रत्येक ही उपकरण नवनीलनीरदच्छवि का इसलिए सग्रह किया जाता है कि निशा के श्यामपट पर श्यामा विलीन होजाये। तब फिर ऐसी दशा मे ऐसी चकाचौध से चारो ओर कान्तिविस्तार करने की कल्पना कृष्णाभिसारिका मे कैसे की जा सकती है? शुक्लाभिसारिका यद्यपि उज्वल परिधान धारण कर गृह से प्रस्थित होती है, परन्तु इन कवित्तो से तो जो झनझन करनेवाली नूपुरो की ध्वनि और मेखला का रणितनिस्वन सा सुनाई देता है, क्या ऐसे वेष मे जाने का स्वप्न मे भी शुक्लाभिसारिका साहस करेगी? अत निर्विवाद सिद्ध है कि इस कवित्त को जिस प्रकार जगमगाते हुए शब्दो की ज्योति से उज्ज्वल किया गया है कि मधुर ध्वनि करते हुए अति रमणीय शब्दो का नाद होता है, उससे ऐसी नायिका की व्यञ्जना होती है, जो उज्ज्वल शृगार किये हुए आभूषणो से सुसज्जित जैसे अपने मुखरित नूपुर स्वर से वैसे ही मजु-मेखला-मणि के मनोहर झकार से प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई कोई नायिका हो – यह है वासकसज्जा।

प्रथम छन्द मे उतनी शब्दालकार योजना नही की गई है जितनी द्वितीय छन्द मे। पहले छन्द मे नायिका "दुरि दुरि दामिनीसी दमकि दमकि उठै" रह रह कर चमक जाती है। पदावली की भी चकाचौध होती, घटती और बढती है। कारण स्पष्ट है। वासक सज्जा है, परन्तु मध्या। दूसरे छन्द मे 'मनोज की महताब-सी' कन्दर्प की जीती जागती ज्योति सी जैसी नायिका का वर्णन है. वैसी ही पराकोटि की शृगार–सामग्री का समवाय है। यहा पर जो इतना प्रकर्षता है उसका कारण ढूढने की आवश्यता नही। यह प्रगल्भा वासकसज्जा है। यह नायिका का वह वेष नही है जिसके विषय मे महाकवि कालिदासने कहा है 'किमिवहि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्'

यह तो रति की प्रतिस्पर्द्धिनी-सी अपनी रत्नप्रभा से शची के भी चित्त मे ईर्प्या उत्पन्न करनेवाली हीरकादि से अलकृत अलकावली से अलका का भी मानमर्दन करनेवाली प्रगल्भा वासकसज्जा है अत भाव के अनुरूप यदि चमकते हुए पदरत्नो की चकाचौध ही यहा उत्पन्न न की जाती तो दोष होता। पाठकगण ध्यान दे कि पद्माकर की पदयोजना किसी ध्येय को लेकर की गई है अथवा नही। क्या इस चमत्कार के आगे पद्माकर पर किए

का शब्दो के आदि मे पुन पुन प्रयोग अभीष्ट अर्थ के प्रतिफलन मे साधक होते हुए छन्द को जेवर मे जडे हुए जवाहिरात से जगमग कर देता है।

'चहचही चहल चहूघा चारु चन्दन की
चन्द्रक चुनीन चौक चौकन चढी है आब।"

इस कवित्त मे जो एक सी सुमधुर ध्वनि करनेवाले शब्दो की मधुर योजना की गई है वह श्रवण द्वारा आनन्द उठाने का विषय है– वर्णन का नही। एक ऐसा रुचिर चित्र मानसिक नेत्रो के सामने ये शब्द अकित करते है, जिसका कोई भाग अत्यन्त प्रकाशमय है और कोई स्थल पद्म की कान्ति से मनोहर। ये जो एक प्रकार के शब्द एकत्रित किये गये है इनका आशय यदि अनुप्रास के उत्पादन पर ही समाप्त होजाय तो कवि की कृति शब्दालकार तक ही सीमित मानी जायगी। परन्तु नीचे की विवेचना से स्पष्ट होगा कि अन्य गुण भी इनमें विद्यमान है, जिसके कारण इन कवित्तो का आदर अत्यधिक हो जाता है। जिस प्रकार के भाव को प्रकट करना हो, उसी प्रकार की भाषा को प्रयुक्त करने के सिद्धात से सब अवगत है। यदि वीररस वर्णन मे क्षण क्षण पर विराम लेती हुई लडखडाती-सी दीन वाणी का प्रयोग किया जाय तो क्या वह उचित होगा ? इस प्रकारकी भाषा तो करुणरस की कविता मे ही प्रयुक्त होनी चाहिए जिससे हृदय की धैर्यहीनता, करुणा और दैन्य का परिचय मिल सके। भाषा की शब्द–ध्वनि से ही भाव के परिचय मिलने को अगरेजी में Onomatopoeia अलकार कहते है–जैसे –

"With beaded bubbles winking at the brim"
– Keat

"The ploughman homeward plods his weary way"–
"And cast one longing lingering look behind"
– Gray

"I bubble into edding bays
I babble on the pebbles"
– Tennyson

"Her bright breast shortening into sighs"
"The wolf that follows and the fawn that flies"
– Swinburne

यही अलकार पद्माकर की इन कविताओ मे उपलब्ध होता है। कविता को शब्दालकारो से सुसज्जित किया है, इसलिए यह किसी ऐसी नायिका का वर्णन होना चाहिए जो अलकृत हो। विरहिणी नायिका के वर्णन मे यदि इस प्रकार की पदावली का प्रयोग किया जाय तो वह अज्ञता की अवसान भूमि

पद्माकर की लोकप्रियता का कारण है। और कुछ ऐसे छन्द, जिनमे अनुप्रास की सरिता सी उमडती है प्राय. प्रत्येक हिंदी प्रेमी के जिव्हाग्र भाग पर रहते है। परन्तु शब्दो के मृदु आवरण के भीतर सुरसरिल्लोलकल्लोलमाला मे विलीन सरस्वती सी जो अर्थ की सुधासरिता बहती है, उसका रसास्वादन न कर सकने वाले यह आक्षेप कर बैठते है कि पद्माकर मे शब्दो का माधुर्य है, अर्थगाभीर्य नही, पदप्राञ्जलता है, रससौष्ठव नही। इसी सवैये की अन्तिम पक्तियो मे 'ग' का प्रयोग अर्थ की दृष्टि से अनर्गल सा प्रतीत होगा, परन्तु ऐसा नही है। जब मोहन ने विदा मागी, तब मोहिनी ने विदा क्यो देदी ? यदि उस समय विदा देने मे इन्कार किया जाता तो काव्य की दृष्टि से कोई चमत्कार नही रहता। इस विदा मे व्यवधान करने के घरेलू चित्र के चित्रण का उद्देश्य कवि का नही है। यदि ऐसा करता तो विदग्धता ही क्या रह जाती ? यदि गोविंद की देहवल्लरी को बाहुपाशबद्ध करके गमन का प्रतिषेध किया जाता तो भी कोई विशेष चमत्कार नही था। ऐसा भी प्रतिदिन नायक के गमन के समय प्रगल्भाकुलकारी मे भी जनद्वारा आचरण होता ही रहता है। परन्तु मोहिनी मे अभी इतनी प्रगल्भता नही है कि बहिया या गरो गहि गोबिंद को गमन से फेरे। गले के पर्यायवाची कठ आदि का प्रयोग यहाँ पर किया जाता तो क्या उतनी मधुरता आना सभव था, उसी प्रकार 'गहि' शब्द मे जो मृदुता के साथ दृढग्रहण करने का अर्थ व्यञ्जित होता है वह दूसरे शब्द से नही। साधारणतया बाहु-ग्रहण करके प्रतिबन्ध किया जाता है। नायक-नायिका मे विशेष प्रेम के कारण कठग्रहणपूर्वक भी अनुनय हो सकता है। अत इस पक्ति मे जो 'गहि' और 'गरो' शब्द का प्रयोग हुआ है उनके पर्याय से अर्थसिद्धि नही होती।

इससे स्पष्ट है कि अनुप्रास के लोभ से शब्दो की भरमार नही की गई है, प्रत्युत प्रत्येक शब्द अपना महत्त्व रखता है। सस्कृत के 'कमल' का 'कौल' 'गमन' का 'गौन' जो मधुरता उत्पन्न कर देता है, उसके ये पद ही स्वय प्रमाण है, क्या 'गौन' को हटाकर इसी भाव के द्योतक दूसरे शब्द की ऐसी ललित योजना की जा सकती है ? इस विवेचना से 'गौन' शब्द की सार्थकता के सबध मे तो विश्वास हुआ परन्तु 'गौरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल को गैल मे गेरो' इस पक्ति मे 'ग' की अनुचित भरमार के सबध मे' सभव है, शका बनी हो। इस विचार से पहले इसी पर ध्यान देगे कि मोहिनी के ऊपर की पक्ति मे जो प्रक्रम वर्णित है, उनमें से किसी का आश्रय ले प्रतिषेध न कर गजरा गोपाल की गैल मे क्यो डाल दिया ? प्रथम तो नायिका इतनी प्रगल्भ नही हुई है कि उस प्रकार से गमन-निवारण करती,

गए आक्षेपो में सत्य का आभास भी मिलता है। वस्तुवर्णन प्राय कवित्तो में किया गया है इसीलिए उनकी भाषा भी विशेष अलकृत हुई है और भाव-वर्णन मे सवैये छन्द को अपनाया है, जिसकी पदावली मे रत्नो की प्रभा के स्थान मे मखमल की सुकोमलता की अनुभूति होती है। महाकवि भवभूति ने भी वस्तुवर्णनात्मक स्थलो मे बडे छन्द और भाषा की क्लिष्टता को अवकाश दिया है और हृदय के ललित भावो के विकास के समय अपेक्षाकृत छोटे छन्द और सरलभाषा का उपयोग किया है, उसमे जो सिद्धात है वही पद्माकर की कृति मे। अत विज्ञो के सन्मुख इस पर विशेष प्रकाश न डालकर हम एक सवैया उपस्थित करते है -

> ' गो गृहकाज गुवालन के कहे देखिने को कहू दूरि को खेरो।
> मागि बिदा लई मोहिनी सो 'पद्माकर' मोहन होत सवेरो ॥
> फेंट गही न गही बहियां न गरो गहि गोविंदै गौन तें फैरो।
> गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल की गैल में गेरो ॥'

अपने समस्त कार्यभार की उपेक्षा कर गोपगणो के कहने से बाहर विनोद के लिए जाने को गोविंद उद्यत होगए है। प्रात काल होते ही मोहन ने मोहिनी से जाने के लिए विदा ले ली है। मोहिनीने आलिंगनपूर्वक उनके मार्ग को अवरुद्ध नही किया, न उनके मृणाल कमनीय बाहुयुगल को अपने करसरोरुह सम्पुट मे आवद्ध कर जाने से फेरने का यत्न किया, प्रत्युत गोविंद के मार्ग मे गलाव का गजरा लेकर डालदिया। साधारणतया देखने से गोविंद के बाहर जाने मे कोई महत्त्व नही दिखाई देता। मोहिनीके बिदा मागने पर विदा दे भी दी है। न मान किया, न रोकने का यत्न किया। गुलाब के फूलो का गजरा मार्ग मे डाल दिया है। यहा इस तीसरी पक्ति के अन्त मे "फेंट गही न गही बहियां न गरो गहि गोविन्दै गौन तें फैरो" मे जिस प्रकार 'ग' का ललित अनुप्रास आया है इसी प्रकार "गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गुपाल की गैल मे गेरो" इस पक्ति मे तो मानो जितनी बार 'ग' आसके, उतनी बार इसका प्रयोग करने के लिए पद्माकर बद्धपरिकर हो गये है। शब्दानुप्रास की जो मनोहरता है, उसके विषय तो हमे कुछ कहना ही नही है। इसके लिए तो कोई भी पाठक पद्माकर के किसी भी छन्द को उठाकर देख सकते है। सभी जगह अनुप्रास अबाधित रूप से प्राप्त होगा। सम्भव है, इसी कारण काव्य के मर्मो को न पहचानने वाला भाषा के साधारण ज्ञान से भूषित भारती के उपासको मे भी पद्माकर के प्रशसक मिलेगे। वे केवल पद्माकर की भाषा पर ही मुग्ध होकर अनुप्रासजनित माधुर्य से सुननेवालो के कर्णकुहरो मे पीयूष-वर्षा कर प्रशसा के पात्र होते है, यह बहुत अशो तक

फूलन में केलिन म कछारन मे कुञ्जन मे
क्यारिन में कलित कलीन किलकत है ।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हू में
पातन में पीक में पलासन पगत है ।
द्वारन में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखौ दीप दीपन में दीपत दिगत है ।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन बेलिन में
वनन में बागन मे बगरचो बसन्त है ।"

अथा

" मल्लिकान मजुल मलिन्द मतवारे मिले
मन्द मन्द मारुत मुहीम मनसा की है ।
कहै 'पदमाकर' त्यो नदन नदीन नित
नागर नवेलिन की नजर नसा की है ।
दौरत दरेरो देत दादुर सु दुंदै दीह
दामिनी दमकत दिसान में दसा की है ।
बद्दलनि बुन्दनि बिलोक बगुलान बाग
बगलान बेलिन बहार बरसा की है ।"

पद्माकर की भाषा पर आक्षेप करने वाले प्राय इन दो छन्दो के उदाहरण उपस्थित कर अनर्गल शब्द जाल मे ही पद्माकर की काव्यकला सीमित है- यह प्रकट करने का यत्न करते है । अनुप्रास के लिए या यमक के लिए (यथा नवेलिन मे बेलिन मे) ही शब्दो को केवल नादसाम्य के विचार से एक स्थान पर भर दिया गया है- प्राय यह आक्षेप हुआ करता है । किसी सुन्दर उद्यान मे रगरग के सुगन्धित पुष्प विकसित रहते है परन्तु उन पुष्पो का वर्ण किसी एक विचार से क्रमबद्ध नही रहता । वहा पर सभी पुष्पो से भीनी भीनी सुगन्ध उठती है, जो अपनी मनोमोहकता से दशो दिशाओ को व्याप्त कर देती है । परन्तु वह पुष्पराशि वर्ण के विचारसे सजाई हुई नही रहती। इसके विपरीत कुछ उद्यान ऐसे भी है, जहाँ एक आलवाल मे अथवा एक क्यारी मे एक ही वर्ण के लगाये हुए पुष्प मिलेगे । यदि एक ही स्थान पर भिन्न २ रुचिर रगो के पुष्प लगाये भी जाते है तो इस विचार से कि एक रग के पुष्प एक भाग पर रहे या बाहरी घेरा बनाले, जिससे नेत्रो पर विशेष प्रभाव उत्पन्न करने मे समर्थ हो । अत यदि उन सुमन-समूहो मे सौरभ भी हो तो क्या केवल इस बात से कि उनको वेश-विशेष के विचार से लगाया गया है - हम भर्त्सना करेगे । यही हाल पद्माकर की कविता का है । कोई

दूसरे उस प्रकार के वर्णन मे अभिप्राय की सिद्धि अभिधावृत्ति द्वारा ही होती, व्यञ्जना द्वारा नही। व्यञ्जना और अभिधा के आकाश-पाताल के भेद को दिखाने का न यह अवसर है, न काव्यपरीक्षको के आगे उस श्रम की आवश्यकता ही है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि व्यञ्जना द्वारा अर्थ व्यक्त करने के अभिप्राय से मोहिनी ने उस प्रकार गति का प्रतिरोध नही किया। गुलाब के गजरे को मार्ग में डालकर वसन्त समय का निदर्शन करती हुई उस भावना से उपस्थित नायक नायिका के एक ही स्थान मे रहने की ललित आवश्यकता पर प्रकाश डालती हुई विरह की इस ऋतुविशेष मे प्रचण्ड ऊष्मा का स्मरण सा दिलाती हुई जो एक नायिका गुलाब का गजरा डालती है, उसकी विस्तार-भय से हम यहाँ आलोचन नही करेगे। इस कार्य में विदग्धता है, प्रगल्भता नही, अत 'मध्याप्रवत्स्यत्प्रेयसी' का सुन्दर उदाहरण है।

'गोरी' शब्द से आलम्बनस्वरूप नायिका के सौन्दर्यातिशय को द्योतित करते हुए रति–उत्पत्ति की विशेष योग्यता दिखलाई है। अन्य पुष्पो की माला मार्ग मे न डालकर गुलाब का गजरा ही क्यो डाला? वसन्त में जो अनेक पुष्पविशेष विकसित हो अपनी रूपराशि और सुरभिसम्पत्ति से युवक-युवतीजन के चित्त को मदिरापान की भाति उन्मत्तसा कर देते है, उनमे गुलाब का उच्चतम स्थान है। इस विषय मे दो समतिया नही हो सकती है। फूलो की माला न डालकर गजरा क्यो डाला है? माला मे उतनी सुमन-समूह की सम्पत्ति नही होती है जितनी गजरे मे। गजरे मे वे कुसुमदल घनीभूत हो विशेष परिमाण मे वर्तमान रहते है। इस कारण गजरे को डालने से घनीभूत प्रेम एव वसन्त का पूर्ण रूप से आगमन और तज्जन्य परम कोटि की विरहाग्नि होगी– यह ध्वनित किया है। एक गुलाब के पुष्प को डाल देने से यह ध्वनि निकल सकती थी परन्तु उतनी मात्रा मे नही, जितनी में कवि को अभिप्रेत है। एक-आध गुलाब का फूल सभवत दृष्टि से बच जाता, परन्तु गजरा तो न केवल दृष्टि को ही अपनी ओर आकर्षित करेगा प्रत्युत गैल को घेर भी लेगा। बाट मार्ग आदि चौडे रास्ते के द्योतक है, परन्तु गैल से मार्ग की सकीर्णता ध्वनित होती है जिसमे पडा हुआ गजरा गोपाल के मार्ग मे अर्गला का कार्य करेगा। अत गोरी, गुलाब, गजरा, गैल आदि सार्थक है और अर्थविशेष सम्पादित करते है, जो इनके पर्याय नही कर सकते थे। इससे स्पष्ट है कि अनुप्रास लाने के लिए ही ये शब्द नही रक्खे गये है, प्रत्युत उत्तम काव्य की दृष्टि से इनका प्रयोग परम आवश्यक था। सभवत यह कवि पर किये गये अनुप्रास के लोभ से शब्दो की भरमार का निवारण करे।

-कर दूर तक का विस्तार दिखलाया है। द्वीप से भी सन्तोष नही हुआ, तब समग्र खमण्डल को ही मडलित कर लिया है। यह बताने के लिये दिगन्त कहा। अत एक प्रकार के शब्द विचार से क्रमबद्ध करने से कैसे महत्त्व के हो जाते हैं—इस पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नही। परिगणना ऐसे पदार्थो की गई है जो आलम्बन स्वरूप किवा उद्दीपन स्वरूप है। पाठकगण देखे यह शब्द भरमार नही, शब्दो का चुनाव है। पदो का ढेर नही लगाया गया है। उनको क्रमबद्ध कर अपूर्व चमत्कारोत्पादन किया गया है। 'मल्लिकान मजुल मलिन्द मतवारे' से भ्रमरगण का गजन 'दौरत दरेरो देत दादुर' से दादुर का शब्द नाद-साम्य से कितनी अच्छी तरह प्रकटित होता है। इन छन्दो की लोकप्रियता ही इनकी विशिष्टता का प्रमाण है और इस रीति से इनका अध्ययन करने से पद्माकर की कविता-कामिनी पर अर्पित हुई यह लाँछन-श्रृखला भी विगलित हो जावेगी—ऐसी आशा है। पद्माकर की भाषा पर बहुत लिखा जा सकता है। परन्तु यहाँ पर उसी भाषा पर प्रकाश डाला गया है, जो अर्थ से सबद्ध है। उपर्युक्त छन्दो इनका भापा पर पूर्ण अधिकार प्रकट होता है, जो इनके सस्कृत, प्राकृत, उर्दू आदि के पूर्ण अध्ययन का परिचायक है।

'पद्मावर की अनुप्रासप्रियता भी बहुत प्रसिद्ध है। सन्तोष की बात इतनी ही है कि उनके छन्दो मे उनकी भावधारा को सरल स्वच्छन्द प्रवाह मिला है, जिनमें हावो की सुन्दर योजना के बीच मे सुन्दर चित्र खडे किये है।'

— हिन्दी भाषा और साहित्य पृष्ठ ४५९

छन्द ऐसा है कि जिसमे गुलाब और गुलशब्बो, मल्ली और मोगरा केवल सौरभ के विचार से सजाकर रख दिये गये है ओर अपने नैसर्गिक लावण्य से वह सामूहिक रूप से सौन्दर्य–सार–समुदाय से प्रतीत होते हैं। परन्तु इसके साथ ही पद्माकर के कुछ छन्द ऐसे है, जिसमे यदि एक ओर केवल गुलाबी गुलाब है तो दूसरी ओर मल्लिकाओ का ही लावण्य है।

कुमुदकुवलय और कल्हार की कमनीय कुसुमराशि सजाई गई है। परन्तु एक कुसुमदल एक ही ओर है। क्या वर्ण-विभाग सौरभ का शत्रु है ? इसी भ्रान्ति से भ्रमित पद्माकर के कुछ परीक्षक एक स्वरसे इन छन्दो की निन्दा करने मे बद्धपरिकर होते हैं। प्रथम कवित्त मे बसन्तवर्णन है और द्वितीय मे वर्षा का। दोनो ही छन्दो में विषय है ऋतु के प्रभात और विस्तार का। धनिको के ललित क्रीडास्थान उद्यानो मे जैसे वसन्त ने अपना प्रभाव दिखाया, वैसे ही किसी निर्धन के प्रागण मे स्थित एकाकी पादप भी उसकी श्री से समुल्लासित हो उठा है। राजमहल के उच्च शिखर जिस प्रकार वर्षा-जल से आप्लावित हुए वैसे ही पर्णशालाओ के तृणवितान भी। यह दोनो के समान रूप से प्रभावित होने के भाव को कविने एक ही अक्षर से प्रारम्भ के दो शब्दो का एक साथ रखकर दिखाया है। जिस प्रकार प्रकृति के निर्जन भूमिभाग में वासन्ती अपने सुकुमार करसरोरुहो से तरुखड को सज्जित करने लगी, वैसे ही प्रासादो के पार्श्व मे पुष्पराशि की अवाधित समृद्धिकर किसी नवीन ऋतु के आगमन को प्रदर्शित किया। जिस प्रकार नवीन मेघमाला ने नदियो को प्रगल्भ किया वैसे ही कुलकामिनी जन के मान का अपनयनकर उनमे प्रगल्भता भर दी। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए प्रकृति और प्रासाद दोनो मे समान रूप से वसन्तश्री का प्रसाद है, यह भली प्रकार हृदयगम करने के लिए 'बनन मे बागन मे' आदि शब्दो की योजना की और इस प्रकार जैसे वनस्पति-जगत् मे वैसे ही ललनाजन मे समान रूप से विकास और विकार हुए है, यह वताने के लिए 'नवेलिन मे वेलिन मे' आदि शब्दो का उपयोग किया। एक वर्ण से प्रारभ होनेवाले पदो को रखकर कविने मानो यह दिखाया है कि उस पद से प्रारभ होनेवाले सभी स्थानो में ऋतु का साम्राज्य है।

लगातार एक से शब्द आने से यह मालूम होता है कि उस वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला कोई शब्द नही छोडा, जिसमे पूर्णतया चित्त पर यह प्रभाव पडता है कि वसन्तश्री अथवा वर्षा की वह र से भी कोईसा स्थान नही छूटा। ये शब्द क्रमबद्ध भी रक्खे गये है, पहले द्वार मे कहा, फिर दिग्विभागो में कहा पहले देश मे कहा है, फिर द्वीपो मे क्रमश पास के स्थानो से आरम्भ

कुशल शिल्पी ही जानता है। भाषा वही उत्तम है, जिसमे भावो को प्रकट कर सकने की पूर्ण क्षमता हो। मतलब की बात बहुत थोडे शब्दो मे प्रकट कर देना भी भाषा की सबसे बडी विशेषता है। भाषा मे सरलता भी चाहिए, दुरूह शब्दो का उपयोग करना ज्ञान का द्योतक नही, बल्कि उपहासास्पद है। उत्तम भाषा मे अलंकारो का प्रादुर्भाव आप ही आप होता है। उन्हे लाने के लिए लेखक या कवि को कुछ प्रयत्न नहीं करना पडता। इन सब गुणो के साथ-साथ भाषा मे मधुरता भी चाहिए। जब कर्ण-कुहरो मे मधुर भाषा की पीयूष-वृष्टि होने लगती है, तब आनन्दातिरेक से मानस-पयोधि उमड उठता है। पर हाँ, वीर रस का वर्णन करते समय उसके अनुरूप शब्दो का ही प्रयोग करना चाहिए, जिससे भाषा मे ओज का आविर्भाव हो सके।

महाकवि पद्माकर का रीतिकालीन कवियो मे विशिष्ट स्थान है। पद्माकर की कविता का प्रचार जन-साधारण में बहुत अधिक है। पद्माकर जी ने ब्रज-भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है और ब्रजभाषा की जो श्री-वृद्धि की है वह किसी से छिपी नही है। अब हम इनकी भाषा को भाषा की कसौटी द्वारा परखने का दुस्साहस करेगे।

यो तो रीतिकाल मे हमे ब्रजभाषा का परिमार्जित रूप अवश्य प्राप्त होता है, पर साथ ही उसमे व्याकरण की अशुद्धियाँ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। वाक्य-रचना तो बहुत थोडे-से कवियो की सुव्यवस्थित पाई जाती है। भाषा की गडबडी का प्रधान कारण ब्रज और अवधी का सम्मिश्रित रूप काव्य मे प्रकट करना भी है। यह हम अवश्य मानते है कि एक सामान्य साहित्यिक भाषा अपने किसी प्रदेश-विशेष के प्रयोगो तक ही सीमित नही रह सकती, उसमे दूसरे प्रदेश की भाषाओ का प्रभाव अवश्य पडेगा, पर कम-से-कम ढाँचे मे तो परिवर्तन न होना चाहिए। रीतिकालीन ग्रन्थो पर प्राय इसलिए अवधी की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। मिश्रित भाषा के विषय मे 'दास' जी का मत है --

ब्रजभाषा भाषा रुचिर कहै सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यो पै अति प्रगट जु होइ॥
ब्रज, मागधी मिले अमर नाग यवन भाखानि।
सहज पारसी हू मिलै, षट विधि कहत बखानि॥

और अपने इस कथन के प्रमाण मे दास जी कहते है कि तुलसी और गग तक ने जो कि कवियो के शिरोमणि गिने जाते है ऐसी भाषा का उपयोग किया है--

महाकवि पद्माकर की भाषा के गुण-दोष

एक समालोचक का कथन है कि कविता वही है, जिसमे सर्वोत्तम शब्दो का न्यास हो ('Poetry is the best words in their best order') अर्थात् सुन्दर शब्दो को सुन्दर क्रम से रखना ही कविता है। भाषा के साथ साथ भावो का भी सम्मिश्रण आवश्यक है। भाव और भाषा का अटूट सम्बन्ध है। यह तो सर्वमान्य-सा है कि भावहीन कविता को हम कविता नही कहेगे, परन्तु कोरे विचारो को प्रकट करने से ही काम नही चलता। उन विचारो को जब तक सुन्दर शब्दो द्वारा प्रकट नही किया जायगा तब तक कुछ भी आनन्द न आएगा। भाव या मनोविकार तो प्राय सभी के हृदयो में उठा करते है परन्तु उनको प्रकट करने के लिए भाषा का सहारा लेना पडता है और यदि भाषा बदलती न हुई तो सारा खेल बिगड जायगा, सारे करे-कराये पर पानी फिर जायगा। अतएव इस दृष्टिकोण से भाषा का महत्त्व भावो से कुछ कम नही ठहरता।

सस्कृत मे इस प्रकार की एक आख्यायिका भी प्रचलित है। एक सूखे हुए पेड को देखकर दो भिन्न-भिन्न कवियो ने अपने भिन्न-भिन्न उद्गार प्रकट किये। एक ने कहा—

" शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे "

और दूसरे ने कहा—

" नीरसतरुरिह विलसति पुरत "

एक ही वस्तु का वर्णन दो भिन्न-भिन्न सूक्तियो में किया गया है, पर दोनो मे कितना अन्तर है। जो रस दूसरे कवि की वाणी मे है, वह पहले की वाणी मे नही।

अब हम सक्षेप मे उत्तम भाषा के गुणो पर विचार करे। उत्तम भाषा का सर्वप्रधान गुण तो यह है कि लेखक या कवि उसके द्वारा अपने भावो को पूर्णत प्रकट कर सके। सुन्दर-सुन्दर शब्दो को क्रमानुसार और आवश्यकता-नुसार गूँथकर एक ऐसी माला प्रस्तुत करना कि जिससे दिग्दिगन्त सौरभित हो उठे—कवि की एक महान् विशेषता है। प्राय प्रत्येक शब्द के पर्यायवाची शब्द होते है, पर किस शब्द का किस स्थान पर प्रयोग किया जाय, यह

कहै 'पद्माकर' सुरा सो सरसार तैसे,
बिथुरि बिराजै बार हीरन के हार पर ॥
छाजत छबीले छिति छहरि छरा के छोर,
भोर उठि आई केलि मंदिर के द्वार पर।
एक पग भीतर औ एक देहरी पै धरे,
एक कर कंज, एक कर है किवार पर ॥

मधुर कल्पना और उत्तम भाषा के साथ-साथ भावुकता का मिश्रण काव्य-कुशलता का द्योतक है। एक छन्द और देखिए –

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोंबिद को,
श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ।
कहै 'पद्माकर' तिहारी छेम छिन-छिन,
चाहियतु प्यारे मन मुदित घने रहौ ॥
बिनती इती है कै हमसेहू हमे तो निज,
पायन की पूरी परिचारिका बने रहौ।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन,
लगनि लगाय लाल मगन वनै रहौ ॥

शब्द-चयन इस छन्द की एक खास विशेषता है। वसत मे बेचारी विरहिणी व्रजागनाओ की क्या दशा होती है, यह पद्माकर से सुनिए –

ए व्रजचंद चलो किन वा व्रज लूकै बसन्त की ऊकन लागीं;
त्यों पद्माकर पेखौ पलासन पावक सी मनौ फूकन लागी।
वै व्रजवारी बिचारी वधू बनि बावरी लौं हिये हूकन लागी;
कारी कुरूप कसाइनें ऐसी कुहू कुहू क्वैलियाँ कूकन लागीं।

नीर और क्षीर के समान भाषा और भाव का यहाँ इतना सुन्दर सम्मिश्रण है-कि देखते ही बनता है। दोनो सयुक्त होकर इस प्रकार से एक हो गये है कि अलग हो ही नही सकते और विलग करने पर तो सारा आनन्द ही फीका पड जायगा।

अव पद्माकर का एक ओज-पूर्ण उदाहरण देखिए :-

तीखे तेगवाही जे सिपाही चढै घोड़न पै,
स्याही चढै अमित अरिंदन की ऐल पै।
कहै 'पद्माकर' निसान चढै हाथिन पै,
धूरिधार चढै पाक सासन के सैल पै ॥

' तुलसी गङ्ग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥ '

इस प्रकार से ब्रजभाषा में दूसरी भाषाओ के शब्द तो आये ही पर साथ ही दूसरी भाषा के कारक-चिन्हो और क्रिया के रूपो का भी कवियो ने स्वेच्छानुसार व्यवहार किया। उदाहरणार्थ 'करना' के भूतकाल के लिए कवियो ने ' कियो ', ' कीनो ', ' कर्‌यो ', ' कीन ' बल्कि ' किय ' तक का उपयोग किया। इससे भाषा को वह स्थिरता न प्राप्त हो सकी जो कि एक साहित्यिक भाषा के लिए आवश्यक थी।

महाकवि पद्माकर उत्तम भाषा का प्रयोग करने मे सिद्धहस्त थे। उन्होने भावो के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है और इसीलिए कही-कही उन्होने बडे सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है। सरल, मधुर और प्रचलित शब्दो का चयन वे बडी ही बुद्धिमत्ता से करते थे। वाक्यविन्यास भी सहज और आकर्षक होता था। आचार्य शुक्ल ने पद्माकर की भाषा के सम्बन्ध में कहा है- "भाषा की सब प्रकार की शक्तियो पर इनका अधिकार दिखाई पडता है। कही तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर, पदावली द्वारा एक सजीव भाव भरी प्रेममूर्ति खडी करती है, कही भाव या रस की धारा बहाती है, कही अनुप्रास की मिलित झकार उत्पन्न करती है, कही वीरदर्प के समान अकडती और कडकती हुई चलती है और कही प्रशान्त सरोवर के समान स्थिर और गभीर होकर मनुष्य जीवन की विश्रान्ति की छाया दिखाती है। साराश यह कि इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बडे कवि मे होनी चाहिए। भाषा की ऐसी अनेकरूपता गोस्वामी तुलसीदास जी मे दिखाई पडती है।"[१]

पद्माकर ने लाक्षणिक शब्दो का भी प्रयोग किया है और अव्यक्त होने वाली कई भावनाओ को ऐसा मूर्तिमान रूप दिया है कि उनकी लाक्षणिकता की प्रशसा मुक्तकठ से करनी ही पडती है। इनके वर्णनात्मक कवित्तो में अनुप्रास की दीर्घ शृखला भी दृष्टिगोचर होती है। वास्तव मे पद्माकर की भाषा दीपमालिका के समान समुज्ज्वल और जगमगाती हुई है। कुछ उदाहरण देखिए :-

आरस सो आरत, सँभारत न सीस पट,
गजब गुजारति गरीबन की धार पर।

१, हिन्दी साहित्य का इतिहास- प रामचद्र शुक्ल (पृष्ठ ३०९-३१०)

ज्वाला की जलन सी जलाक जग जालन की,
जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहे की।'

× × ×

'गुलगुली गिलमैं गलीचा है गुनीजन है,
चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है;
कहै पद्माकर त्यो गजक गिजा है सजी,
सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है।'

× × ×

'झुकि-झुकि, झूमि-झूमि, झिल-झिल, झेल-झेल,
झरहरी झाँपन मैं झमकि-झमकि उठै।'

× × ×

'देखौ दिच्छ दिच्छन प्रतच्छ निज पच्छिन के,
लच्छन समच्छ भय भच्छिबो करत है।'

इस प्रकार के बहुत से उदाहरण पद्माकर की रचनाओ मे उपलब्ध होते है। 'हिम्मतबहादुरविरुदावली,' मे तो पद्माकर ने इनकी अति-सी कर दी है। कोई भी सहृदय इस प्रकार से अनुप्रासो के फेर मे पडकर भाषा को विकृत करना पसन्द न करेगा।

पद्माकर की भाषा में दूसरा दोष उनकी निरकुशता के फलस्वरूप आ गया है। यो तो प्राय प्राचीन सभी कवियो ने शब्दो के रूपो मे मनमाना परिवर्तन कर दिया है; पर इतना अधिक नही। पद्माकर ने तो शब्दो को बहुत ही अधिक तोडा मरोड़ा है, जिससे कही-कही तो अर्थ का अनर्थ भी हो गया है। कुछ उदाहरण देखिए -

'कहै पद्माकर गयल मैं विश्राम सों,
सरोजनके दामसो जो सरद समन्त मैं।'

× × ×

'कहै पद्माकर परागन में पौन हूँ मैं,
पानन मैं पीक मैं पलाशन पगंत है।'

× × ×

'ग्वाल सो बोलि गोपाल कह्यो सु,
गुवालिनि पै मनो मोहिनी डारी।'

× × ×

साजि चतुरग चमू जंग जीतिबे के हेतु,
हिम्मतबहादुर चढ़त फर फैल पैं ।
लाली चढ़ै मुख पै, बहाली चढ़ै बाहन पैं,
काली चढ़ै सिंह पैं, कपाली चढ़ै बैल पै ॥

उपर्युक्त उदाहरणो द्वारा पद्माकर का भाषा-सौन्दर्य पूर्णत: प्रकट हो रहा है और ज्ञात होता है कि पद्माकर का व्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार था। अभी-अभी हमने रीतिकालीन व्रजभाषा पर प्रकाश डालते हुए लिखा था कि व्रजभाषा मे अवधी तथा कई दूसरी भाषाओ के शब्दो का समावेश हुआ है। साथ ही कारक चिन्हो और क्रिया के रूपो मे भी परिवर्तन हुआ है। इस रुचि-निरकुशता के फलस्वरूप भाषा कही-कही इतनी अधिक सदोष हो गई है कि कुछ कहते नही बनता। इसके अतिरिक्त अनुप्रास की प्रवृत्ति द्वारा भी भाषा मे दोषो का आविर्भाव हुआ है। महाकवि पद्माकर भी इस प्रवृत्ति से बच नही सके। शब्द-चमत्कार प्रकट करने की प्रवृत्ति उनमे भी विद्यमान थी और इसीलिए कही-कही उनकी भाषा सदोष हो गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे भाषा के साथ खिलवाड कर रहे है। अनुचित अनुप्रासो के बोझ से भाषा को शिथिल कर देना पद्माकर जैसे सत्कवि के लिए उचित न था। कुछ उदाहरण देखिए --

'गूंदि गेंदे गुल गजगौहरन गंज गुल,
गुपत गुलाबी गुल गजरे गुलाबपास!
खासे खसबीजन सु पौन-पौन खाने खुले,
खसके खजाने खसखाने खूब खास-खास।'

× × ×

'तान की तरंग तरुनापन तरनि तेज,
तेल तूल तरुनि तमोल ताकियत है;'

× × ×

'कहै पद्माकर फराकत फरस बन्द,
फहरि फुहारन की फरस फबी है फाब;
गोल गुल गादी गुल गिलमें गुलाब गुल,
गजक गुलाबी गुलके गिदुक गुले गुलाब।'

× × ×

'काल की कुटुंबनि कला है कुलिल कालिका की,
कहर की कुन्त की नजरि कछवाहे की;

'रति बिपरीत रची दंपति गुपति अति,
मेरे जान मानि भय मनमथ नेजे तें;
कहै पद्माकर पगी यो रसरग जामें,
खुलिगे सुअग सब रगन अमेजे तें।'

× × ×

'या विधि साँवरे रावरे की न मिलें मरजो न मजा न मजाखें।'
'पचई मुदिता षष्टई है अनुसयना सोय।'

× × ×

'राधिका की कहवत कहि दीजो मोहन सो,
रसिक शिरोमणि कहाय धौं कहा कियो।'

× × ×

'छाय बिछाय पुरैन के पातन लेटती चंदन की चवकी मे।'

× × ×

'उठे अंकुर प्रेम के, मनहु हेम के खेत'

× × ×

'बावरी लौ बूझति विलोकति कहाँ तू वीर,
जानै कहा कोऊ प्रेम प्रेम हटवारे की।'

× × ×

'श्रवण चित्र शुभ स्वप्न में पुनि परतच्छ निहारि।'

× × ×

'करहुँ कहा पीकन लगे, पिक पापी चहुँ ओर।'

उपर्युक्त उद्धृत अंशो द्वारा स्पष्ट है कि पद्माकर की कविता मे शब्द कितने बेढगे तरीके से तोडे-मरोडे गये है। हिमन्त के अनुप्रास के हेतु समय को 'समन्त' कर दिया गया है, 'होत' के अनुप्रास के लिए 'दावात' को 'दोत' बना दिया गया और चरित्र की तुक बैठालने के लिए चित्र औ गुपित्र की रचना की गई। इसी प्रकार माधुरी-मधुराई के लिए 'माधुरई' चातुरी-चतुराई के लिए 'चातुरई,' गुप्त के लिए 'गुपति', 'पष्ट के लिए 'पष्टई' और रगामेजी के लिए 'रगनअमेजे' का प्रयोग किया गया है। 'खसबोयन' सरीखे फारसी शब्दो को भी पद्माकर ने स्वीकार किया है। पद्माकर भाषा-मर्मज्ञ थे और कही-कही तो उन्होने भाषा सौन्दर्य के सुन्दर-सुन्दर चित्र भी प्रस्तुत किये है, पर उनकी कविता मे ऐसे स्थलो की भी कमी नही है, जो कि हमारे इस कथन के अपवाद- स्वरुप हैं। यदि पद्माकर की कविता में ये दोष न होते तो निश्चय ही वह सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती थी, पर फिर भी उन्होने हिन्दी की जो सेवा की है, वह प्रशसनीय है और व्रजभाषा के कवियो मे तो उनका आदरणीय स्थान है ही।

'कहै पद्माकर सुनौ तौ हाल हामी भरी,
लिखो कहौ लैकै कहूँ कागद कलम दोत।'

× × ×

'जामें वही ब्ही फिरी ब्ही।
चित्र औ गुपित्र की।'

× × ×

'त्यो पद्माकर गावतीं गीत रिझावती भाव बताय नवीनै
छोटी-सी छाती छुटी अलकै अति बैस मैं छोटी वडी परबीनै।'

× × ×

'रूप के गुमान तिल उत्तमा न आनै उर,
आनन निकाई पाई चन्द्र किरनै नहीं।'

× × ×

'कहै पद्माकर उजागर गोबिन्द जो पै,
चूकिगे कहूँ तो एतो रोष रागियतु है।'

× × ×

'नीर के तीर उसीर के मन्दिर धीर समीर जुड़ावत जीरे;
ग्रीषम की क्यो गनै गरमी गजगोहर चाह गुलाब गँभीरे।'

× × ×

'ये अलि या बलि के अपराध मै आनि चढी कछु माधुरई सी।।
ज्यो कुच त्यो ही नितव चढे कछु ज्यो ही नितंब त्यो चातुरई सी।'

× × ×

'धोय गई केसर कपोल कुच गोलन की,
पीक लीक अधर अमोलन लगाई है।'

× × ×

'इक मीन बिचारयो बिध्यो बनसी,
पुनि जाल के जाय दुमाले पर्‌यो।'

× × ×

'कहै पद्माकर सुपास ही गुलाब पास,
खासे खसखास खसबोइन के ढेरे है,
त्यो गुलाव नीरन सो हीरन के हौज भरे,
दपति मिलाय हित आरती उजेरे है।'

× × ×

बिनती इती है कै हमेसहू हमे तौ निज,
पायन की पूरी परिचारिका गने रहौ ।
याही में मगन मनमोहन हमारो मन ,
लगनि लगाय लाल मगन बने रहौ ।

उपर्युक्त छद मे शब्दो का चुनाव कितना सुदर है । छोटे-छोटे सुदर,सरल मधुर और प्रचलित शब्द किलोल करते हुए वाक्यो को कैसे अच्छे ढग से चैतन्यमय बना रहे है । कवि ने इन सजीव और समर्थ वाक्यो से भापा का शरीर ऐसा सजाया है कि उसके भीतर से भाव आप-ही-आप बोल रहा है। अनुप्रासो का प्रयोग भापा के सौदर्य को बढा रहा है ।

रूप दुहुँ को दुहून सुन्यो सु रहै तब ते मनौ सग सदाही
ध्यान मे दोऊ दुहून लखै हरपै अग अग अनंग उछाही
मोहि रहे कब के यो दुहूँ पदुमाकर और कछू सुधि नाही
मोहन को मन मोहनी मै बस्यो मोहनी को मन मोहन माही ।

स्वच्छ, सरल और मधुर प्रवाहवाली इस भापा-नदी मे भाव-तैराक कैसा मजे मे विना परिश्रम के तैर रहा है और भी देखिए –

ए व्रजचद चलो किन वा व्रज लूकै बसत की ऊकन लागी
त्यो पदुमाकर पेखौ पलासन पावक-सी मनौ फुकन लागी
वै व्रजवारी बिचारी बधू बनि बावरी लौ हिय हूकन लागी
कारी कुरूप कसाइनै ऐसी कुहू-कुहू क्वलिया कूकन लागी।

बसत मे बेचारी विरहिणी व्रजबालाओ की दशा का प्रतिबिंब कितना स्पष्ट और हृदय पर चोट करनेवाला है । दूध और पानी के समान भाव और भाषा, दोनो एक मे ऐसा मिल गए है कि बस देखते ही बनता है । ये तीन उदाहरण इस बात को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है कि सुकवि पद्माकर का भापा पर पूर्ण अधिकार था । वह उसे अच्छे-से-अच्छे ढग मे सजा सकते थे ।

जब किसी अधिकारी व्यक्ति को अपने अधिकार का दुरुपयोग करते देखा जाता है, तब सहृदय दर्शको को दु ख होता है । अनधिकारी से यदि बात बिगड जाय, तो उसकी कोई परवा नही करता । पद्माकरजी का भापा पर पूर्ण अधिकार था । ऐसा होते हुए भी खेद के साथ कहना पडता है, कही-कही, और ऐसे स्थल कम नही है, उन्होने भाषा के साथ खिलवाड की है । पुराने सभी कवियो ने, कविनिरकुशता के कारण कहिए या प्रचलित प्रथा के अनुरूप कहिए, शब्दो के रूप मे मनमाने परिवर्तन किए है । इसे

भाषा में गुण-दूषण तथा भाव-अपहरण

विचारो की भली भाँति प्रकट कर सकने की शक्ति जिस भाषा में जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह भाषा उत्कृष्ट मानी जायगी। शब्दो का चुनाव, वाक्यो का सुष्ठु न्यास और निर्माण जिस भाषा मे उपयुक्त होगा, वही भाषा भाव प्रकट करने मे अधिकाधिक समर्थ होगी। जिन शब्दो का सर्वसाधारण से परिचय है, जिनका व्यवहार अधिक होता है तथा जो सुनने मे कानो को भले लगते है, उनका प्रयोग वाक्य को सरल, मधुर और प्रसाद-गुण से पूर्ण बनाता है। ऐसे सुदर शब्दो से सगठित वाक्य जब भाव-विशेष को प्रकट करने के लिये एक आकषक शैली द्वारा गुफित होते है, तब भाषा जगमगा उठती है, और भाव श्रोता अथवा पाठक के सामने मूर्तिमान् होकर नृत्य करता दिखलाई पडता है। पर जब अप्रचलित कर्णकटु शब्दो से वाक्य सजाया जाता है तथा उसका न्यास समुचित नही होता, तब भाषा अप्रिय, क्लिष्ट और भद्दी जान पडती है। कविता के लिये सुदर भाषा का व्यवहार परमावश्यक है। एक बात और है, कविता मे शब्दो का नाद-साम्य कभी कभी अत्यत आकर्षक और सौदर्यवर्द्धक जान पडता है। इसी नाद-साम्य को कवि लोग अनुप्रास के रूप मे अपनाते है। परतु नाद-साम्य की भी एक सीमा है। भाषा के शृगार के लिये, भाव को विशेष रूप से झलका देने के लिये सीमा के भीतर जैसे अनुप्रास उपयोगी है, ठीक उसी प्रकार सीमा के बाहर अनुप्रासो की भरमार भाषा को भद्दी और भाव को विकृत कर देती है। सुकवि पद्माकर अच्छी भाषा लिखना जानते थे। उनमें सरल, मधुर और प्रचलित शब्दो के चुनने की शक्ति थी। उनका वाक्य-विन्यास सहज और आकर्षक होता था। इसी कारण से उनकी भाषा दीपमालिका के समान उज्ज्वल और जगमगाती हुई है। कुछ उदाहरण देकर हम अपना मत स्पष्ट कर देना चाहते है –

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोबिंद को,
  श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ;
कहै पदुमाकर तिहारी छेम छिन - छिन ,
  चाहियतु प्यारे मन मुदित घने रहौ।

लोचैं परी सियरी परंजक पैं
बीती घरी न खरी-खरी सोचैं ।
कहै पद्माकर सु पास ही गुलाबपास,
खासे खसखास खसबोइन के ढेरे हैं;
त्यो गुलाब-नीरन सो हीरन के हौज भरे,
दंपति मिलाय हित आरती उजेरे हैं ।
नीर के तीर उसीर के मंदिर धीर समीर जुड़ावत जीरे;
ग्रीषम की क्यो गनै गरमी गजगौहर चाह गुलाब गंभीरे ।
गो गृह-काज गुवालन के कहे देखिबे को कहूँ दूर को खेरो
ग्वाल भो बोलि गोपाल कह्यो सु,
गुवालिनी पैं मनौं मोहनी डारी ।
श्रवण चित्र शुभ स्वप्न मैं पुनि परतच्छ निहारि ।
कहै पद्माकर परागन मैं पौन हूँ मैं,
पानन मैं पीक मैं पलासन पगंत है ।
पातकी पपीहा जल-पान को न प्यासो, काहू
बियित वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है ।
या अनुराग की फाग लखौ जहँ रागती राग किशोर किशोरी ।
उठे अंकुर प्रेम के, मनहु हेम के खेत ।
बावरी लौं बूझति बिलोकति कहाँ तू बीर,
जानै कहा कोऊ प्रेम प्रेम हटवारे की ।
त्यो पद्माकर गावती गीत रिझावती भाव बताय नवीने;
छोटी-सी छाती छुटी अलकें अति बैस की छोटी बडी परबीने ।
राधिका की कहवत कहि दीजो मोहन सों,
रसिक शिरोमणि कहाय धौं कहा कियो ।
रूप के गुमान तिल उत्तमा न आनै उर,
आनन निकाई पाई चंद्र किरनै नहीं ।
सोच इहै इक बाल बधू बिन देहिगो अंगद को युवराई ।
छाय बिछाय पुरैन के पातन लेटती चंदन की चवकी मैं ।
करहु कहा पीकन लगे, पिक पापी चहुँ ओर ।
ताहू पैं गोपाल कछु ऐसे ख्याल खेलत है,
मान मोरिबे की देखिबे की करि साधा को ।
कहै पद्माकर उजागर गोबिंद जो पैं,
चूकिगे कहूँ तौ एतो रोर रागियतु है ।

हम बहुत बडा दोष नही मानते हैं, परन्तु अनुचित अनुप्रासो के बोझ के तले दबाकर भाव को कुचल देना दोष अवश्य है ।

विस्तार-भय से अधिक उदाहरण देना उचित नही प्रतीत होता है; परंतु हिम्मतबहादुर-विरुदावली मे तो ऐसे स्थल भरे पडे है । भाषा को अनुप्रास के फेर मे डालकर इस प्रकार विकृत करना हमे तो निंद्य जान पडता है । शब्दों के चुनाव तथा उनके रुप-परिवर्तन मे भी पद्माकर ने पूर्ण निरकुशता से काम लिया है । कुछ उदाहरण यहाँ पर दिए जाते है –

कहै पद्माकर गयल मैं विश्राम सो,
सरोजन के दाम सो जो सरद समत मैं ।
जागे वही-वही फिरी वही चित्र औ गुपित्र को ।
कहै पदमाकर सुनौ तौ हाल हामी भरौ,
लिखौ कहौ लैकै कहूँ कागद कलम दोत ।
ये अलि या बलि के अधरान मैं,
आनि चढी कछु माधुरई-सी ।
ज्यो कुच त्यौं ही नितब चढे कछु,
ज्यो ही नितब त्यो चातुरई-सी ।
रति विपरीति रची दंपति गुपति अति,-
मेरे जानि मानि भय मनमथ नेजे तैं;
कहै पदमाकर पगी यो रसरग जामैं,
खुलिगे सु अग सब रगनअमेजे तैं ।
पचई मुदिता षष्ठई, है अनुसयना सोय ।
मोहि झकझोरि डारी कचुकी मरोरि डारी,
तोरि डारि कसनि बिथोरि डारी बेनी त्यो ।
धोय गई केसरि कपोल कुच गोलन की,
पीक लीक अधर अमोलन लगाई है ।
इक मीन बिचारचो बिंध्यो बनसी,
पुनि जाल के जाय दुमाले परचो ।
वा विधि साँवरे रावरे की न,
मिले मरजी न मजा न मजाखें ।
रैन दिन चैन है न मैन है हमारे बस,
ऐन मुख सूखत उसास अनुसारे सो ।
कोचै तकै यहि चाँदनी ते अलि
याहि निवाहि बिथा अब लोचै

इस छद में पद्माकरजी ने 'विभ्रम हाव' का जो सुदर चित्र खीचा है, वह अनुपम है।

> प्रानन के प्यारे तन-ताप के हरनहारे,
>
> नद के दुलारे व्रजवारे उमहत हैं,
>
> कहै पद्माकर उरुझे उर अतर यों,
>
> अतर चहे हू जे न अतर चहत हैं।
>
> नैनन बसे हैं अग अग हुलसे हैं,
>
> रोम रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं;
>
> ऊधो वै गोविंद कोऊ और मथुरा में,
>
> यहाँ मेरे तौ गोविंद मोहि मोहि में रहत हैं।

इस छद मे कितनी तन्मयता, कोमलता और अस्पष्ट व्याकुलता भरी गई है।

> मूधरो जो हो तो माँगि लेतो और दूजो कहूँ,
>
> जातो बन खेती करि खातो एक हर को,
>
> या तो पद्माकर न मानत है नाथ चलै,
>
> भुजन के साथ है गिरैया अजगर को।
>
> मैं तो याहि छोडो पै न मोको यह छोडत है,
>
> फेरि ले री फेरि व्याधि आपने वगर की;
>
> सैल पै चढत गहि ऊरध की गैल गगे,
>
> कैसो बैल दीन्हो जो न गैल गहै घर की।

गगा-स्नान करके भक्त शिवलोक को जा रहा है। वृषभवाहन का बैल उसके साथ है। भक्त जानता है कि गगामैया ने मुझे खेती करने को बैल दिया है, पर उसकी अटपटी चालसे खीझकर गगाजीसे वह प्रार्थना करता है कि गगाजी आप अपना बैल फेर ले। इससे मेरा काम न चलेगा। अगर बैल सीधा होता, तो उसकी जोडी मिलाने को दूसरा बैल कही से माँग लाता, और एक हर की खेती करके जीविका निर्वाह करता। पर यह तो घर ले जाने के बजाय मुझे ऊर्ध्व लोक को लिए जा रहा है। पद्माकरजी ने इस छद मे भक्त के भोलेपन का चित्रण बडे ही मार्के का किया है, और हास्य-रस की पुट तो इतनी हृदयग्राहिणी है कि कुछ कहते नही बनता है। गगा स्नान से शिवलोक प्राप्त होता है, यह भाव पद्माकरजी ने जिस अद्भुत व्यापार से दिखलाया है, वह प्राय अद्वितीय है।

> प्रलय पयोनिधि लौ लहरै उठन लागीं,
>
> लहरा लग्यो त्यो होन पौन पुरवैया को;

कैसी भई तुम्हें गग की गैल में गीत मदारन के लगे गावन
कहैं पद्माकर त्यो राग बाग बन कैसो,
तैसो तन ताप ताप तारापति तापतौ ।
कै गई काटि करेजन के, कतरे-कतरे पतरे करिहाँ की ।
अच्छहि निरच्छ कपि सच्छ है उचारीं इमि,
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछु वै न गत हौं ।
सुमृति पुराण वेद आगम कह्यो जो पंथ,
आचरत सोई सुद्ध करम करैया है ।
देखै देवतालो भई छिधि के खुसाली
काली की फनाली पे नचत बनमाली है ।

ऊपर जो अश उद्धृत किए गए है, उनसे स्पष्ट है कि पद्माकरजीने हिमत के अनुप्रास के लिये समय का 'समत' कर दिया है तथा होत के अनु-प्रास के लिये दावात 'दोत' हो गई है, और फिर चरित्र को तुक भिडाने को 'चित्र औ गुपित्र' बनाए गए है। इसी प्रकार माधुरी–मधुराई के लिये माधुरई, चातुरी–चतुराई के लिये चातुरई, गुप्त के लिये गुपति, रगामेजी, षष्ठ, गोल कुचन, वशी, मजाक आदि के लिये रगनअमेजे, पष्ठई, कुच गोलन, बनसी, मज़ाखै आदि विकृत रूपो का प्रयोग हुआ है। खसवोय, मज़ा की मजु आदि भद्दे प्रयोगो का अगीकार भी पद्माकर के काव्य में पाया जाता है। × × × × × × साधारण भाव को पद्माकरजी ने अपने छद मे इस प्रकार जगमगा दिया है कि उनके काव्य-कौशल की बरबस प्रशसा करनी पडती है। उनके कोई-कोई छद तो इतने सुदर बन पडे है कि वे बडे बडे कवियो के उत्कृष्ट छदो की बराबरी करते है। पद्माकरजी अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी कविता बराबर लोक-प्रिय रही है यह बात भी निर्विवाद है। यहाँ पर हम उनके कुछ उत्कृष्ट छद उद्धृत करते हैं–

बछरै खरी प्यावै गऊ तेहिको
पदुमाकर को मन लावत है,
तिय जानि गरैया गही बनमाल
सु ऐंचे लला इच्यो आवत है।
उलटी कर दोहनी मोहनी की
अंगुरी थन जानिकै दावत है;
दुहिबो औ दुहाइबो दोउन को
सखि देखत ही बनि आवत है।

बाँची वही वाकी गति देखिकै विचित्र रहे,
चित्र के-से लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है। ५।
गंगा के चरित्र लखि भाष्यो यमराज यह,
एरे चित्रगुप्त मेरे हुकुम मैं कान दे,
कहै पद्माकर नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दे।
देखु यह देवनदी कीन्हे सब देव याते,
दूतन बुलायकै बिदा के वेगि पान दे;
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खतजान दे वही को बहि जान दे। ६।
यमपुर द्वारे लगे तिनमैं केवारे,
कोऊ हैं न रखवारे ऐसे बन के उजारे हैं। १०।
छेम की छहरि गंगा रावरी लहरि,
कलिकाल को कहर यमजाल को जहर है। १२।
पापन की पाँति भाँति-भाँति बिललाति परी,
यम की जमाति हलफपनि हिलति है। १८।
दूत हबकाने चित्रगुप्त चुपकाने,
औ जकाने यमजाल पाप-पुंज लुज ह्वै गए। १६।
कहै पद्माकर प्रयास बिन सिद्धि,
मानत न कोऊ यमदूतन की दाह दब;
कागद करम करतूति के उठाय धरे,
पचि-पचि पेंच मैं परे हैं प्रेतनाह अब। २०।
यम को न जोर जब पापिन पै चल्यो तब,
हाथ जोरि गगाजू सो चुगुली करै खरे। २६।
जा दिन ते भूमि मैं भगीरथ ने आन,
जागजानी गगधारा या अपारा सब काज की;
ता दिन से जानी-सी बिकानी बिललानी सी,
दिखानी राजधानी यमराज की। २८।
जम के जसूस बिनै जम सो हमेसा करै,
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है;
बडे-बडे पापी औ सुरापी द्विजतापी तहाँ,
चलन न पावैं कहूँ हुकुम हमारो है।

भीर भरी झाँझरी बिलोकि मँझधार परी,
धीर न धरात पद्माकर खेवैया को।
कहा वार कहा पार जानी हूँ न जात कछू,
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को,
बहन न पैहैं घेरि घाटहि लगैहैं ऐसो,
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को।

मँझधार मे पडी और तूफान से डगमगाती नाव का कैसा सजीव चित्र है। और भक्त की दृढ भक्ति और विश्वास का कैसा सच्चा उद्गार है। एक बहुप्रचलित और साधारण भाव का सत्कार सच्चे कवि पद्माकरजी द्वारा कैसे अनोखे ढग से हुआ है। पद्माकरजी ने वसत और पावस का वर्णन बहुत सुदर किया है। इन वर्णनो मे उन्होने ऐसे सजीव चित्र खीचे है कि उनका आनद पढने मे ही प्राप्त होता है। इतना सब होते हुए भी हमें यह कहने मे बिलकुल सकोच नही है कि पद्माकरजी के भावो में अधिक गभीरता कही भी नही मिलती है। पद्माकरजी की एक भावमयी उक्ति यहाँ पर और दी जाती है –

ब्याध हू ते बिहद असाधु हौं अजामिल ते,
ग्राह ते गुनाही कहो तिनमैं गनाओगे;
स्योरी हौं न सुद्ध हौं न केवट कहूँ को,
त्यो न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे।
राम सो कहत पदुमाकर पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पार हू न पावोगे,
सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलक सुनि,
साँचो हौं कलकी ताहि कैसे अपनाओगे।

पद्माकरजी ने अपने भावो को घुमा-फिराकर अनेक बार वर्णित किया है। यहाँ पर एतादृश कुछ उदाहरण दिये जाते है –

श्रीगंगाजी के प्रभाव से यमराज और उनके सेवको, विशेष करके चित्रगुप्त की दुर्दशा का वर्णन कवि इस प्रकार करता है –

गंगालहरी

जकि से रहे हैं जम थकि से रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन-ताप है,

हमना लिखैंगे वही गमुना जु खैहै हम,
जमुना बिगारे देत कागद हमारे को।
३. लेखा भए डचोढ रोजनामा को परेखो कौन,
खाता भयो खतम फरद रद ह्वै गई।

स्मरण रहे कि ग्वाल कवि की जमुनालहरी की रचना गगालहरी के पूर्व की है।

श्रीगगाजी मे स्नान करके पातकी के शिवरूप पाने का वर्णन कई छदों मे इस प्रकार है –

ही तौ पचभूत तजिवे को तक्यो तोहि पर,
तू तौ कर्‌यो मोहि भलो भूतन को पति है,
कहै पद्माकर सु एक तन तारिबे मैं,
कीन्हे तन ग्यारह कहौ सो कौन गति है।
मेरे भाग गग यही लिखी भगीरथी तुम्हैं,
कहिए कछूक तौ कितेक मेरी मति है,
एक भवसूल आयो मेटिवे को तेरे कूल,
तेहि तौ त्रिसूल देत बार न लगति है।१३।
लैहै छीनि अबर दिगवर कै जोरावरी,
वैल पै चढाय फेरि सैल पै चढावैगी,
मुडन के माल की भुजगन के जाल की,
सु गगा गजखाल की खिलति पहिरावैगी।१६।
जौ लौ चतुरानन चितैबे चारो ओर तौ लौ,
वृप पै चढाय लै गयोई वृपपति है।२३।
जाहु जनि पथा उत विपति विशेष होति,
मिलैगो महान कालकूट खान-पान मैं,
कहै पद्माकर भुजगन वँधैगे अग,
सग मैं सुभारी भूत चलैगे मसान मैं।
कमर कसैंगे ततकाल गजखाल बिन,
अबर फिरैगो तू दिगवर दिसान मैं।२४।
मीच समै तेरे उत आय गए कठ इत,
व्यापि गयो कठ कालकूट सो जहर है,
आप चढी सीस मोहि दोन्ही बकसीस औ,
हजार सीसवारे की लगाई अटहर है।

कहै पदमाकर सु ब्रह्मलोक विष्णुलोक,
नाम लैकै कोऊ सिवलोक को सुधारो है,
बैठी सीस नगा के तरंगा है अभंगा ऐसी,
गंगा ने उठाय दीन्हो अमल तिहारो है । २९ ।
दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्त देत,
जम को जरब देत पापी लेत शिवलोक । ३४ ।
जहाँ-जहाँ जम की जमाति कीन करामाति,
तहाँ-तहाँ फिरै देवि गगा की दुहाई है । ३५ ।
जौ लौ लगे कागद विचारन कछुक तौ लौ,
ताके कान परी धुनि गगा के चरित्र की;
वाके सीस ही ते ऐसी गगाधार वही जामै
वही-वही फिरी वही चित्र औ गुपित्र की । ४० ।

उपर्युक्त १३ उदाहरणो में कवि ने बार-बार उन्ही भावो की-उन्ही विचारो की-पुनरावृति-सी की है। यह ठीक है कि एक बार जो विचार प्रकट किया गया है, दूसरी बार उसमे नाम-मात्र का थोडा-सा हेर-फेर कर दिया गया है, परतु फिर भी केद्रीय विचार-मुख्य भाव-ज्यो-का-त्यो है। इस प्रकार उन्ही विचारो के दुहराए-तिहराए जाने से यह बात प्रकट हो जाती है कि कवि का विचार-क्षेत्र सकुचित है। इच्छा करते ही कवि के सामने नये-नये विचार हाथ जोडकर सामने नहीं आते है। कवि के पास जो थोडे-से विचार है, उन्ही से वह बार-बार काम लेता है। 'गगालहरी' ५५ छदो मे समाप्त एक छोटी-सी पुस्तिका है। इन ५५ छदो में से जो १३ उदाहरण हमने ऊपर दिए है, वे प्राय. एक ही प्रकार के विचार के समर्थक है। आगे हम ६ उदाहरण और भी देगे, जिनमें भी एक ही प्रकार के विचार है। इस बात से पाठकगण अनुमान कर सकते है कि पद्माकरजी के पास विचारो की कितनी कमी है। फिर इन विचारो मे मौलिकता कितनी है, यह बात भी विचारणीय है। देखिए –

१ तव शिवजलजाल नि सृत यर्हि गगे
सकलभुवनजाल पूतपूत तदाऽभूत् ,
यमभटकलिवार्ता देवि लुप्ता यमोऽपि
व्यधिकृत वरदेहा पूर्ण कामा सकामा ।
२. ग्वाल कवि अधिक अनीतै विपरीतै भई,
दीजिए तुराय वेगि कुलुफ किवारे को ;

का संकलन करके यहाँ उद्धृत करना हमें अभीष्ट नही, क्योकि उससे इस नोट का कलेवर बहुत बढ जायगा। हाँ, हिंदी के जिन पुराने कवियो के भावो को पद्माकरजी ने अपनाया है, उनके कुछ उदाहरण यहाँ पर अवश्य दिए जाते हैं। सहृदय पाठक सदृश भावो को साथ-साथ पढकर स्वय निश्चय कर लेंगे कि कहाँ पर पद्माकरजी भावापहरण मे सफल हुए है, और कहाँपर असफल। इतनी बात तो हम निश्चय-पूर्वक कह सकते है कि पद्माकरजी के सपूर्ण भावो का विश्लेपण करने से बहुत कम ऐसे भाव मिलते हैं, जो निश्चय-पूर्वक पद्माकरजी के मस्तिष्क की उपज कहे जा सकें। अब हम सदृश भावो के कुछ उदाहरण देते हैं –

मिलि बिहरत बिछुरत मरत दपति अति रस लीन,
नूतन विधि हेमत-ऋतु जगत-जुराफा कीन।

— बिहारी

जगत-जुराफा है जियत तज्यो तेज निज मान,
रूस रहे तुम पूस मैं यह धौ कौन समान।

— पद्माकर

ललित लाल लीला ललन बडी चिबुक छबि दून,
मधु छाक्यो मधुकर पर्‌यो मनो गुलाब-प्रसून।

— बिहारी

जनु मलिंद अरबिंद बिच बस्यो चाहि मकरद,
इम इक मृगमद बिंदु सो किए सुबस ब्रजचद।

— पद्माकर

चिरजीवो जोरी जुरै क्यो न सनेह गँभीर,
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर।

— बिहारी

रहौ देखि दृग दै कहा तुहि न लाज कछु छूत,
मै बेटी वृषभान की तू अहीर को पूत।

— पद्‌माकर

भगी देखिकै सकि लकेसबाला,
दुरी दौरि मदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरिगो बालि को पूत फूल्यो,
सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो।

— केशव

मोहिं करि नगा अग-अगन भुजगा बाँधो,
एरी मेरी गगा तेरी अद्‌भुत लहर है । ३७ ।
मुडन की माल देखो भाल पर ज्वाल कीबो,
छीनि लीबो अबर अडबर जहाँ जैसो ,
कहै पद्माकर त्यो बल पै चढाइबो,
उढाइबो पुरानी गजखाल को भलो तैसो ।
नगा करि डारिबो सु भगा भखि डरिबो,
सु गगा दुख मानिबो न बुझै ते कछू वैसो ,
साँपन सिंगारिबो गरे मै बिष पारिबो,
सु तारिबो जु ऐसो तौ बिगारिबो कहौ कैसो ।

श्रीगगाजी मे स्नान करनेसे भक्त शिव हो जाता है तथा उसे शिवलोक प्राप्त होता है, यह भाव पद्माकरजी के पास है। इस भाव का प्रयोग वे बार बार किंचित् हेरफेर के साथ 'गगालहरी' मे करते है । कविजी एक बार कहते है 'गगा गजखाल की खिलति पहिरावैगी', तो दूसरी बार उनकी उक्ति है 'कमर कसैगे ततकाल गजखाल' फिर उसी बात को तीसरी बार आप यो प्रगट करते है 'उढाइबो पुरानी गजखाल को भलो तैसो'। इसी प्रकार दिगबर करना, ज़हर खिलाना, साँपोसे बँधवाना आदि बाते बार बार दुहराई जाती जिस कवि का विचार-क्षेत्र व्यापक होगा, वह चर्वित चर्वण के पीछे न पडेगा उसकी बुद्धि के इशारे पर सैकडो भाव दौड-दौडकर सेवा करने को आवेगे, और वह उन भावो मे से मनमाने भावो को अपनी सेवा मे लेगा। खेद है, पद्माकरजी अपने विचारो को बार-बार दुहराकर मानो इस बात की दुहाई देते है कि हमारे पास विचारो की कमी है ।

पद्माकरजी ने अपने काव्य में जिन भावो का प्रस्फुटन किया है, उसमें कितने उनके है तथा कितने उन्होने अपने पूर्ववर्ती कवियो से उधार लिए है, यह बात भी विचारणीय है । यो तो हिंदी का पुराना कोई भी कवि ऐसा नही है जिसने अपने पूर्ववर्ती कवियो के भाव न लिए हो, फिर भी किसी ने कम लिए है और किसी ने अधिक । इसके अतिरिक्त पुराने भाव को लेकर भी बाद के कवियो ने अपने काव्य कौशल से उक्त भाव को बहुत कुछ अभिनव बनाने का प्रयत्न किया है । पद्माकरजी ने भी पुराने भावो को दिल खोल करके अपनाया है । उनके जगद्विनोद मे बीसो छद तो पुराने सस्कृत कवियो के बनाए श्लोको के अनुवाद मात्र है । ऐसे अनेक उदाहरण समय समय पर हिंदी की पत्र पत्रिकाओ मे निकल चुके हैं। अमरुक और उद्‌भट के अनेक अनेक सुश्लोको का अनुवाद पद्माकरजी ने सफलता-पूर्वक किया है। उन सब

'ग्वाल' कवि मूल बरषा को है जजन जप ,
जजन सु मूल वेद भेद बहु नीको है ,
वेदन को मूल ज्ञान ज्ञान मूल तारिबो त्यो ,
तारिबे को मूल नाम भानुनंदिनी को है।

—ग्वाल

करम को मूल तन, तन मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनद ही धरिबो ,
कहै 'पदुमाकर' त्यो आनद को मूल राज ,
राज मूल केवल प्रजा को भौन भरिबो ,
प्रजा मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ ,
मेघन को मूल एक यज्ञ अनुसरिबो ,
यज्ञन को मूल धन धन मूल धर्म अरु
धर्म मूल गगाजल बिंदु पान करिबो ।

—पद्माकर

चाहै सुमेरु को छार करै
अरु छार को चाहै सुमेरु बनावै ,
चाहै तो रक ते राव करै
चहै राव को द्वार-ही-द्वार फिरावै ।
रीति यही करुनामति की
कवि 'देव' कहै बिनती मोहि भावै ,
चीटी के पाँय मै बाँधि गयंदहि,
चाहै समुद्र के पार लगावै ।

— देव

द्यौस को राति करै जो चहै
अरु राति हू को करि द्यौस दिखावै ,
त्यो 'पद्माकर' सील को सिधु
पिपीलिका के बल फील फिरावै ।
यो समरत्थ तनै दसरत्थ को
सोई करै जो कछू मन भावै ;
चाहै सुमेर को राई करे रचि
राई को चाहै सुमेर बनावै ।

- पद्माकर

देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैए फल चारि फूल एक दै धतूरे को।

— पद्माकर

सकुचि न रहिए साँवरे सुनि गरबीले बोल,
चढति भौंह, बिकसत नयन, बिहँसत गोल कपोल

— मतिराम

चढति भौह धरकत हियो हरपत मुख मुसकात,
मद छाकी तिय को जु पिय छबि छकि परसत गात।

— पद्माकर

आजु को रूप लखे ब्रजराज को आँखिन को फल आजु ही पायो।

— मतिराम

आजु की या छवि देखि भटू अब देखिबे को न रह्यो कछु बाकी।

— पद्माकर

चाहति फल तेरो मिलन निसि-बासर वह बाल,
कुच सिव पूजति नैन-जल बूंद मुकुतमय माल।

— मतिराम

यो श्रमसीकर सुमुख ते परत कुचन पर बेस,
उदित चद्र मुकुता छतनि पूजत मनहुँ महेस।

— पद्माकर

कविवर पद्माकरजी श्रृगार-रस का वर्णन करने मे बडे कुशल थे। उन्होने श्रृगार-रस की जैसी सुदर धारा बहाई है, वैसी थोडे ही कवि बहा सके है। हिंदी के पुराने श्रृगारी कवियो की अनेको सूक्तियाँ ऐसी है, जिनको आजकल का सभ्य-समाज कुरुचि-प्रवर्तिनी बतलाता है। अब वैसे वर्णन करनेवाला कवि आदर का पात्र नही माना जाता। पद्माकरजी के जगद्विनोद मे बहुत-से ऐसे वर्णन है, जिनको वर्तमान सुरुचि के समर्थक लोग घृणा की दृष्टि से देखेगे। हमे खेद के साथ लिखना पडता है कि पद्माकरजी के दस-पॉच छद तो सचमुच महाभ्रष्ट है। उनमे सचमुच घोर अश्लीलता की गदी दुर्गंधि भरी हुई है। इच्छा न होते हुए भी इस कारण केवल दो-तीन छद यहाँ पर

पाँव धरै अलि ठौर जहाँ
तेहि ओर ते रग की धार-सी धावति,
मानो मजीठ की माठ ढुरी
एक ओर ते चाँदनी बोरति आवति ।
— देव

घरति जहाई जहाँ पग है सु प्यारी तहाँ,
मजुल मजीठ ही की माठ-सी ढुरत जात ।
— पद्माकर

हौंही व्रज वृदावन मोही मै बसत सदा,
जमुना तरग स्याम रग अवलीन की ,
चहूँ ओर सुदर मघन वन देखियत,
कुजन मै सुनियत गुजन अलीन की ,
वसीबट तट नटनागर नटतु मो मैं,
रास के विलास की मधुर धुनि बीन की ।
भरि रही भनक बनक ताल तानन की,
तनक-तनक तामैं झनक चुरीन की ।
— देव

खनक चुरीन की त्यो ठनक मृदगन की,
रुनुक-झुनुक सुर नूपुर के जाल की ,
कहै 'पद्माकर' त्यो बाँसुरी की धुनि मिलि,
रह्यो बँधि सरस सनाको एक ताल को ।
देखते बनत पै न कहत बनै री कछू,
विविध विलास यो हुलास यह ख्याल को ;
चद छवि रास चाँदनी को परकास,
राधिका को मद हास रासमडल गुपाल को ।
— पद्माकर

मो मन मेरी बुद्धि लै करि हर को अनुकूल ,
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर के फूल ।

× × ×

सकर पायन मैं लगि रे मन थोरे ही बातन सिद्धि सोहाई ,
आक धतूरे के फूल चढावत रीझत है तिहूँ लोक के साँई ।
— मतिराम

उनके पास भावों की कमी है भावों का उन्होंने सफलता-पूर्वक प्रयोग नहीं किया, अधिकाश उनके पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रयुक्त हो चुके हैं। इतना होने पर भी पद्माकरजी महाकवि हैं, और बडे बडे कवियों की पंक्ति मे उनका विशेष स्थान है। जब तक हिंदी-साहित्य मे व्रजभाषा कविता की सत्ता बनी है, तब तक उनकी कृति, कीर्ति और महत्ता अमर है।

'सूरदास की सुरभित सुमनमाला से सुकुमार शरीर सजाकर, तुलसीदास के कलित-कोकिल-काकली-कलरव से गुंजायमान होकर, देव, बिहारी, मतिराम के शीतल मन्द सुगन्ध समीर से सनकर केशव, भूषण, चन्द, हरिश्चन्द्र के अमन्द-मन्दार-मरन्द और सेनापति, दास, तोष, पद्माकर इत्यादि के प्रफुल्ल-पद्माकर-पराग मे पगकर, भावमयी मधुर कोमल-कान्त पदावली रूप अमल कमल-सा कलेवर धारण किये हुए हिन्दीसाहित्य अवश्य ही समग्र नन्दन-वन के सरस वसन्त की भाँति शोभित होता है।'

— डॉ बलदेवप्रसाद मिश्र
(हितकारिणी अगस्त १९२०)

कहै 'पद्माकर' त्यो गजक गिजा है सजी,
सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है ।
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हे,
जिनके अधीन येते उदित मसाला है ।
तान तुक ताला है विनोद के रसाला है,
सुबाला है दुसाला है विसाला चित्रसाला है ।।

यह तो साधन और सामग्री के रूप मे विलास-वैभव का चित्रण हुआ । पद्माकर के काव्य मे व्यक्तिगत अलकरण एव विलास-सज्जा की छटा भी कम नही है । ऐसे वर्णनो मे चित्र सजीव रूप मे सामने नाच उठता है । जगत-विनोद मे वर्णित एक अभिसारिका की सज्जा यहा एक छन्द मे प्रस्तुत की जाती है ।

घूंघट की घूमकें, सु झूमके जवाहर के
झिलमिल झालर की भूमि लो झुलत जात ।
कहै 'पद्माकर' सुधाकरमुखी के हीर
हारन में तारन के तोम ते तुलत जात ।
मंद-मंद हैकल मतंग लो चलेई, भले
भूषन समेत भुज भूषन झुलत जात ।
घांघरे झकोरिन चहूंधा खोरि-खोरि हूं मे,
खूब खसबोह के खजाने से खुलत जात ।।

पद्माकर की वर्णन माधुरी के अन्तर्गत इनके ऋतु-वर्णनो का एक विशेष स्थान है । यो तो ये विभिन्न ऋतुओ के वर्णन भावो के उद्दीपक हैं, पर इनके अन्तर्गत ऋतु की स्थूल विशेषताए साकार रूप में आखो के सामने नाचने लगती है । पद्माकरने सभी ऋतुओ का दृश्यात्मक एव भावात्मक चित्र खीचा है । इसमे शिशिर का एक चित्र अभी दिया जा चुका है । यहा पद्माकर द्वारा प्रस्तुत वसन्त का एक वर्णन सुनिये –

औरे भांति कुंजन मे गुजरत भौंर भीर,
औरै डौर झौरन में बौरन के व्है गये ।
कहै 'पद्माकर' सु औरै भाति गलियान
छलिया छबीले छैल औरै छबि छ्वै गये ।
औरै भांति विहग समाज में अवाज होति,
अब ऋतुराज के न आज दिन द्वै गये ।

कवि पद्माकर की काव्य-माधुरी

पद्माकरभट्ट रीतियुग के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उनके काव्य में सेनापति के कवितो की गति, मतिराम की सुकुमार भाव-समृद्धि और देव की विशद चित्रात्मकता के एकसाथ दर्शन होते हैं।

पद्माकर को विभिन्न राजाओ से बहुत द्रव्य और साज-सामान दान में मिला था। कहते हैं इस प्रकार दान से उनको छप्पन गाव, छप्पन हाथी और छप्पन लाख रुपये प्राप्त हुए थे। ये जहाँ जाते थे बडे ठाट-बाट-लावलश्कर के साथ जाते थे। एक बार पद्माकर जयपुरमे वादा जा रहे थे। इनके दल को देखकर मार्ग में बूदी राज्य के निवासियो ने समझा कि किसी राजा ने आक्रमण कर दिया है। पद्माकर को जब उनकी इस धारणा का पता चला तो उनके भ्रम-निवारणार्थ उन्होने एक छन्द पढा जो इस प्रकार है -

सूरत के साह कहै, कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के।
देखि असबाव मेरो भरमें नरिन्द सबे,
तिनसो कहे में बैन सत्य सिरताज के।
नाम 'पद्माकर' डराउ मत कोऊ भैया,
हम कविराज है प्रताप महाराज के।।

इसी प्रकार के अन्य परिचयो से स्पष्ट होता है कि पद्माकर स्वाभिमानी और गुणग्राहक कवि थे। उनके भव्य ठाट बाट राजसी सन्मान और वैभव विलासपूर्ण जीवन का प्रभाव पद्माकर की रचनाओं में स्पष्टत प्रतिबिंबित है। इस विशेषता ने पद्माकर के काव्य को एक मनोरमता एव सपन्नता प्रदान की। उनके सभी प्रकारके वर्णनो में यह वर्णन वैभव-विलास छलका पडता है। इसके प्रमाण रूप उनके शिशिर ऋतु-दर्शन का एक प्रसिद्ध छद देखिए;-

गुलगुली गिलमें गलीचा है गुनीजन है,
चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है।

परन्तु प्रमुखतया पद्माकर उल्लास और हास-विलास के कवि है। यही कारण है कि उनके चित्रणो मे अधिक, प्रचुर और सजीव चित्र होली और फागुन के है। इन चित्रो मे दृश्यो, रूपो और भावो की मर्मस्पर्शी और कही-कही वडी चटकीली विविधता पाई जाती है। होली का उनका अति प्रसिद्ध चटकीला नाटकीय वर्णन एक छन्द मे देखिए –

फाग की भीर अभीरन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी, मन की 'पद्माकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी।
छीनि पितवर कबर ते सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय लला फिर आइयो खेलन होरी।

होली के अनुरूप हास्य-विनोद और हुडदंग का यह चित्र सजीवता एव यथार्थ क्रियाकलाप को प्रस्तुत करता है। यह फाग की एक सामूहिक झाकी है। पद्माकर ने इसकी ऐकान्तिक एव व्यक्तिनिष्ठ एव क्रियात्मक झाकिया भी प्रस्तुत की है। अनुराग-फाग की एक भावात्मक झाकी देखिए –

या अनुराग की फाग लखौ जहां रागती राग किसोर किसोरी।
त्यौं पद्माकर घाली घली फिर लाल ही लाल गुलाल की झोरी।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसरि रंग में बोरी।
गोरिन के रंग भींजिगो साँवरो साँवरो के रग भीजी सु गोरी॥

अनुराग की यह विलक्षण फाग है जिसमे एक-दूसरे का रग चढ जाता है। यह रग धुलता नही है, वरन धुलने से और चटकीला होता जाता है। यह साधारण रग नही। यही हाल असाधारण लाल गुलाल का भी है। पद्माकर के एक छद मे देखिए –

एकै सग धाये नदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगनि गये जु भरि आनद मढै नहीं।
धोय धोय हारी 'पद्माकर' तिहारी सौह,
अब तो उपाय एकौ चित्त मैं चढै नहीं।
कैसी करौं कहां जाऊँ कासो कहौं कौन सुनै,
कोऊ तौ निकासो जासो दरद बढै नहीं।
ये री मेरी वीर, जैसे तैसी इन आखिन सो,
कढिगो अबीर पै अहीर को कढै नहीं॥

औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग
औरै तन औरै मन औरै वन ह्वै गये

यह तो सभी का अनुभव है कि वसन्त एक विलक्षण मादकता को लेकर आता है। पद्माकरने वसन्त की उसी विकलता का, तुरन्त पडने वाले प्रभाव का वर्णन अपने छन्द मे किया है। वह ऋतुराज है अत उसका वह मादक प्रभाव उसके अनुरूप ही है। कवि की दृष्टि से उसकी यह विशेषता भला कैसे छिपी रह सकती है। परन्तु उसका यह मादक रूप सयोग की अवस्था-का है। वियोग की अवस्था मे उसका कुछ दूसरा ही रूप सामने आता है। गोपिकाओ के सन्देश के माध्यम से वियोगावस्था मे प्राप्त वासन्ती प्रभाव का वर्णन पद्माकर के शब्दो मे सुनिये –

पात विन कीन्हे ऐसी भाति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज है।
कहै 'पद्माकर' विसासी या बसन्त के सु,
ऐसे उतपात गात गोपिन के भुज है।
ऊधो यह सूधो सो सदेशो कहि दीजौ भलो,
हरि सो, हमारे ह्याँ फूले वन कज हैं।
किसुक गुलाब कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अंगारन के पुज है।।

इसी स्थिति मे पद्माकर द्वारा प्रस्तुत वर्षा-वर्णन भी वडा कारुणिक है। इसकी सरस विशेषता मे विषाद की छाया हृदय-द्रावक हो गई है। ऐसा जान पडता है कि वियोग की स्थिति मे वर्षा के रसमय दृश्यो का बार–बार आना असह्य सा हो गया है। तभी पद्माकर कहते है –

चचला चमकै चहु ओरन ते चाह भरी,
चरजि गई थी फेरि चरजन लागी री।
कहै 'पद्माकर' लवगन की लोनी लता,
लरजि गई ती फेरि लरजन लागी री।
कैसे धरौं धीर वीर त्रिविध समीरै तन,
तरजि गई ती फेरि तरजन लागी री।
घुमडि घुमड घटा घन की घनेरी अवै,
गरजि गई ती फेरि गरजन लागी री।

यह तो स्थिर सौन्दर की सुकुमारता का चित्रण हुआ। अब एक क्रिया–कलापमय ताल मे तैरते हुए अपने रूप और सौन्दर्य के सम्पर्क से ताल को सौन्दर्य और पवित्रता का गौरव प्रदान करती हुई छवि का चित्रण देखिये –

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूडै बहै उमहै वह बेनी।
त्यो 'पद्माकर' हीरा के हारन गग–तरग को सुख देनी।
पायन के रंग सो रगि जात सी भांति सी भांति सरस्वतिसेनी।
पैरे जहांइ जहां वह बाल तहॉ तहॉ ताल में होत त्रिवेनी॥

यह तो मौन्दर्य का अनलकृत चित्रण हुआ। पद्माकर के काव्य मे ऐसे भी अनेक वर्णन मिलते है, जिनमे रूप–सज्जा, चेष्टा आदि सब की साथ छवि का चित्रण किया गया हो, एक इसी प्रकार का छन्द यहा पर प्रस्तुत है '–

उझकि झरोखा व्है झमकि झुकि झांकी बाम,
स्याम की बिसरि गई खबरि तमासा की।
कहै 'पद्माकर' चहूँधा चैत-चॉदनी सी,
फैलि रही तैसिए सुगध सुभ स्वासा की।
तैसी छवि तकत तमोर की तरौनन की,
बैसी छवि बसन की बारन की बासा की।
मोतिन की मांग की मुखी की मसुक्यान हू की।
नैनन की, नथ की, निहारिबे की, नासा की॥

वर्णन और रूप–माधुरी के ममान ही पद्माकर की भाव–माधुरी है जो कि कही चेष्टाओ द्वारा और कही उक्तियो द्वारा वणित हुई है। प्रिय के रूप और गुण के प्रभाव से प्रभावित उसके सतत दर्शन और सपर्क का वरदान चाहने वाली प्रेयसी की व्यथा को पद्माकर के एक छन्द मे सुनिए –

पीतम के सग ही उमगि उडि जैवे को,
न ऐसी अग अनग परद पँखिया दई।
कहै "पद्माकर" जै आरती उतारै चौर ढारै,
श्रम हारै पै न ऐसी सखियां दई।
देखि दृग दैव ही न नेकहू अघैये,
इन ऐसे झकाझुक में झपाक झँखियॉ दई।
कीजै कहा राम, स्याम आनन बिलौकिबे को,
बिरचि बिरंचि ना अनन अँखिया दई।

वैयक्तिक क्रिया-कलाप से युक्त होली की चेष्टा और प्रभाव की एक झलक पद्माकर के एक अन्य छन्द मे दर्शनीय है –

आई खेलि होरी घरे नवल किशोरी
कहूँ बोरी गई रग में सुगधन झकोरै है।
कहै 'पद्माकर' इकंत चलि चौकी चढ़ि,
हारन के बारन के फंद बद छोरै है।
घांघरे की घूमनि सु ऊरुनि दुबीचै दाबि,
आंगिहू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
दंतन अधर दाबि दूनरि भई सी चापि,
चौवर पचौवर के चूनरि निचोरै है।

यह प्रधानतया पद्माकर की वर्णन-माधुरी के कुछ नमूने है, जिसमें पद्माकर ने वस्तु, परिस्थिति, क्रिया-कलाप और सज्जा-सामग्री का चित्रण किया है। सवारने सिगारने के भी अनेक सुन्दर छन्द पद्माकर की रचना मे उपलब्ध होते है, परन्तु बिहारी या मतिराम के समान रूप-सौन्दर्य के चित्र इनमे कम है। अग-प्रत्यगो के सहज सौन्दर्य की जो छटा बिहारी की "गात रूप लखि जात दुरि, जातरूप को रूप" जैसी उक्तियो, देव की 'बिना बेनी बदन बदन सोभा बिकसी' जैसी पक्तियो और मतिराम के 'ज्यो-ज्यो निहारिये नेरे व्है नैननि त्यो-त्यो खरी निकरै सी निकाई' ··· जैसे छन्दो मे मिलती है, वह पद्माकर के छन्दो में विरल है। पद्माकरने गतिशील एव क्रिया-कलाप युक्त रूपो एव जगर-मगर करने वाले अलकारो-आभूषणो का वर्णन विशेष किया है फिर भी कही-कही रूपको माधुरी और सुकुमारता दिखाई दे जाती है। इस प्रकारका रूप और सुकुमारता का चित्रण करने वाला छन्द यहा दिया जाता है –

सुन्दर सुरग नैन सोभित अनग रग।
अग-अग फैलत तरग परिमल कै।
बारन के भार सुकुमारी को लचत लंक,
राजै परजक पर भीतर महल के।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जन रीझे जाहि,
अबर अमर के सकल जल थल के।
कोमल कमल के गुलाबन के दल के,
सुजात गडि पायन बिछौना मखमल के॥

भला गुलाब के फूलो का गजरा जैसी सुकुमार भावनाओ और अभि-लाषाओ को कुचल कर चले जाने की धृष्टता कौन करेगा ? पद्माकर के इस प्रकार की चेष्टाओ के वर्णन बड़े ही व्यजना-पूर्ण है । प्रेम मे दोनो पक्ष समान रूप से प्रभावित हो, तभी बात बनती है । पूर्ण प्रेम एकागी नही हो सकता । पद्माकर के एक छन्द मे इसका वर्णन सुनिये –

> ये इत घूंघट घाली चले, उत बाजत बासुरी की धुनि खोले ।
> त्यों 'पद्माकर' ये इतै गोरस लै निकसै वै चुकावत मोले ।
> प्रेम के पथ सु प्रीति की पैठ मे पैठत ही है दसा यह जोले ।।
> राधामयी भई स्याम की सूरति स्याममयी भई राधिका डोलै ।।

इस प्रकार पारस्परिक प्रेम–भाव की विह्वलता तो अत्यन्त विलक्षण होती है । इस भाव में पूर्ण मग्नता से तन्मय होने पर तो दोनो ही की दशा लोक–विपरीत हो जाती है । चेष्टा और क्रिया–कलाप कुछ अटपटे से हो जाते है, पद्माकर का इसी प्रेम-विभोर दशा को चित्रित करने वाला छन्द देखिए .–

> बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि के 'पद्माकर' को मन लावत है ।
> तिय जानि गैरैया गही बनमाल सु ऐचं लला इच्यो आवत है ।
> उलटी करि दोहनी मोहनी की अंगुरी थन जानिकै दाबत है ।
> दुहिबो और दुहाइबो दोउन को सखि देखत ही बनि आवत है ।।

यह दृश्य देखने हसी लगती है, परन्तु जब सूर की गोपी दही को बेचने के स्थान पर 'माई कोऊ लेहैं री गोपालहि' कह कर कृष्ण को बेचने लगती है और रसखान के शब्दो मे कालिन्दी के किनारे भेट होने पर 'उन्हे भूलि गई गैया इन्हे गागरी उठाइबो' तब यह उलटा काम भी उसी प्रेम–दशा मे सगत लगता है, असगत नही । इस दशा मे किसी अन्य कार्य मे कैसे मन लग सकता है ? क्योकि एक का मन दूसरे में रम गया है । इस प्रेम–दशा का वर्णन भी पद्माकर के शब्दो मे सुनिए –

> घर ना सुहात न सुहात बन बाहिर हू,
> बाग ना सुहात जो खुसाल खुसबोई सो ।
> कहै 'पद्माकर' घनेरे घन धाम त्यो ही,
> चैन ना सुहात चादनी हू योग जो ही सो
> साझ ना सुहात न सुहात दिन साझ कछू
> व्यापी यह बात सो बखानत हो तो ही सो ।

प्रेमभाव के चित्रण मे पद्माकर धनी है। उसके विविध रूपो का वर्णन अनेक प्रकारसे उन्होने किया है जिससे उनके काव्य में सरस माधुरी का समावेश हो गया है। आखो मे छाये अनुराग के रग से छेडछाड करने पर अनुराग के रग पर और रग न डालने का अनुरोध करती हुई गोपियो की उक्ति पद्माकर के शब्दो मे सुनिये –

भाल पै लाल गुलाल, गुलाब की गैरि गरै गजरा अलबेलो
यो बनि बानिक सो पद्माकर आये जु खेलन फाग तो खेलौ।
पै इक वा छवि देखिबै के लये मो बिनती कै न झारिन झेलौ।
राउरे रग रगी अँखियान मं ए बलबीर अबीर न मेलौ ॥

यह श्याम के प्रति अनुराग का रग अनजाने ही चढ आया। परन्तु जब वह रंग चढ आया तब फिर उस रग को धो डालना सम्भव नही है। प्रेम की इसी स्थिति की व्यजना पद्माकर के एक छन्द मे देखिये –

गोकुल के कुल के, गली के गोप गाँउन के,
जो लगि कछू को कछू भारत भनै नही।
कहै 'पद्माकर परोस पिछुवारन ते,
द्वारन ते दौरि गुन औगुन गनै नहीं।
तौ लो चलि चतुर सहेली आइ कोऊ कहू
नीकै कै निचौरे ताहि करत मनै नही।
हॉ तो श्याम रग में चुराइ चित चोरा चोरी,
बोरत तो बोर्यो, पै निचोरत बनै नही ॥

प्रेम भाव बडा सुकुमार भाव है। इसके एक सकेत पर बडे–बडे काम रुकते और सधते है। इस मे कोई धर–पकड की आवश्यकता नही। सुकुमार भावना के पारखी कविवर पद्माकर ने अपने एक छन्द मे प्रेयसी की इसी प्रकार की एक सरस इगित पूर्ण कोमल चेष्टा का वर्णन किया है, तो सुनिए –

गो गृह काज गुवालन के कहँ दखिबै को कहूँ दूरि कै खेरो।
मागि विदा लई मोहिनी सो 'पदमाकर' मोहन होत सवेरो।
फेट गही न गही बहियां न गरे गहि गोविंद गौन ते फेरो।
गोरी गुलाब के फूलन को गजरा लै गोपाल की गैल में गेरो ॥

वियोग की स्थिति मे सयोगकालीन सुख के उपकरण भी दुखद जान पडते है। उनकी पूर्वस्मृति दुख को उभारने वाली होती है। वर्षा की बहार बादलो का उमडना, बूदो का बरसना इस स्थिति में उल्लासमय नही, वरन एक टीस उभारने वाला होता है। यह सब दृश्य जी को जलाता है। एक छन्द में यह भाव देखिए –

अगन अगन माहि अनग के तुग तुरग उमाहत आवै।
त्यो 'पद्माकर' आसहु पास जवासन के वन दाहन आवै
मानवतीन के आनन मै जु गुमान के गुजन दाहत आवै।
बान-सी बुन्दन के चदरा, बदरा बिरहीन पै ढाहत आवै॥

इस प्रकार जब सुखद वस्तुए दुखदायी लगती है, तब तो जीवन ही सकट मे पड जाता है। अधिक व्याकुलता की विषमयी विषम स्थिति में प्राण भी चलने को तैयार हो जाते है, परन्तु प्रिय से मिले बिना प्राणो को जाना भला कैसे सह्य हो सकता है? प्राणो को उलहना देने वाला इसी भाव का पद्माकर का एक छन्द इस प्रकार है –

ऊबत औ डूबत हौ डगत हौ डोलत हौ,
बोलत न काहे प्रीति-रीतिन रितै चलै।
कहै 'पद्माकर' त्यो असीम उसासनि सौ,
आंसू वै अपार आह आंखिन इतै चलै।
औधि ही के आगम लौं रहत बने तो रही,
बीच ही क्यो बेरी ब्रज-बेदनि बितै चलै।
ए रे मेरे प्रान कान्ह प्यारे के चलाचल में
तब तो चले न, अब चाहत कितै चलै।

यह विरह का भाव अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण गुणकथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जडता, मृत्यु आदि स्थितियो को पार करता हुआ, परिस्थिति से समझौता कर लेता है। इस स्थिति मे प्रिय की दूरी की समाप्ति हो जाती है और वह अपने पास हृदय के भीतर ही स्थित दिखाई देता है। यह प्रेम भाव की बडी उच्च स्थिति है जिसमे शारीरिक सपर्क की ईषणा का तिरोभाव मानस-मिलन के अन्तर्गत हो जाता है। इसी स्थिति का वर्णन पद्माकर के एक छन्द मे इस प्रकार प्रस्तुत है –

प्रानन के प्यारे तन ताप के हरनहारे,
नद के दुलारे ब्रज बारे उमहत है।

राति हू सुहात ना सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोहं सो ।।

वास्तव मे गोपियो की यही दशा है। पद्माकर ने इस दशा के अनेक चित्र खीचे हैं जिनमे सयोग की स्थिति मे मिलन की अकुलाहट हर घडी छिपी रहती है। ससार के और कार्य तो केवल बहाना मात्र है, अवसर मिलते ही यह अकुलाहट, यह मिलनोत्सुकता प्रेम-विह्वलता के रूप मे प्रगट हो जाती है। एक ऐसी स्थिति का वर्णन करने वाला छन्द इस प्रकार है –

आई संग आलिन के ननद पठाई नीठि,
सोहति सुहाई सीस इडुरी सुपट कीं।
कहै 'पद्माकर' गभीर जमुना के तीर,
लागी घट भरन नबेली नेह अटकी।
ताही समै मोहन सु बांसुरी बजाई,
तामें मधुर मलार गाई, और बंसीवट की।
तान लगे लट की, रही न सुधि घूघट की,
घाट की न औघट की बाट की न घट की ।।

इस स्थिति मे कठिन से कठिन मार्ग सुगम, और कष्ट सुख में परिणत हो जाता है। इस दशा मे तो 'घाम चादनी सो लगै, चन्द सौ लगत रवि, मग मखतूल सौ मही है मखमल सी।' पद्माकर के काव्य में इस प्रेम के सयोग पक्ष के विविध रूपो का मर्मस्पर्शी एव सजीव वर्णन हुआ है। इनके अनेक छन्द इस सबध मे अति प्रसिद्ध है।

प्रेम–भाव के वियोग पक्ष का वर्णन भी बडा हृदयद्रावक है। और वह पद्माकर की गहरी भावुकता को स्पष्ट करता है। वियोग की स्थिति में तो दिन गिन-गिन कर ही समय बिताना पडता है। अवधि की आशा मे ही प्राण रहते हैं। वसन्त मे आने की बात जब पूरी नही होती तब क्या दशा होती है, इनका अनुमान पद्माकर के एक छन्द मे लग-सकता है।

बीर अबीर अभीरन को दुख भाषे बनै न बनै बिन भाषे।
यों 'पद्माकर' मोहन मीत के पायै सदेह न आठयें पाखें।
आये न आपु न पाती लिखि मन की मन ही में रही अभिलाखें।
सीत के अन्त वसन्त लगो अब कौन के आगे वसन्त लै राखै।

झिझिकत झूलत मुदित मुसकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सो आढो है,
पटकत पाय होत पैंजनी झुनुक रंच,
नेक नेक नैनन ते नीर कन काढो है ।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीबे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढो है ।

गगा—लहरी के छन्दो मे पद्माकर ने गंगा की शोभा और प्रभाव का सजीव वर्णन करते हुए अपनी पवित्र भक्ति—भावना का परिचय दिया है। पद्माकर की दृष्टि मे गगा का महत्त्व विलक्षण है। उनके सर्वोच्च स्थान का निरूपण एक छन्द मे सुनिये :—

कूरम पै कोल, कोलहू पै सेस कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
कहै 'पद्माकर' त्यो फन पै फबी है भूमि
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की ।
रजत पहारपर संभु सुरनायक हैं ।
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की ।
संभु जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की ।

इस प्रकार पौराणिक और भौगोलिक स्थिति के दिग्दर्शन से गगाजी के उच्च पद का निरूपण करने के बाद पद्माकरने अनेक छन्दो मे गगाकी शोभा और महिमा का भावोसे ओत-प्रोत वर्णन किया है। शोभा का वर्णन करनेवाला उनका एक छन्द यह है —

सरद घटा सो, खासी उठती अटा सी,
दुपटा सी छिति, छीरधि-छटा सी निरधारिये ।
लज्जा सी छुटी सी छार द्वारी सी गढी सी गढ
मठ सी मढी सी औं गढी ढार डारिये ।
कहै 'पद्माकर' सु धार-धौरी दौरी आवे,
चौरी चौरी चचल सुचारु चिन्हवारिये ।
हरै हरै छवि नई-नई न्यारी—न्यारी नित
लहरे निहारि प्यारी गगा जू तिहारिये ।।

इस प्रकार छबि पर रीझनेवाली दृष्टि से देखकर सौन्दर्य का चित्रण करने वाले पद्माकर का काव्य बहुविध-माधुरी मंडित है। उनके छन्दो में

कहै 'पद्माकर' उरूझे उर अतर यों,
अन्तर चहे हू जे न अन्तर चहत है।
नैननि बसै है अग अग हुलसै है,
रोम रोमनि रसे है निकसे है को कहत है ?
ऊधो वे गुबिन्द कोऊ और मथुरा में
यहां मेरे तो गोबिन्द मोहि मोहि में रहत है।

पद्माकर की काव्य-माधुरी का वर्णन अधूरा ही रहेगा, यदि उसके अन्तर्गत उनकी भक्तिभावना का उल्लेख न किया जाये। वैसे पद्माकर के वीर, हास्य, करुण, रौद्र, बीभत्स और भयानक रसो के वर्णन भी बडे रोचक है। ये उनकी कवित्व की बहुमुखी प्रतिभा के द्योतक है। उनकी लिखी हिम्मतबहादुरबिरदावली तो वीर, रौद्र, बीभत्स और भयानक रसो का वर्णन करने वाली कृति है। पर उसमे उक्ति को रमणीयता उतनी नही जितनी वर्णन की यथार्थता है। कवित्व की दृष्टि से जगत्विनोद सर्वश्रेष्ठ है तथा भक्तिभावना की दृष्टि से गगा लहरी और प्रबोधपचासा सुन्दर है। जगत्-विनोद मे आया पद्माकर का एक हास्य का छन्द सुनिये —

हँसि हँसि भाजे देखि दूलह दिगम्बर को,
पाहुनि जे आवे हिमाचल के उछाह में।
कहै 'पद्माकर' सु काहू सौं कहै को कहा ?
जोई जहां देखै सो हंसेई तहा राह मे।
मगन भयेऊ हसै नगन महेस ठाढे,
और हसे बेऊ हसि हँसि के उमाह में।
सीस पर गंगा हसे, भुजनि भुजंगा हसें,
हास ही को दंगा भयो नगा के विवाह में।

पद्माकर की भक्तिभावना मे दास्य भाव का ही प्राधान्य है। वह शकर राम, कृष्ण, और गगा के गुणगान करनेवाले छन्दो में देखी जा सकती है। शकर की उदार दान-शीलता और राम-नाम के प्रभाव का पद्माकर ने अनेक छन्दो मे कथन किया है। परतु सबसे ललित छन्द उनका कृष्ण के बालरूप को वर्णन करनेवाला है, जो भक्ति भाव की उद्दीपक बाल-चेष्टाओ को प्रत्यक्ष करता है। छन्द इस प्रकार है —

देखु 'पद्माकर' गोविन्द की अमित छबि
संकर समेत विधि आनंद सो बाढो है।

पद्माकर की काव्य - कला

पद्माकर मुख्यतया सौदर्य और प्रेम के कवि है। जीवन की सध्या में इन्होंने सरस भक्तिकाव्य रचा और अपने रचनाकाल की प्रारभिक अवस्था मे ओजस्वी वीरकाव्य का प्रणयन किया; परतु कुल मिलाकर प्रधानता शृगारकाव्य की ही रही तथा मुख्यत उसी से इन्हे यश और धन मिले। इनके अनुसार कविता 'सगुन, सभूषन, सुभ, सरस सुबरन, सुपद सराग' होनी चाहिए (पद्माभरण, छद १०४)। उत्कृष्ट कविता को प्रसादादि गुणयुक्त, सालकार, मगलदायक, रसवती, उपयुक्त वर्णयोजना तथा पदविन्यासवाली, प्राजल और नादसौंदर्यपूर्ण कहकर कवि ने उसके भावपक्ष, कलापक्ष तथा प्रभाव का ध्यान रखा। वर्ण-विन्यास, शब्दयोजना और छदविधान पर पद्माकर ने अन्यत्र भी बल दिया है। ठाकुर की कविता की भावप्रवणता को स्वीकार करते हुए भी उसकी पदविन्यासगत त्रुटियो की इन्होने शिकायत की थी। इन तथ्यो से इनका कलापक्ष पर विशेष ध्यान स्पष्ट लक्षित होता है। प्रस्तुत लेख मे इनकी काव्यकला के निरूपण का प्रयास किया जाता है।

प्रेम या रतिभाव की अनेक विकासमान अवस्थाओ और विवृत्तियो तथा प्रेमप्रसगो की मार्मिक, तल्लीनकारिणी व्यजना एव वर्णन कवि पद्माकर की तद्विषयक सच्ची भावानुभूति और जीवनानुभव के परिचायक तथा उनकी उत्कृष्ट काव्यकला के निदर्शन है। यौवन का सौदर्य और यौवनोचित रतिभाव समाप्तप्राय शैशव मे 'मेहदी के पात मे अलख ललाई' के समान छिपे रहते है और 'दिनन के फेर' से—

लाजहिं बुलावत-सी सखिन रिझावत-सी नावत-सी प्रीति अति प्रीतम के मन में
आँखिन असीसत-सी दीसत-सी मंद-मंद आवत चली यो तरुनाई तियातन में।

और तब,

नवरंग तरग अनंग की छावे। (जगद्विनोद छं० २६-२४-२३-३६)

प्रणयोन्मुख युवाचित्त रूप के श्रवण मात्र से अभिभूत हो जाता है—

रूप दुहू को दुहून सुन्यो सु रहे तब तें मनो संग सदाही।
ध्यान में दोऊ दुहून लखै, हरषै अँग अंग अनग उछाही॥ (ज छ ४५२)

इस मधुर पीर के रूप मे आरब्ध प्रेम जब विकसित होकर मध्यावस्था को पहुँचाता है तब अपने आपको रति और लज्जा के सघर्षजन्य एक विचित्र

दृश्य और भाव तो प्रभावशाली है ही, परन्तु उन्हे अधिक प्रभावशाली बनाने वाली पद्माकरकी शब्दमाधुरी है जो उनके छन्द छन्द मे व्याप्त है। इसी से उनका अलग उल्लेख नही किया गया। पद्माकरने शब्द-मैत्री की सधी हुई गति के साथ अपने छन्दो की रचना की, जिसके अन्तर्गत सानुप्रास पदो मे वर्णो की झमक बडा चमत्कारी प्रभाव डालती है। इसके लिये उनके वसन्त के वर्णन का एक प्रसिद्ध छन्द दे देना पर्याप्त होगा -

कूलन में केलि में कछारन मे कुंजन में
क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्त है।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौनहू मे
पानन में पीक में पलासन पगन्त है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखो दीप-दीपनमें दीपत दिगन्त है,।
बीथिन में व्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो वसन्त है॥

'एवमेव प्रकृतिवर्णनाया वसन्तवैभव वर्णन प्रसगे प्रथमे चरणे -
'कूलन मे केलि में कछारन में कुजन में
क्यारिन में कलित कलीन किलकन्त है,' इति

वसन्तस्य विकासशोभा कूल-कच्छ-कुञ्जादिषु निर्दिश्यमाना निर्भरं मनसि समुदेति। ततो द्वितीय चरणे -
'कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हू में
पातन में पिक में पलासन पगन्त है।' इति

पूर्वापेक्षया प्रवृद्धा सा शोभा परत प्रसृतान् परागपवनपल्लवादीन् परिव्याप्य परिजृम्भमाणेव परितिष्ठति। ततस्तृतीय चरणे सा वासन्तिकशोभा दिग्-दिगन्त-द्वीपादीनधिकरोति-
'द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन-में
देखो दीप दीपन में दीपत दिगन्त है,' इति

किन्तु, चरम चतुर्थचरण यथैव स समापयति तथैव विपुलं विश्वतो वर्धमान. स वसन्तो व्रजवीथी वनितावल्लीप्रभृतिषु प्रत्यक्ष प्रोजृम्भमाण इव परिलक्ष्यन्ते-
'वीथिन में व्रज में नवेलिन में वेलिन में
वनन में वागन में बगर्‍यो बसन्त है।'

तहँ अति ललाई उमगि छाई दृगन माँझ दिखात है।
जनु बीर रस तन पूरि करि अँखियान व्है उफनात है।
तन तेज बहु अरु ताउ तीछन चाउ जिहि सोभनि सनो।
हिम्मतबहादुर को जु तन रन मे सु देखत ही बनो ।। (हि. बि. ११८)

चित्राकन-कौशल पद्माकर की काव्यकला का प्रमुख आकर्षण है। मूर्ति विधायिनी कल्पना के सशक्त उन्मेपने इनके काव्य मे स्वरूपाकन, मुद्रा-चित्रण, अनुभावविधान, हावयोजना, आलवनगत एव तटस्थ उद्दीपन-विभाव-निरूपण, परिवेश और प्रसग नियोजन बाह्यदृश्य चित्रण के अनेक सजीव, स्वाभाविक प्रभविष्णु एवं मनोहारी निदर्शन प्रस्तुत किए है। प्राजल वाग्धारा, सरल शब्दावली और अनुकूल-नाद-युक्त वर्णयोजना के सहयोग ने इन चित्रोको और भी अधिक मर्मस्पर्शी बना दिया है। गत्यात्मक सौदर्य का, रगो की समुचित व्यवस्था से जगमगाता, मनोरम चित्रण देखिए –

जाहिरे जागत सी जमुना जब बूडै बहै उमहै वह बैनी।
त्यो 'पद्माकर' हीर के हारन गग तरंगन को सुखदैनी।
पाइन के रँग सो रँगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सैनी।
पैरे जहाँई जहाँ ब्रजबाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवैनी। (ज. १३)

'बूडै बहै उमहै वह बैनी' मे क्रिया-व्यापार का कैसा साफ और बिबग्राही चित्र है! कार्यकलाप और मुद्रा का एक सुन्दर दृश्य और देखिये –

आई खेलि होरी घरें नवलकिसोरी कहूँ,
बोरी गई रंग में सुगंधन झकोरें है।
कहै 'पद्माकर' इकंत चलि चौकी चढि,
हारन के बारन के छंद बंद छोरै है।
घाँघरे की घूमन सु ऊरुन दुबीचै दाबि,
आँगीहू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
दतनि अधर दाबि दूनर भई सी चापि,
चोअर पचोअर कै चूनर निचोरै है ।। (ज १४)

बसतोल्लास के सार्वत्रिक प्रसार का एक चित्र देखिए जिसमें अनुप्रास-विधान द्वारा उत्कृष्ट नादसौदर्य तथा प्राजलता भी अयोजित की गई है –

कूलन में केलि में कछारन मे कुजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकत है।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौनहू में,
पातन में पिक में पलासन पगत है।

आवर्त मे फँसा पाता है । प्रवत्स्यत्प्रेयसी के इस चित्र मे कवि ने यह संघर्ष मूर्तिमान कर दिया है—

सेज परी सफरी सी पलोटति ज्यों ज्यो घटा घन की गरजै री ।
त्यो 'पद्माकर' लाजन तें न कहै दुलरी हिय को हरजै री ।
आली कछू को कछू उपचार करै पै न पाइ सकै मरजै री ।
जाँहि न ऐसे समै मथुरै यह कोऊ न कान्हर को बरजै री ।। (ज २४८)

भक्ति की व्यंजना पद्माकर ने आलंबनविधान द्वारा इस प्रकार की है—

देखु 'पदमाकर' गोबिंद की अमित छबि,
सकर समेत विधि आनँद सो बा ढोहै ।
झिझिकत झूमत मुदित मुसुकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सो गाढो है ।
पटकत पाँव होत पैंजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन ते नोर-कन काढो है ।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढो है ।।
(प० पं० २७७)

उद्दीपन विभाव और धृति संचारी से पुष्ट भक्ति की व्यंजना देखिए—

प्रलै के पयोनिधि लौं लहरै उठन लागीं'
लहरा लग्यो त्यो होन पौन पुरवैया को ।
भरी भरी झाँझरी बिलोकि मँझधार परी,
धीर न धरात 'पदमाकर' खेवैया को ।
कहा वार कहा पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को ।
बहन न पैहै धेरि घाटहि लगैहै,
ऐसो अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को ।।
(प्र० प० २१)

वीररस की व्यंजना मे पद्माकर ने अनुभाव योजना से काम लिया है—

फरके उदंड उमडि कै भुजदंड दोऊ लरन कौं ।
तहँ फूलि तन तिगुनो भयो बढ़ि चल्यो जब रन करन कौं ।
तिन चित्त चढयौ अति चाउ चौगुन सौगुनो साहस भयो ।
लखगुनो लाल परयो सु देखत लोह कौं लपकत थयो ।। (हिं. बि। ११७)

विधायिका ही हुई है। इनका अप्रस्तुतविधान मर्मग्राहिणी दृष्टि और भावप्रेरित सूझ का परिचायक है। रूढिबद्ध उपमानो के प्रयोग मे भी मर्मज्ञता अपेक्षित रहती है, ताकि उनका नियोजन वे ठिकाने, अभीप्सित भाव-व्यजना के प्रतिकूल, या उसमें असमर्थ अथवा शिथिल न हो जाय। इन्होने सर्वत्र इस मर्मज्ञता का परिचय दिया है। परपराभुक्त प्रचलित उपमानो के उचित प्रयोग के अतिरिक्त इन्होने अपने अवलोकन के आधार पर अनुभव मे आये हुए विभिन्न क्षेत्रो से भी अप्रस्तुत चुने। वनस्पति-जगत के कुछ उपमान देखिये--

ईहि अनुमान प्रमानियतु तियतन जोबन जोति।
ज्यों मेहदी के पात में अलख ललाई होति ।। (ज. २६)
सजनबिहूनी सेज पर परे पेखि मुकतान।
तबहि तिया को तन भयो मनौं अधपक्यो पान। (ज १८६)
पुलकित गात अन्हात यों अरीं खरो छवि देत।
ऊगे अंकुर प्रेम के मनहु हेम के खेत ।। (ज ४०६)

पद्माकर ने इन चौदह छदो का प्रयोग किया--छप्पय, हरिगीतिका, हाकल, डिल्ला, भुजगप्रयात, त्रिभगी, पद्धरी, नाराच, दोहा, चौपाई, सोरठा, चौपई, कवित्त और सवैया।

छद-विधान में पद्माकर को सबसे अधिक सफलता कवित्त मे मिली है। उनके रचे कवित्तो का विश्लेषण करने पर उनकी सफलता के आधार निम्न-लिखित पाये जाते है।

पद्माकर के सब कवित्त पिंगल के अनुसार खरे उतरते है। घनाक्षरी छद का लयाधार तीन अष्टक अक्षर पर्वो के बाद एक सप्तक पर्व का प्रयोग है (८, ८, ८, ७)। सर्वत्र इस लय और सगीतात्मकता का निर्वाह किया गया है। निर्बाध और गतिमान प्रवाह की योजना के लिए वर्णो और शब्दो का चुनाव और जडाव ऐसा सधा हुआ किया गया है कि उच्चारण करते समय वाणी अनायास ही एक से दूसरे पर फिसलती चलती है। यह प्रवाह और स्वरारोहावरोह भावानुकूल कही चटुल कही उत्ताल, कही विलबित, कही द्रुत, कही सरल-तरल और कही आवर्तपूर्ण है। शब्दविन्यास की यह प्रतिभा पद्माकर की विशिष्टता है। उनके कवित्तो के शब्द और शब्दानुक्रम बदले नही जा सकते। इस दृष्टि से वे सर्वोत्तम क्रम में सजाये सर्वोत्तम शब्द है। छदो की गति-यति, लय और स्वरारोहावरोह को भावानुकूल प्रवाहित और सयमित करने के लिए छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, वीप्सा और यमक आदि अलकारो तथा अतरनुप्रास,

द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखौ दीपदीपन में दीपत दिगंत है ।
बीथिन में ब्रज मे नवेलिन मे वेलिन में,
बनन में बागन में बगर्यो बसत है ॥ (ज. ३८०)

मर्मग्राहिणी उर्वरा कल्पना द्वारा नूतन परिवेशो और प्रसगो की मार्मिक उद्भावना कर उनके सश्लिष्ट चित्रणो मे कविने मधुर भावा भिव्यजना की है। उदाहरणार्थ हावनिरूपण का निम्नाकित छद देखिए –

फाग के भीरे अभीरन तें गहि गोविद लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीन पितंबर कंमर ते सु बिदा दई मीडि कपोलन रोरी ।
नैन नचाइ कह्यो मुसकाइ लला फिरि आइयौ खेलन होरी । (ज ४६४)

प्रश्नोत्तर की योजना करने मे भी पद्माकर की कल्पना ने अच्छी सफलता पाई है । भाषाके स्फीत प्रवाहने कल्पना मे चार चाँद लगा दिये हैं । इस विषय मे उनका एक छद द्रष्टव्य है –

भूले से भ्रमे से काहि सोचत समे से,
अकुलाने से विकाने से ठगे से ठीक ठाए हो ।
कहैं 'पद्माकर' सु गोरे रग बोरे दृग,
थोरे थोरे अजब कुसुंभी करि ल्याए हो ।
आगे कौं धरत पर पीछे कौं परत पग,
भोर ही ते आज कछु औरै छवि छाए है ।
कहाँ आए ? तेरे धाम, कौन काम ? घर जानि,
तहाँ जावो, कहाँ ? जहाँ मन धरि आए हो । (ज. ६१)

पद्माकर ने अलकार- निरूपण पर 'पद्माभरण' नामक एक स्वतत्र ग्रथ लिखा । इससे स्पष्ट होता है कि ये कविता मे अलकार- योजना को महत्वपूर्ण मानते थे । पद्माभरण में अलकारो के लक्षण तो चद्रालोक और कुवलयानद के आधार पर लिखे गये है परन्तु उदाहरण अधिकाश मे मौलिक, स्पष्ट, सही और कवित्वपूर्ण है । आवश्यकतानुसार, उदाहरण योजना मे कही कही उक्त उपजीव्य ग्रथो से भी सहायता ले ली गई है । व्यापक और प्रौढ़ अलकार-ज्ञान से समृद्ध इस कवि की कविता में अलकारोका प्रभूत विनियोग सुकरता और सफलता से हुआ है यद्यपि शव्दालकारो का मोह कही कही काव्योत्कर्ष-साधन में बाधक हुआ है तथापि सामान्यतः पद्माकर की अलकार-योजना काव्योत्कर्ष

नायिका की गति की चपलता उत्तरार्ध में व्यंजित है।

यही शिल्पविधान पद्माकर ने सवैयों की रचना में अपनाया और उसमें भी वे पूर्णतया सफल रहे। ये सवैये भाषा की स्वच्छता, सरसता, मधुरता और प्रवाह में उत्कृष्ट हैं। इस लेख मे दिये गये सवैये इस तथ्य के साक्षी हैं।

पद्माकर की भाषा प्रसादगुणयुक्त और व्याकरणसम्मत है। इस लेख में उद्धृत उनकी समस्त रचना इसका प्रमाण है। इनका शब्दकोष समृद्ध और कोमलकांत पदावली से पूर्ण है। उसमे बोलियो, विभाषाओ और अन्य भाषाओ के प्रचलित, उपयुक्त शब्दो का उदार समावेश है। इनका लगभग प्रत्येक शब्द इनके तूणीर का अमोघ बाण है। सहृदय के हृदय को वेधने में उसका जौहर हम इस लेख मे बराबर देखते आये हैं। वह शब्द सम्यक् ज्ञान, सुष्ठु और सुप्रयुक्त है। उसने अपने प्रयोक्ता को लोक में धन और यश प्राप्त कराये। पद्माकर की भाषा की सफाई, समाहार-शक्ति, चित्रात्मकता और सप्रेषणीयता इनके कवित्व की उज्ज्वल आभा है। रीति, गुण, वृत्ति और शब्दशक्ति का सफल विनियोग इनकी प्रौढ रचना मे सहज उद्रेक से हुआ। मुहावरो और लोकोक्तियो ने इनकी भाषा मे जान डाल दी है। इस लेख मे अन्य प्रसगो में अन्यत्र दिये हुए उदाहरण इनकी भाषा के इन गुणो से ओतप्रोत हैं। मुहावरो और लोकोक्तियो के कुछ और उदाहरण देखिए--

मुहावरे —

१. हेर्‌यो हरै हरै हरी चूरिन ते चाह्यो जौलौं
तौलौं मन मेरो दौरि तेरे हाथ परि गो। (ज. २२५)

२ गेह में न नाथ रहे द्वारे व्रजनाथ रहै
कैसे मन हाथ रहे साथ रहैं सब सो। (ज ५०६)

३ अधमउधारन हमारे रामचंद्र तुम
साँचे बिरदैत याते काँचे हम क्यो परें। (प्र. १७)

४. खीझियो न मोपै मुख लागत भले ही राम
नाम हूं तिहारो जो हमारे मुख लाग्यौ है। (प्र ४२)

५ जहाँ-जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उडि जाति है। (गं १८)

६ आसन अरघ देत देत निसिबासर
बिचारे पाकसासन को साँस न मिलति है। (गं १८)

अतर्यति, आवश्यकतानुसार ह्रस्व, दीर्घ सवृत या विवृत वर्णों (Syllables) का चयन, आदि साधनो का प्रयोग किया है। इस कथन की पुष्टि में कुछ उदाहरण लीजिए --

I (क) चटुल (i) आई खेलि होरी घरे नवलकिसोरी कहूँ।

(ii) कहाँ आए? तेरे, धाम, कौन काम? घर जानि।

(ख) उत्ताल-प्रलै के पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं।

II (क) विलंबित (i) रूप-रस चाखै मुख-रसना न राखै फेरि,

भाषै अभिलाखै तेज उर के मझारतीं।

(ii) थापति सी चातुरी, सरापति सी लंक अरु।

आफत सी पारत अरी अजानपन में।

(ख) द्रुत (i) बोलति न काहे एरी पूछे बिन बोलीं कहा?

(ii) कूलन मे केलि में कछारन में कुजन में,

III (क) सरल तरल (i) आरस सो आरत सम्हारत न सीसपट।

(ii) देखु 'पद्माकर' गोबिंद की अमित छबि।

(ख) आवर्तपूर्ण (iii) कैसी करों कहाँ जाउँ कासो कहौं कौन सुने,

(iv) औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग,

उपर्युक्त नादपूर्ण अथवा अनुरणनात्मक वर्णयोजना से वातावरण, क्रिया और भाव का ध्वनन तथा संप्रेषण किया गया है—

खनक चुरीन की त्यो ठनक मृदंगन की,

रुनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल को। (ज. ३८६)

यहाँ चुरीन, मृदगन ओर नूपुर की ध्वनि का ध्वनन करके वातावरण संप्रेषित किया गया है—

मोंहि झकझोरि डारी कंचुकी मरोरि डारी।

तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बेनी त्यो। (ज ८६)

झकझोरि, मरोरि, तोरि और बिथोरि क्रियाओ के उच्चारण से उनके कार्यो का ध्वनन होता है।

इस कला के सवैयो से भी दो उदाहरण देखिये---

जाति चली बृजठाकुर पै ठमकों ठमकौं ठुमकी ठकुराइन। (ज २३२)

यहाँ चरण के उत्तरार्ध से जाने की गति ध्वनित की गई है—

लै फिरकी-फिरकी-सी फिरै थिरकी-थिरकी खिरकी-खिरकी में (ज. ५७०)

कवि पद्माकर के काव्य में कला-पक्ष

भारतीय आचार्यो के विवेचन मे काव्य के कलापक्ष के लिए 'वक्रोक्ति' शब्द का प्रयोग मिलता है। यद्यपि 'वक्रोक्ति' को कतिपय आलकारिको ने अलकार मात्र के मूल मे अनुस्यूत रहने वाले व्यापक एव सामान्य तत्त्व के रूप मे देखा है। और कुछ एक आचार्यो ने शब्दालकार के एक भेद-विशेष के रूप मे। कुंतक तो उसे काव्य की आत्मा के ही रूप में मानते है। फिर भी अभिनवगुप्त ने अपने 'लोचन' मे दो स्थानो पर 'वक्रता' का स्वरूप बताया है-एक तो रस विवेचन के प्रसग मे और दूसरे अलकार-निरूपण के सन्दर्भ मे। रस विवेचन के प्रसग मे उन्होने बताया है कि जिस प्रकार नाटच में लोकधर्मी तथा नाटच-धर्मी अभिनय के माध्यम से 'रस' की निष्पत्ति की जाती है उसी प्रकार काव्य मे भी तत्स्थानीय स्वभावोक्ति एव वक्रोक्ति से रसवार्ता चलायी जा सकती है। अर्थात् नाटच मे जो स्थान लोकधर्मी को है, काव्य मे वही स्वभावोक्ति को, नाटच मे जो स्थान नाटचधर्मी को है काव्य मे वही वक्रोक्ति को। अभिनव ने यह भी बताया है कि लोकधर्मी एव नाटच धर्मी का सम्बन्ध भित्ति तथा उस पर खचित चित्र से निरूपित किया जा सकता है। इस प्रकार उन्होने यह बताना चाहा है कि लोकधर्मी मूल आधार है-वर्ण्य है, पर नाटचधर्मी के कारण ही उसमें सौन्दर्य है। नाटचधर्मी नाटच का सौन्दर्यधायक पक्ष है। ठीक वही स्थिति काव्य मे स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति की है। यदि स्वभावोक्ति मूल वस्तु है-तो उसको काव्योचित सौन्दर्य प्रदान करने का साधन 'वक्रोक्ति' है। अलकार निरूपण के प्रसग मे उसी अभिनवगुप्त ने बताया है कि 'वक्रता' शब्द एव अर्थ की लोकोत्तर रूप में सस्थिति है। यहाँ लोकोत्तर रूप मे सस्थिति का अभिप्राय काव्योचित रूप मे सस्थिति ही है। इस प्रकार दोनो ही स्थानो मे वक्रता या वक्रोक्ति-का सम्बन्ध काव्योचित भगी से ही है-जिसके कारण लोकगत पदार्थ अपने नीरस स्वभाव को छोडकर लोकोत्तर और सरस हो जाते है। इतना अन्तर अवश्य है कि रस विवेचन वाली 'वक्रोक्ति' अलकार विवेचन वाली 'वक्रता'-से व्यापक अर्थ रखती है-इसीलिए काव्य गत समस्त सौन्दर्यधायक तत्त्वो या विधाओ से उसका संबध है-केवल अलकार से नही। इस प्रकार काव्य की

लोकोक्तियाँ —

१. साँचहू ताको न होत भलो जो न मानत है कही चार जने की। ज. १७६
२ भूलिहू चूक परै जो कहूँ तिहि चूक की हूक न जाति हिये ते। ज. १७८
३ आपने हाथ सो आपने पायँ पै पाथर पारि परयौ, पछिताने। ज १८०
४ एक जु कंजकली न खिली तौ कहा कहूँ भौंर को ठौर है नाही। ज ३६६
५. जो विधि भाल में लीक लिखी सो बढाई बढै न घटै न घटाई। ज ४६६
६ कैसी भई तुम्है गंग की गैल में गीत मदारन के लगे गावन। ज ६४४

पद्माकर की काव्य-कला के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वे कुशल और सफल कवि थे।

'भाषा की सब प्रकार की शक्तियोपर इन कवि का अधिकार दिखाई पडता है। कही तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर पदावली 'द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेम मूर्ति खडी करती है; कही भाव या रस की धारा बहाती है। कही अनुप्रासो की मिलित झकार उत्पन्न करती है, कही वीर–दर्प से क्षुब्ध-वाहिनी के समान अकड़ती और कडकती हुई चलती है, और कही प्रशान्त सरोवर के समान स्थिर और गभीर होकर मनुष्य जीवन की विश्रान्ति की छाया दिखाती है। साराश यह कि इनकी भाषा मे वह अनेकरूपता है जो एक बडे कवि मे होनी चाहिये। भाषा की ऐसी अनेक रूपता गोस्वामी तुलसीदासजी मे दिखाई पडती है।'

प रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ २९५

एव नायिका भेद के लक्षण ग्रन्थो मे ही स्थित हैं। भक्ति और वैराग्य की कतिपय रचनाएँ तो निमित्तजनिर्वेद का प्रकाशन है, पर भक्ति की कतिपय रचनाओ में काव्योचित भाव एव वक्रता की प्राय एकान्वित स्थिति है। प्रशस्ति काव्य का 'भाव' पक्ष नितात हलका है– उसके कई कारण है–एक तो वर्ण्य नायक ही उतना श्रद्धेय नही है–दूसरे इनकी वृत्ति भी मूलत अनुरूप नही है–तीसरे ग्राहको मे भी नायक के प्रति सस्कार नहीं हैं। अत ओजस्वी वर्ण एव सघटना के माध्यम से वे कृत्रिम रूप मे भाव-पक्ष की कमी पूरी करते है। निष्कर्ष यह कि इनमे सर्वत्र एकान्विति ढूढना या पाना सम्भव नही है। पर इसके साथ ही पद्माकर उन कवियो मे भी नही है जो केवल व्युत्पत्ति और अभ्यास के वल से परम्परागत वक्रताविधाओ की सायास योजना से ही काव्य-शरीर को आकर्षक वनानेका निरर्थक प्रयत्न करते है, कारण उपर्युक्त विवेचना से जहा एक ओर यह सुनिश्चित है कि उनमे सर्वत्र भाव और कला की एक–रस एकान्विति नही है–वही दूसरी ओर यह भी स्पष्ट है कि इस तत्त्व का उनमे आत्यतिक उच्छेद या अभाव भी नही है–यद्यपि जिस क्षेत्र मे उनकी वृत्ति सर्वाधिक रम सकी है – उसमे भी वे सर्वथा उन्मुक्त नही है। यह उनकी सीमा है। उनका कवि-व्यक्तित्व इस सीमा को लाघ नही सका है।

इस सीमित-परिधि मे जव हम उनका कलात्मक मूल्याकन करने वैठते है तो सर्वप्रथम उनके प्रशस्ति-काव्य का वह कलात्मक पक्ष आता है जहाँ सायास शब्द-सौष्ठव या नाद-सौष्ठव ही ले देकर इनका सब कुछ कविकर्म (काव्य सर्वस्व) जान पडता है। किसी भी भाव को या अनुभूति को साकार करने के लिए काव्य अपने ध्वनि और अर्थ-दोनो पक्षो से परस्पर प्रतिस्पर्द्धी योग प्रदान करता है। ध्वनि का विन्यास ओजस्वी और मधुर-दोनो ढग का हो सकता है। वीर-रस के प्रसग मे ओजस्वी वर्णो एव सघटना का विधान होना चाहिए। जहाँ तक ओजस्वी वर्ण योजना का सम्बन्ध है- उसके कई प्रकार वीरोचित स्थलो में विनियुक्त दिखाई पडते है। एक तो कटु वर्णो का प्रयोग, दूसरे आनुप्रासिक वर्ण योजना, तीसरे द्वित्व का प्रयोग। पद्माकर की वीर रसान्तर्गत ओज गुण की व्यजना के लिए उक्त तीनो विशेषताएँ इस पक्ति में स्पष्ट हैं –

अरि कट्टि कट्टि विकट्ट चट्टि सु वट्टि भूतन को दये।
(हि. व. वि. पृ. २२)

इस पँक्ति मे 'ट' कटुवर्ण के रूप में, द्वित्व के रूप में तथा

वक्रोक्ति या कला पक्ष को परस्पर पर्याय मानकर उसके विभिन्न पक्षो को या विधाओ की दृष्टि से हमें यहाँ पद्माकर के कलापक्ष का विवेचन प्रस्तुत करना है।

सौन्दर्य सश्लेष मे है, विश्लेष मे नही, इसीलिए जिस काव्य का वर्ण्य या स्वभाव सश्लिष्ट होगा-वही सौन्दर्यविधायक तत्त्व भी सार्थक होगे, वही काव्योचित वक्रताविधाये भी सफल होगी। आपातत विश्लिष्ट प्रतीत वर्ण्य का सश्लेषक तत्त्व है-अनुभूति या भाव पक्ष। अखण्ड और एकान्वित निर्गुण 'भाव' ही खण्ड-खण्ड पदार्थों के माध्यम से साकार होता है। यही यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि सौन्दर्य का सबध इसी कवि-गत भाव या अनुभूति पक्ष से है। यदि वह तत्त्व काव्य नामधारी कृति के मूल मे विद्यमान है, जो स्वत सुन्दर है तो वह अपने से अविच्छेद्य बाह्य आकार में भी सुन्दर होगा। आकारगत सौन्दर्य आत्मगत सौन्दर्य का ही प्रतिबिब है। ऐसे ही आकारो को देखकर लक्षणकारो ने सौन्दर्य-स्रोतो का विवेचन किया है। काव्य के आकार मे सौन्दर्य का विश्लेषण करने के लिए आचार्यो ने गुण, गुणोचित वर्णयोजना, अलकार योजना, सघटना, काव्योचित शब्द-सामर्थ्य तथा अन्यविध वक्रता-विधाओ को खोज निकाला है।

इस प्रसग मे पहला प्रश्न यह उठ खडा होता है कि क्या पद्माकर उन कवियो की श्रेणी मे है जिनका आत्मगत सौन्दर्य (व्युत्पत्ति एव अभ्यास से निरपेक्ष) स्वत या अनायास काव्य शरीर मे प्रतिविम्बित हो जाता है या उनकी श्रेणी में जो व्युत्पत्ति और अभ्यास के बल से परम्परागत कलाविधाओ की सायास योजना से काव्य-शरीर को आकर्षक बनाते है? पहली स्थिति उनमे तब सम्भव है जब अनुभूति पक्ष एव कलापक्ष स्वभावोक्ति एव वक्रोक्ति की उनकी समस्त कृतियो मे अविच्छेद्य और एकीकृत स्थिति हो, पर पद्माकर के समीक्षक इस निकष पर उनकी समस्त कृतियो को खरी उतरते नही पाते। उनकी समस्त रचनाएँ त्रिविध है- प्रशस्ति काव्य, लक्षणग्रथ तथा भक्ति काव्य। इन सबो पर जब हम अनुभूति-पक्ष से सोचते है या भाव पक्ष से विचारते है- तो देखते है कि पहले मे वीर, दूसरे में श्रृगार एव तीसरे मे भक्ति-मूल भाव है। इन तीनो में से सर्वाधिक तन्मयता श्रृगारिक रचनाओ मे लक्षित होती है-वहाँ दरबारी युग-चेतना और व्यक्ति चेतना का सामरस्य है-पर उस प्रकार की रचनाएँ भी उन्मुक्त अभिव्यक्ति नही पा सकी है-उन्हे भी 'लक्षण' की सँकरी प्रणालिका मे दबकर व्यक्त होना पडा है। उनकी प्राय समस्त श्रृगारिक रचनाएँ 'पद्माभरण' एव 'जगद्विनोद' जैसे अलकार

झमझम झला से वानवर, चपला चमक वरछीन की।
भननात गोलिन की भनक, जनु धुनि धुकार झिलीन की।

प्रशस्ति काव्य के वीरोचित स्थलो मे जो अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए है–वे प्राय वर्षाऋतु के है वहाँ ध्वज वक-पक्ति है, उत्तुंग मतग मेघ है, धूरि-धारा धुरवा है, बरछी की चमक चपला की कौध है और गोलियो की भनक-झिल्ली की झनकार है, वाणावली झरी है। इन स्थलो मे सादृश्यमूलक उपमा, रूपक एव उत्प्रेक्षा अलकारो की योजना है। इन अप्रस्तुतो मे से कतिपय वर्ण्य का स्वरूप तो स्पष्ट अवश्य करते है–पर झिल्ली की झनकार से रणोचित भयावहता की हत्या कर दी गई है। अन्तिम चरण की वर्ण योजना भी ओजस्वी नही बन पाई है। निष्कर्ष यह कि जहाँ तक प्रशस्ति काव्यो का सबध है—न तो यहाँ अनुभूति का आवेग है और न तदुचित वक्रता का विधान। वैसे साहित्य मे कलागत निष्कर्ष तो सापवाद होते ही है।

ऐतिहासिक क्रम से इनकी दूसरी भाव-भूमि की रचनाएँ है–लक्षणग्रथ – पद्माभरण और जगद्विनोद। लक्षण के कूलो मे प्रवाहित होनवाली लक्ष्यसरिता का मूल स्रोत श्रृगार-भावना है। दरबारी चेतना तो अनुरूप थी ही, पद्माकर को सर्वाधिक वृत्ति भी यही रमी हुई लक्षित होती है। अभिनवगुप्त ने भी कहा है कि प्रमुखता प्राणिजन्मजात 'सुखास्वादसादर' हुआ करता है अत रति-वृत्ति की सर्वत प्रमुखता प्राथमिकता तथा व्यापकता भी स्वीकार की गई है। स्वय आलोच्य कवि ने श्रृंगार को रसराज कहा है इस श्रृंगार भावना को फिर भी उन्मुक्त- अभिव्यक्ति लक्षण नियत्रित हो गई है। उक्त दोनो ही कृतियो मे से पहले मे 'देखि कविन को पन्थ' तथा दूसरे मे 'सरस ग्रथ रचि देहु' निर्माण की परम्परा का पालन और परकीय प्रेरणा सूचित करते है। हमारा यहाँ विवेच्य यह नही है कि लक्षण का निरूपण कितना मौलिक है और उसके स्रोत क्या है? हमे तो अपनी दृष्टि लक्ष्य-गत वक्रता की विधाओ, भाव और कला की एकान्विति के विश्लेपण मे केन्द्रित करनी है। निश्चय ही प्रशस्ति काव्य की कलात्मकता की भाति इस क्षेत्र की कलात्मकता या वक्रता-विधाएँ केवल परम्परा परिमित ही नही है— मौलिक भी है। उचित भी है—जहाँ की भावधारा अनारोपित और वेगवती होगी वहाँ उसकी उच्छलित वागात्मक तरगे अनुरूप- वक्रताविधाओ से विभूषित होगी ही।

'पद्माभरण' की अपेक्षा 'जगद्विनोद' मे इनका श्रृगारी कवि निखर कर आया है। 'पद्माभरण' मे लगता है कि वे अपनी काव्य-प्रौढि प्रदर्शित भी

आनुप्रासिक परुषावृत्ति के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। पर कही-कही यह प्रवृत्ति हास्यास्पद स्तर का स्पर्श करती है--देखे--

'घम घम घमाघम झम झमाझम घम घमाघम व्है ढई।
चम चम चमाचम तम तमातम छम छमाछम छिति छई ।। (वही)

इन पक्तियो मे, जो उसी प्रसग मे कही गई है, लगता है किसी वर-यात्रा में बजते हुए ताशा एव धौंसा के बजने का अनुकरण किया जा रहा हो। 'छमछम छमाछम' से नृत्य की बची हुई गति का भी सकेत हो जाता है। ऐसा निरर्थक और आयास-साध्य प्रयास उनकी कला को हीनप्रभ बना देता है। ध्वन्यालोककार ने इसीलिए शक्त कवि को भी ऐसे प्रयास से विरत होने का उपदेश दिया है।

ओजस्वी सघटना सामासिक-सघटना है। हिन्दी स्वय भाषा-विकास की अवस्थाओ की दृष्टि से सयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर प्रवहमान है। ग्रियर्सन, चटर्जी आदि भाषा वैज्ञानिक इस तथ्य को स्पष्ट ही समर्थित करते है कि नव्य भारतीय आर्य भाषाओ के मध्यवर्ती रूप पश्चिमी हिन्दी की वियोगात्मकता उसकी प्रकृति है। अभिप्राय यह कि सामासिकता पश्चिमी हिन्दी की प्रकृति नही है। बिहारी तीन चार पदो तक की समस्त पदावली का प्रयोग करते है–फिर भी उसमे 'प्रसन्नता' रहती है। उस सामासिक सघटना की विगर्हणा अधिक की गई है जिसमे 'प्रसाद' गुण न हो। रत्नाकर जी में सामासिक-प्रवृत्ति अधिक है--कदाचित् यह गौड प्रभाव हो। पद्माकर इस दोष से वचित है, प्रशस्ति-काव्य के मगलाचरण मे 'केसी-कस-वच्छ-वक-रच्छस-दडन' अवश्य पाच-छ पदो की सामासिक सघटना है--पर उसमे 'प्रसाद' गुण मौजूद है। फलत वाछित अर्थ तक पहुँचने मे सामासिकता प्रतिरोध नही डाल रही है। प्रशस्ति काव्यो मे उत्साह व्यजना के अनुरूप हिन्दी की प्रकृति के अनुल्लघन करने के कारण सामासिक सघटना का प्रयोग नही के बराबर है।

ध्वनि पक्ष को छोडकर जब हम वीरोचित अर्थ योजना की ओर आते है-- तो देखते है कि न तो वीरोचित सश्लिष्ट दृश्य ही है और न अनुरूप अलकार-योजना ही। एक उदाहरण ले--

तह रन उतग मतग मानो उमडि बद्दल से रहे।
चहुँ ओर घुरवा से घुमडि भर धूरि धारन के बहे।

उन स्थलो मे मिलेगा जहा सश्लिष्ट-अर्थयोजना और हृदयग्राही भाव-व्यजना की आपेक्षिक कमी है। एक उदाहरण लें—

चहचही चहल चहूँघा चारु चदन की,
चन्द्रक चुनीन चौक चौकनि चढी है आव।
कहै 'पद्माकर' फराकत फरसबद, फहरि
फुहारन की फरस फबी है फाब।
मोद मदमाती मन मोहन मिले के काज,
साजि मन मन्दिर मनोज कैसी महताब।
गोल गुल गादी गोल गिलमैं गुलाब गुल,
गजक गुलाबी गिदुन गुले गुलाब ॥ (२०७)

यहा 'प्रौढा वासकसज्जा' का निरूपण है। यहा प्रौढा वासकसज्जा की सजी सश्लिष्ट चित्र-योजना नही है—यहा मिलन वेला मे उठने वाली विभिन्न भावलहरियो का उच्छलन 'मोद मदमाती' तक ही सीमित है। केवल सुख एव विलास की सामग्रियो का, जो सजावट मे उपयोगी है— आनुप्रासिक वर्णन है। कवि का जितना मनोयोग 'च' 'फ' 'म' 'ग' एव 'ल' की आवृत्तिमूलक योजना पर है— काव्याकर्ष का जितना वह यहा भारवाही है— उतना अन्य आतरिक तत्व नही। पर कही–कही हार्दिक– भाव और अभिव्यक्ति एकाकार भी हो गई है, जैसे—

सखि ब्रजबाल नन्दलाल सो मिलै के लिये,
लगनि लगालगि मे लमकि लमकि उठै।
कहै 'पद्माकर' चिराग ऐसो चादनी-सी,
चारो ओर चौकन मे चमकि-चमकि उठै।
झुकि–झुकि झूमि–झूमि झिलि–झिलि झेलि–झेलि
झरहरी झापन मे झमकि झमकि उठै।
दर-दर देखौ दरीखानन मे दौरि-दौरि,
दुरि–दुरि दामिनी सो दमकि–दमकि उठै ॥ [२ ५]

यहा मध्या वासकसज्जा का वर्णन किया गया है। प्रौढा वासक-सज्जा मे रति की ही मात्रा प्रौढा रहती है लज्जा की नहीं, अत वहाँ बाह्य सामग्री की योजना जमकर दिखाई है और अन्तर उल्लास का कम, पर मध्या मे बाह्य सामग्री की साज–सज्जा द्वारा आतरिक लज्जा और रति के द्वद्व मे रति की खुली विजय या खुला चित्रण नही किया गया है, परन्तु रति मूलक उल्लास

नही करना चाहते । वहाँ तो एक ही दोहे के पूर्वार्ध मे लक्षण और उत्तरार्ध मे लक्ष्य पर्याप्त स्पष्टतापूर्वक प्रस्तुत कर दिये गए है । 'जगद्विनोद' रस-निरूपक ग्रथ है––जहाँ लक्षण के बहाने लक्ष्य निर्माण पर अधिक दृष्टि है । यही कारण है कि जगद्विनोद मे एक एक लक्षण के एक की जगह अनेक सरस उदाहरण प्रस्तुत किए गये है । दूसरे यहाँ का छन्द भी 'पद्माभरण' की भाति लघु-काय एव सागीतिक नाद हीन छन्द नही है । निष्कर्ष यह कि यह पद्माकर की वह कृति है जहा आखर एव अर्थ काव्योचित सौन्दर्य की सृष्टि में परस्पर प्रतिस्पर्धी लक्षित होते है । शृगार के इन उदाहरणो मे पद्माकर की 'कल्पना' केवल व्युत्पत्ति एव अभ्यास से परिचालित नही है, बल्कि इस क्षेत्र के सूक्ष्म निरीक्षण तथा जीवनगत वास्तविक अनुभूति का रस लेकर सक्रिय हुई है । काव्य की दृष्टि से इसीलिए वे यहाँ सफल हो पाये है । यहा न तो बिहारी के दोहो की तरह अर्थ ज्ञान के लिए अपेक्षित लम्बी चौडी प्रसगाद्भावना की कठिनाई है, न घनानन्द के सूक्ष्म भावना भेदो की दुष्प्रवश्य गहराई, न केशव की अप्रसन्न और अप्रयुक्त पदावली और न देव के से उत्थापित बन्धान का अनिर्वाह । सहज निरीक्षण एव अनुभव का स्वाभाविक और स्वच्छ वाणी में काशन इस क्षेत्र की इनकी अपनी विशेषता है ।

पद्माकर के आश्रय बदले है, वर्ण्य बदले है और भावभूमिया बदली है । पर आद्योपात कोई चीज नही बदली है तो वह है वर्ण-मैत्री और आनुप्रासिक योजना की प्रवृत्ति और इनके द्वारा नाद–सौन्दर्य की सृष्टि । काव्यगत मूर्तविधान चित्रकला की और सौन्दर्य सगीतकला की सहायता लेता है । एतदर्थ कटु वर्ण त्याग, असामासिकता, सगीतमय वृत्ति विधान, लय, अत्यानुप्रास, यति पर मोड लेने वाले मध्यानुप्रास, वर्ण्यगत माधुर्य, स्वभावगत माधुर्य का सहारा लिया जाता है । इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि यदि रूपक सम्राट् तुलसी है और स्वरूपोत्प्रेक्षा सम्राट् सूर, हेतूत्प्रेक्षा के जायसी और विरोध शैली के सशक्त प्रयोक्ता घनानन्द है तो अनुप्रास के सफल निर्वाहक पद्माकर । वैसे सहृदय-धुरीण आनन्दवर्धन ने माधुर्य-गुण समन्वित रसो के निर्वाह-सूत्र को नितात कोमल माना है––अत कवियो को सचेत किया है कि यदि वे रस निर्वाह चाहते है तो प्रतिभा को एकतान रखे, आयाससाध्य शब्दालकारो की ओर प्रतिभा का मुख न मोडें, आचार्य शुक्ल भी इस प्रवृत्ति के अतिरेक से इन लोगो पर सन्तुष्ट नही है । पर अनुप्रास योजना पद्माकर की प्रकृतिगत विशेषता हो गई है––जो उनसे छूट सी नही पाती या वे उसे छोड नही पाते । फिर भी तारतमिक दृष्टि से देखा जाय तो इसका अधिक आग्रह

भावोचित स्वरूप स्पष्ट करने मे सहायक हुए है -- ' भाजि गई लरिकाई मनो लरिके करिकै दुहुँ दुंदुभि औधैं" 'ज्ञातयौवना' नायिका का वर्णन है । यहा का स्वरूपोत्प्रेक्षा द्वारा वस्तु का स्वरूप नितात काव्योचित ढग से व्यक्त हुआ है जिसमे उरोजो को ओंधी दुदुभि के रूप मे सभावित किया गया है । इस मे एक Supperessed Imagery भी निहित है और वह यह है कि जैसे पराजित मनोवृत्ति का चिबिल्ला लड़का, न कुछ, तो विजयी की वस्तु को इधर-उधर ढकेल कर भाग जाता है वही दृश्य वय सन्धि मे यौवन और शैशव के युद्ध के अनन्तर पराजित लरिकाई के मानवीकरण द्वारा दिखाई गई है ।

अलकारो से तो भाव-सामग्री को सुसज्जित करने का प्रयास हुआ ही है– सश्लिष्ट चित्रो की योजना भी जगद्विनोद मे स्वभावाँकन के रूप मे नितांत मनोरम हुई है । भावानुरूप चुनी हुई चेष्टाओ, हावो और अनुभावो का विधान तो है ही--आलम्बन की दृष्टि से उसके स्थिति-विशेष की हृदयग्राहक योजना भी पद्माकर का एक उल्लेखनीय कलागत विशेषता है । दूसरे क्षेत्र मे वही सफलता प्राप्त कर सकता है जिसने स्वय अपनी आँखोसे उनका सूक्ष्मेक्षण किया हो । सुरतिश्राता, सद्य स्नाता के चित्र बहुत ही स्वाभाविक बन पड़े है-- सालकृत भी और निरलकृत भी । सुरतश्राता का अलकृत चित्र इस प्रकार है–

कै रति-रग थकी थिर ह्वै परजक मे प्यारी परी सुख पाइकैं ।
त्यो 'पद्माकर' स्वेद के बूद रहे मुकुताहल से तन छाइ के ।
बिदु रचे मेहदी के लसै कर, ता पर यो रह्यो आनन आइके ।
इदु मनो अरविद पै राजत इद्रबधून के वृद बिछाइ कै । (४८८)

सुरत-श्राता नायिका थककर पर्यक पर सुख की नीद मे मग्न है । शरीर पर मुक्ताफल की भाँति प्रस्वेद कण अभी भी झलमला रहे है । मेंहदी की अरुण बूदो से विभूषित हथेली पर मुख रखकर सोई हुई नायिका ऐसी जान पडती है–मनो कमल पर इद्रबधूटियो को बिछाकर चद्रमा ही सो रहा हो : 'इदु' मे कुतक की पर्यायवक्रता अथवा आनदवर्द्धन की प्रकृतिगत आर्थी व्यजना भी निहित है । 'चद्र' के अनेक पर्यायवाची शब्दो के रहते हुए 'इदु' शब्द का प्रयोग शब्द-शक्ति-सौन्दर्य की दृष्टि से भी श्लाघ्य है । ' इदु ' की व्युत्पत्ति ('इदि परमैश्वर्ये' और) परमैश्वैर्यार्थक 'इदि' धातु से है–जिससे अप्रस्तुत गत परमैश्वर्य भी व्यजित है — और उससे प्रस्तुत का ऐश्वर्य विशद होता है । इसी प्रकार 'आलस्य' और 'विबोध' के चित्र भी अत्यत सश्लिष्ट और मनोहर है ।

और आतरिक उछाह को आखर-अरथ मिलकर साकार कर दे रहे हैं। शृगारस्थ माधुर्य गुण के अनुरूप प्रथम एव तृतीय स्पर्श वर्णो की कोमलावृत्ति नियोजित है। एक पक्ति में अवश्य चतुर्थ स्पर्श वर्ण को, जिसे ओजस्वी माना गया है—योजना हुई है, पर उसके बिना हृदय का वेग साकार नही हो पा रहा था अत उसे अनुरूप नही कह सकते।

शब्दालकारो में अनुप्रास का ही नही, लाट एव यमक का भी मनोरम उपक्रम और निर्वाह जहा तहा किया गया है—

सोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी,
कौनहू सुमनवारी को नहि निहारी है ?
कहै 'पद्माकर' त्यो बाघनू बसन वारी,
वा व्रजवसनवारी ह्यौ-हरनहारी है।
सुवरनवारी रूप सुवरनवारी सजै,
सुवरनवारी काम-कर की सँवारी है।
सीकरनवारी सेदसीकरनवारी रति
सी करनवारी सो वसीकरन वारी है॥

इस दृष्टि से इसमे 'पतत्प्रकर्ष' नही है। 'कथित पदत्व' पौनरुक्त्य और भी नही है। यहा अर्थान्तरसक्रमितवाच्यध्वनि की स्थिति तो नही है, पर 'को नहि निहारो है ?'– मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य की स्थिति अवश्य है। तीसरी पक्ति में वहा स्पष्ट ही 'गम्योत्प्रेक्षा' का भी चमत्कार निहित है जहा 'काम कर का सवारी है'—का प्रयोग है। अन्तिम पक्ति में एक तरफ यमक का छटा और दूसरा ओर आकर्षक एव सश्लिष्ट चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि नायिका के वदन मे सीत्कार और ऊपर मोती की सी झलकती हुई पसीने की बूदे उभर आवे। यहा नायिका का 'विलास' नामक स्वभावज अलकार अकित है। दयित को अवलोकन वेला में अगगत, वचनगत एव व्यापारगत आकर्षक चेष्टाओ का होना ही 'विलास' है। पद्माकर ने यदि अन्तिम पक्ति में उक्त चित्र न प्रस्तुत किया होता तो यमक के लोभ ने उन्हे 'लक्षण' से अनियन्त्रित कर दिया होता। लक्षण एव लक्ष्यसे हटकर रस की दृष्टि से देखें, तो निश्चित ही ऊपर के तीन-चौथाई अश मे उनकी प्रतिभा केवल अलकार योजना में सक्रिय है–'विलास' अलकार की योजना मे कम।

इनकी प्रतिभा का सरम्भ शब्द-सौष्ठव पर जितना है-तुलना मे अर्थालकारो पर कम। फिर भी अनेक स्थलो पर सादृश्य मूलक अलकारो की नितात काव्योचित योजना हुई है— अर्थात् वे प्रस्तुत गत रूप, गुण एव क्रिया का

वह क्रिया से चातुर्य की व्यजना प्रस्तुत करे। पर प्रस्तुत क्रिया श्रृगारी नायक की किसी सहृदय श्लाघ्य-वैदग्ध्य की झलक प्रस्तुत नही करती। इस क्रिया से जहा एक ओर सुरुचिपूर्ण पाठक नायक की छिछली वृत्ति देखता है वहा दूसरी ओर उससे तादात्म्य प्राप्तकर श्रृगार का अनुभव करना तो दूर—उल्टे उसे हास्य का आलम्बन बना लेता है। यद्यपि श्रृगार के अग रूप मे या सचारी रूप में हास की योजना भी होती है पर इस प्रकार का सारा समारभ हास पर्यवसायी ही हो जाता है। आर्थी व्यजना या अर्थ शक्ति-मूल-ध्वनि के काव्योचित प्रयोगो के साथ शाब्दी व्यजना या शब्द शक्तिमूलध्वनि के उदाहरण नगण्य है। इस प्रकार लक्षणनियंत्रित श्रृगार की तरगो में प्राय शास्त्रीय समस्त वक्रता-विधाओ का मनोरम प्रयोग दिखाई पडता है। परिस्थितियो की प्रतिकूलता, अवस्था की परिणति ससार के विरस पर्यवसायी रूपको प्रकट कर देती है—कदाचित् अतिम दिनो मे और अधिक वैराग्य तथा भक्ति मे उनकी वृत्ति रम गई है। इस प्रकार की मनोवृत्ति कलाप्रियता से भी सहज ही विरत हो जाती है। अत वैराग्य एव भक्ति भाव की भूमिका की अतिम रचनाओ में कलात्मकता का प्रयोग कुछ सीमित हो गया है। पर यहा भी ध्यान देने से यह स्पष्ट है कि वैराग्य की भूमिका की रचनाओ की अपेक्षा भक्ति की भूमिका पर की गई रचनाओ मे सिद्ध कवि की वाणी सहज ही वक्र रूप धारण कर गई है। 'गगा' के प्रति भक्तिभाव से भरे हुए हृदय का एक वह उद्गार देखे जहाँ व्याजस्तुति का नितांत काव्योचित विधान हुआ है।

> पापी एक जात हुतो गगा के अन्हाइबे को,
> तासो कहै कोऊ एक अधम अयान मे।
> जाहु जनि पथी उत विपति विसेषि होति,
> मिलैगो महान् कालकूट खान-पान में।
> कहै 'पद्माकर' भुजगनि बँधेंगे अग,
> सग में सुमारी भूत चलैंगे मसान में।
> कमर कसैंगे गजखाल तत्काल, बिन
> अंबर फिरैगो तू दिगबर दिसान में॥ (२८)

यहा का वाच्यार्थ निदा-परक प्रतीत होता है, पर ध्यानपूर्वक देखने मे स्पष्ट है कि ये सब विशेषताए भगवान शकर की है। अत गगास्नान को जाने वाला व्यक्ति शवरूप हो जायगा—यह व्यग्यार्थ प्रशसात्मक है। इसी प्रकार एक और उक्ति मे कवि का कहना है कि गगा के पास वह भक्त जिन-जिन अभिलाषाओ से आया—सब का उलटा ही उसे मिला। वह चाहता था, पचभूतो

उपचारवक्रता अथवा लाक्षणिक और व्यजक प्रयोगो द्वारा काव्योचित्त शब्दो के प्रयोग का कौशल तारतमिक दृष्टि से कम है---पर है वह भी। लाक्षणिक प्रयोग तो मुहाविरो और कहावतो मे सिमिट कर रह गये है और वहाँ वे निरूढ-लक्षणा का आश्रय लेते है। निरूढ-लक्षणा सहृदय श्लाघ्य व्यग्याश नही होता। लक्षण के अनुरोध से कुछ व्यजना के उदाहरण अवश्य प्रस्तुत किये गये है। एक तो कतिपय आलकारिक योजनाओ में व्यजना का सहारा लिया है---दूसरे वस्तु व्यजना और भाव व्यजना में भी। अप्रस्तुत प्रशसा और सूक्ष्म जैसे आलकारिक प्रयोग भी है--जहाँ व्यजना सक्रिय होती है---

कनकलता श्रीफल फरी, रही विजन वन फूलि
ता हित तज क्यो बावरे अरे मधुप मत भूल।

'वचनविदग्धा' नायिका की उक्ति है। यहा अभिप्रेत अर्थ वाच्य अर्थ से ढँका हुआ है। काव्य का श्लाघ्य अर्थ पिहित अर्थ ही होता है और इसी कोटि के अर्थ के विधायक वाक्य का प्रयोक्ता विदग्ध कहा जाता है। समस्त ध्वनिवादी आलकारिक स्वीकार करते है कि इसी पिहित या 'प्रतीयमान' के सस्पर्श से काव्य का समुचित सौंदर्य उदित होता है। प्राणिमात्र के शरीर में जो स्थिति 'चैतन्य' की है, काव्यशरीर में वही प्रतीयमान की। चैतन्यहीन शरीर पर चाहे लाख आभूषण लाद दिये जाँय पर कोई सौदर्य न होगा, ठीक वही स्थिति प्रतीयमान-संस्पर्श-शून्य काव्य का भी है। प्रस्तुत दोहा का व्यग्यार्थ है---नायक को सकेत देना कि विजन या एकात स्थान मे उरोजो वाली नायिका उसी की प्रतीक्षा मे प्रमुदित है। परतु कनक लता श्रीफल फरी – प्रयोग मे मुख्यार्थ बाध होने से गौणी साध्यवासाना लक्षणा का सहारा लेना पडेगा और 'कनकलता' जैसे विषयीवाचक शब्द से 'नायिका' और 'श्रीफल' से उरोज रूप अर्थ लक्षित होगा। जगद्विनोद रस-निरूपण का ग्रथ ही है---अत. भाव ध्वनि या रस ध्वनि के तो वहाँ अनेक प्रयोग है। ध्वन्यालोककार ने ध्वनिप्रकारो को काव्योचित शैली के रूप में भी विवेचित किया है। अत. काव्य-कलावक्रताविधाओ की सीमा मे इसे भी रखा जा सकता है। इसी प्रकार क्रियाविदग्धा रूपगर्विता, प्रेमगर्विता के उदाहरणो मे व्यग्यार्थ का ही चमत्कार निहित है। पद्माकर ने 'क्रिया चतुर' नायकका एक रोचक उदाहरण प्रस्तुत किया है– 'पाहुनि चाहै चलै जबही तबही हरि सामुहे छीकत आवै' यह चेष्टा व्यग का उदाहरण है। छींक की क्रिया से नायक वाछित पाहुनी का प्रस्थान बारबार रोक देता है। इस चेष्टा के द्वारा उसका यह अभिप्राय व्यग है कि वह नायिका अभी न जाय। लक्षण की दृष्टि से कवि का लक्ष्य यहा केवल इतना ही है कि

कवि पद्माकर का रूप-वैभव

कवि-कर्मकी दुष्करतापर प्रकाश डालते हुए साहित्यदर्पणकारने कहा है, 'एक तो मनुष्य जन्म होना दुर्लभ है, दूसरे, उसमे विद्या का होना दुर्लभ है। कविता करना उसमे और दुर्लभ है तथा उसने शक्ति होना, तो अत्यत दुर्लभ है" यह शक्ति और कुछ नही, कवि-प्रतिभा है। कवि प्रतिभाके ही बलपर अप्रकटको प्रकट, असुन्दरको सुन्दर, अरूपको रूप करके दिखाता है। वह इसके सहारे अपने भाव-जगतमे एक प्रकारसे युगातर पैदा करता और उसे ऐसा अलौकिक बना देता है कि वह हमारे आनन्द और मगलका कारण हो जाता है। ऐसे कविकी कविता- सौंदर्य-सृष्टि-चिर नवीन बनी रहती है। उसमे कभी भी पुरानापन नही आता। इसीलिए कीट्सने एक बार कहा था कि सुन्दर वस्तु सदैव आल्हादकी वर्षा करती रहती है—'A thing of beauty is a joy for ever' ऐसी सृष्टि मामूली कवि नही दे सकता। मामूली कवि तो स्थूल पदार्थोंके ही वर्णन और अकनमे कवि-कर्मकी इतिश्री समझ लेता है। महान् अथवा श्रेष्ठ कवि ही भौतिक जगतसे चुनकर सुन्दर चीजे, और सुन्दर बनाकर रखता है, जो कविकी अनुभूतिमे लिपटी होनेके कारण अत्यत मोहक होती है। कवि सदैव विचारोमे डूबा रहता है। उसकी दृष्टि भू-लोकसे आकाश और आकाशसे भू-लोक तक घूमती रहती है। भावावेशके क्षणोमे भी, जो भी दृश्य उसके मानस - चक्षुके सामने आते है, उनको वह रूप और जीवन देता है। यही रूप और जीवन पाकर भद्दी और कुरूप आकृतियाँ जो वायवी है, जो अस्पष्ट और धुधली है—सुन्दर, जीवन्त और स्पष्ट हो जाती है। शेली का तो विचार है कि कवि अपनी असाधारण प्रतिभासे जिन प्राकृतिक दृश्योको देखता है, उनको वह जीवन्त मनुष्यसे भी सजीव रूपमे प्रस्तुत कर उन्हे अमर कर देता है।

कविका वर्ण्यविषय केवल प्रकृति-जगत् और मानव-मन ही नही, मानव-मनके अन्तर्गत उठनेवाले विविध भाव भी है। कवि मनोभावोको साकार और जीवन्त रूपमे प्रस्तुत करता है। उनसे वह रसका आस्वादन करना चाहता है। वस्तुत मनोभावो, मनोवृत्तियो एव मनोवेगोकी कोई सीमा नही बतलाई जा सकती। पुनरपि व्यावहारिक सौकर्य के लिए आचार्योंने भावोंके

से अवकाश मिले–पर हुवा यह कि उसे भूतो का पति बनना पडा, वह चाहता तो था कि एक तन से मुक्ति मिले पर मिले उसे ग्यारह तन' वह गया तो था इस आशा से कि एक ही भव–शूल से छुट्टी मिले–पर वहाँ तो तीन शूल स्वीकार करने पडे।' पहले की व्याजस्तुति से इस व्याजस्तुति मे शब्द–श्लेष का चमत्कार अगरूप मे सहायक है।

इस प्रकार कविवर पद्माकर के काव्य मे जो त्रिविध भाव सरिताएँ प्रवाहित हुई है उनकी रागात्मक तरगे प्राय अनेक–विध वक्रता विधाओ से विभूषित है। दरबारी चेतना में अपने व्यक्तित्व का विलयन कर देने के कारण भले ही उनमें उन्मुक्त भाव–भूमियाँ न लक्षित हो–पर अपनी सीमा मे ही प्रौढ भाषा के माध्यम से जिन काव्योचित वक्रता–विधाओ का प्रयोग किया है–– हिंदी के रीतिकालीन कवियो के बीच उनका अपना एक विशिष्ट स्थान है।

---

१. हौं तो पंचभूत तजिबे को नयो तोहि पर
तैं तो करयो मोंहि भलो भूतन को पति हैं।
कहै 'पद्माकर' सु एक तन तारिबे में,
कीन्हें तन ग्यारह कहौ सो कौन गति हैं।
मेरे भाग गग यहै लिखी भागीरथी. तुम्हें,
कहिये कछुक तौ किनेक मेरी मति हैं।
एक भव सूल आयो मेटिबे को तेरे कूल,
तोहि तौ त्रिसूल देत बार न लगति हैं ॥१३॥

युगको प्रभावित करता है। पद्माकर युग-सीमाका उल्लघन नही कर सके और युगकी बँधी-बँधाई लीकोपर ही चलते रहे। ऐसा प्रतीत होता है, आर्थिक अभावके कारण उन्हे दर-दर भटकना पडा और एक राजाको छोड दूसरे राजाकी शरणमे जाना पडा। अन्यथा वे किसी एक ही दरबारमें अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। आर्थिक लोभने ही उनकी प्रतिभाको मानो बाधित किया और वे खुलकर रीति-परम्परासे आगे न जा सके। यही कारण है, उनकी कविताका विस्तार बहुत अधिक नही है। श्रृगार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, वीर आदि कुछ क्षेत्रको छोडकर वह अन्यत्र नही रम सकी। सबसे अधिक उनकी वृत्ति श्रृगारिक दृश्योमे रमी और यही कारण है, वे भव्य श्रृगार-चित्र विस्तृत रूपमे प्रकट कर सके। यह युग-धर्मको भी माँग थी कि कवि अधिक-से अधिक श्रृगार-चित्र ही प्रस्तुत करे। श्रृगार-चित्रोकी जरूरत अपने आश्रयदाता राजाओ एव स्वामियोको रिझानेके लिए भी पडती थी, क्योकि वे राजा, वे स्वामी अधिकाशत विलासी थे। वे प्रेमके भूखे न होकर विलासके, वासनाके दास थे। अत उनकी इन्द्रिय-लिप्साकी पूर्तिके लिए कवियोको बाध्य होकर उनके मनोनुकूल साहित्य लिखना पडता था। कविकी दृष्टि सकीर्ण क्षेत्रमे घूमनेको बाध्य हो जाती थी और उसे कुछ ही रूप-रेखाओ, रगोके सहारे प्रेम-चित्र प्रस्तुत करने पडते थे।

रीतिकालमे रीतिग्रथ लिखनेका मोह स्वाभाविक था। इस मोहसे पद्माकर भी न बच सके। यही कारण है, पद्माकर की काव्य-प्रतिभाको हम सकीर्ण क्षेत्रमे भटकते हुए पाते हैं। पद्माकर यौवनके आवेशमे स्वामियोके लिए सुदरियोके रूपदर्शनकी चाह पूरी करते रहे, किंतु अवस्थाके ढलावके साथ जब इनमें ज्ञान और वैरागके भाव उदित हुए, इनकी दृष्टि भक्ति-भावकी ओर मुडी और राम, शिव, कृष्ण, गगा आदिकी शरणमें जाकर इन्होने उनकी आराधना की, उपासना की। इसीमें पद्माकरके काव्यमे श्रृगार-चित्र नायकोकी अपेक्षा नायिकाओके मनोरम चित्र अधिक देखनेमे आते हैं। भक्ति-भावके प्रदर्शनमे राम, शिव, कृष्ण आदिके सुदर चित्र देखने मे नही आते, वहाँ उनके मनोभावोका विस्तृत उद्घाटन देखनेमे आता है। पद्माकरने अपने आश्रयदाता जगतसिंह के मनोविनोद अथवा उनके नामको अमर करनेके लिए विशेष रूपसे नायक-नायिकाओके सुदर चित्र प्रस्तुत किए। पद्माकरने नायिकाओके कलेजे की कसकको, जिनकी वेदना वैद्योको भी अज्ञात रहती है, प्रतिभा-चक्षुसे देखा और चित्रित किया। इस दृष्टिसे पद्माकरको प्रेमका वैद्य कहकर भी अभिहित किया जाय, तो कोई नयी अत्युक्ति न होगी।

निरीक्षण-परीक्षण किये हैं और उनके वर्गीकरण भी किये हैं। ये भाव स्थायी और सचारी मे बँटे हुये हैं। रसावस्थाको प्राप्त करनेवाले भाव नौ ही क्यो? और भी हो सकते हैं, पर मुख्यत इनकी ही स्थिति मानी गई है। सचारी भाव भी अनेक हैं, लेकिन मुख्यत उनमे तैंतीस ही माने गये हैं। दया, श्रद्धा, सतोष स्वाधीनता, विद्रोह, त्याग, अभिमान, सेवा, सहिष्णुता, लोभ, निन्दा ममता, कोमलता, दुष्टता, जिघासा, प्रवचना, दम्भ, तृष्णा, कौतुक, द्वेष, आदि सचारी भावोके ही अन्तर्गत गिने जायेगे। कवि इन्हीं भावोकी व्यजना करता है। इनको आकार और जीवन देता है, इन्हे सहज सवेद्य और सहजग्राह्य बनाता है। इसलिए साहित्यको 'भावोके उत्थान-पतनका खेल' भी कहकर पुकारा गया है।

कवि अज्ञात रहस्यको अपनी प्रतिभासे प्रत्यक्ष रूप देता है, मूक भावको मुखर करके रखता है। इसके लिए वह प्रकृति जगतकी शरणमे जाता और स्थूल प्रतीकों, उपमानो का सहारा लेता है। वह अनगढ भावोको भी अपनी प्रतिभाकी छेनीसे गढकर सँवारकर रखता है। वह अस्पष्ट तथ्योको रूपकके सहारे स्पष्ट और सुन्दर रूपमें रखनेका अभिलाषी है। रूपक-निर्माणकी शक्ति उसे बहुत मुश्किलसे प्राप्त होती है। अरिस्टोटलका विचार है 'यह तो शक्ति किसी अन्य प्रकारसे प्राप्त नहीं होती यह तो प्रतिभाका चिन्ह है। वस्तुत प्रतिभाशाली कवि ही दिव्य और आकर्षक मूर्तियाँ हमारे सामने प्रस्तुत कर सकता है। ऋग्वेद कहता है— कवि ही दिव्य रूपोका निर्माता है 'कवि कवित्वा दिवि रूपम् आसृजत्।' जो वस्तुत कवि है, वही सुन्दर मूर्तियाँ गढ सकता है। जिसके पास प्रतिभाका वरदान है, वही अज्ञात को ज्ञातके समान रख सकता है। कवि कलाके सहारे नई-नई मूर्तियाँ रखता है, भावोकी मूर्तियाँ, जो सूक्ष्म और वायवी है। कोलरिज कहता है— नई-नई आकर्षक मूर्तियोमे ही कविकी सच्ची कला निहित रहती है। कवि वस्तुओको साधारण पुरुषसे भिन्न दृष्टिसे देखता और अपने प्रतिभा-बल से उसे मोहक रूपमें प्रस्तुत करता है। स्पेंसरकी 'फेएरी क्वीन' चित्रोका आगार है, शेक्सपियरका प्रत्येक शब्द एक चित्र है। इसका एकमात्र कारण यह है कि ये कवि हैं और इन्हें प्रतिभाका वरदान मिला है।

पद्माकरके सामने कई बन्धन थे। उन्हे प्रतिभाका वरदान मिला था, किन्तु उनको कवि-प्रतिभा बन्धनके कारण बहुत कुछ कुण्ठित हो गई। यह युग-धर्मका प्रभाव कहा जा सकता है। कवि युग-धर्मसे ही प्रभावित होता है। यह सच्चा कवि कभी-कभी युगकी सीमाओका अतिक्रमण कर अपनी प्रतिभासे

सुंदर सुरग नैन सोभित अनग रग,
अग-अग फैलत तरग परिमलके,
बारनके भार सुकुमारिको लचत लक,
राजै परजक पर भीतर महल के ।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जन रीझै जाहि,
अबर अमलके सकल जल थलके
कोमल कमलके गुलाबनके दलके,
सुजात गडि पायन बिछौना मखमलके ।

नायिका का यह सौकुमार्य नया नही है, पुनरपि पद्माकरकी प्रशसा करनी ही पडती है । पर्यकके ऊपर उपस्थित यह नायिका समूचे महलको सुवासित कर रही है । इसकी कमर बालोके भारको नही सभाल सकती । इसके चरण अत्यंत सुकुमार है । इसीसे तो अच्छी तरह चलनेपर भी मखमलका बिछावन गडता है ।

बिहारीने भी एक बालाके सुकुमार चरणोके विषयमे लिखा है, जिसकी टीका कृष्ण कविके शब्दोमे यह है

प्यारीके नाजुक पाव निहारिके हाथ लगावत दासी डरै ।
धोवत फूल गुलाबके लै पै तऊ झझकै मत छालै परै ।।

कवि केशवने भी एक नायिकाके सौदर्यका वर्णन किया है

दुरि है क्यो भूखन बसन दुति जोबनकी,
देहहूकी जोति होति द्यौस ऐसी राति है ।
नाहक सुबास लागै ह्वै है कैसी 'केशव'
सुभावतीकी बास भौर भीर फारे खाति है ।।
तेरी देख सूरतिको मूरति बिसूरति हू,
लालनके दृग देखिबेको ललचाति है ।
चालिहै क्यो चद्रमुखी कुचनके भार भये,
कचनके भार ही लचकि लक जाति है ।।

दासका सौकुमार्य-वर्णन इस प्रकार है,
घाँघरो झीन-सो सार' महीन-सो,
पीन नितम्बन भार परै मचि,
'दास' जू बास सुबास सँवारत,
बोझन ऊपर बोझ परै मचि ।

वस्तुत प्रेमके वर्णन की परिपाटी कोई नयी नही थी, और न पद्माकरने, युग-सीमाका अतिक्रमण कर, प्रेमके बारेमे कुछ नया कहनेका ही प्रयत्न किया, तथापि अभिव्यक्ति-कलामे कुशल होनेके कारण प्रेमके विस्तृत उद्घाटनमें इनको जितना यश मिला, उतना बिहारी को छोडकर शायद ही किसी रीतिकालीन कविको मिला होगा।

शृगार-रसकी व्यापकता और श्रेष्ठता सर्वमान्य है। रीतिकालीन कवियोमे देवने शृगारको सब रसोसे श्रेष्ठ बतलाया और इसको सब रसोका मूल भी माना–'भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल सिंगार' (कुशलविलास)। इसके पहले रस-निरूपणके क्रममे आचार्य केशवदासने भी शृगारको सब रसोका नायक माना था

नवहूँ रसको भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास कहि नायक है सिंगार॥
(रसिकप्रिया)

अत पद्माकरने भी सबका आभार स्वीकार करते हुए कहा कि शृगार सब किसीके अनुसार राजा श्रेष्ठ है–'नव रसमे सिंगार रस सिरे कहत सब कोय' (जगद्विनोद)। इससे व्यग्य अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि शृगारकी विस्तृत-चर्चा करके भी कवि अपने कवि-कर्तव्यकी समाप्ति कर सकता है। रीतिकालके प्राय कवियोने ऐसा ही किया। रीति-काव्य लिखनेके सिलसिलेमें रस-ग्रथको जिन्होने लिया, शृगारका ही विस्तृत उद्घाटनकर अपने कवि-कर्तव्यको पूर्ण समझलिया।

पद्माकरने भी युग-सीमाके कारण परपरित ढगसे नायक-नायिकाके रूप खीचे अथवा उनके मनमे उठनेवाले भावोके ऊपर प्रकाश डाला। उनके सामने अज्ञातको ज्ञात अरूपको रूप, अप्रकटको प्रकट करनेकी बहुत अधिक समस्या नही थी। उनके सामने तो काव्य-शास्त्रमे वर्णित नायिकाओके ही रूप-चित्र खडा करनेका सवाल था। इनके लक्षण काव्य-शास्त्र मे पहलेसे ही अकित थे, बस उनकी पुष्टिके लिए अपनी ओरसे उदाहरण प्रस्तुत करना था। इन्ही उदाहरणोमे इन्होने कवि-प्रतिभाको खुलकर खेलनेका मौका दिया इनके रूप-चित्र बँधी बँधायी परपराके है फिर भी नवीन है और मोहकताके कारण काफी विख्यात है। इनके रूप-वैभव आनद-प्रदान करनेके प्रमुख साधन है। पद्माकरने नायिका का रूप-चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

दिन समान प्रतीत होती है । शरीरकी सहज सुगंध भौरोको आकर्षित करनेके लिए काफी है । दासकी नायिका स्वभावत सुंदरी और सुकुमारी है । उसकी कमरको लचकानेके लिए न तो केशवके समान आभूषणोकी जरूरत है, न पद्माकरके समान बालोके भारकी । वह स्वभावत लचकती है । दासकी नायिकाका सौकुमार्य अपेक्षाकृत व्यंग्य है । मतिरामकी नायिका भीरु प्रकृतिकी है । बयारके लगनेसे ही उसकी कमर लचकती है । टी० लॉजकी नायिकाका सौकुमार्य व्यंग्य है । इसमे उपर्युक्त कवियोकी तरह अतिशयोक्तिसे काम नही लिया गया है । अकबर और नासिखकी नायिकाओमे तो नजाकत हद है । अकबरकी नायिका भीरु है । पद्माकरकी नायिका आँखोमे अनग-रगके कारण मादक अधिक है । किन्तु पद्माकरकी सौन्दर्यानुभूति किसी कविसे भी कम नही है । नायिकाकी निसर्ग सुंदरता जल-थल-अबर सब जगहके रहनेवालोके लिए मोहक है । पद्माकरने नायिकाकी कोमल गतिमतिका भी अकन किया है ।

पद्माकरने तालमे तैरती हुई एक बाला का चित्र इस प्रकार दिया है — उसकी वेणी यमुना, उसके गलेके हीरेका हार गगा तथा उसके लाल तलवे सरस्वती नदीका होना सूचित करते है । इससे वह बाला तालमे जहाँ-जहाँ तैरती है, वहाँ-वहाँ त्रिवेणीका ही दृश्य प्रस्तुत हो जाता है,

जाहिरै जागत-सी जमुना जब बूडै बहै उमहै वह बेनी ।
त्यौं 'पद्माकर' हीरके हारन, गग-तरगनको सुख देनी ।
पायनके रँगसे रगि जात-सी, भाँति-ही-भाँति सरस्वती सेनी,
पैरे जहाँ-ई-जहाँ वह बाल, तहाँ-तह तालमें होत त्रिबेनी ॥

तद्‌गुण अलकारके सहारे त्रिवेणीका अभेद रूपक पद्माकर ने प्रस्तुत किया है ।

एक स्नानार्थिनी नायिकाके वय सौंदर्यका चित्र पद्माकर ने इस प्रकार खीचा है । आँगनमे जडाऊ चौकीपर खडी-खडी वह अपने बालकी खोल रही है । इससे चारो ओर सोंधी-सोंधी सुगध फैल रही है । अग-अंगसे प्रकाश फूटा पडता है । कचुकी खोलनेपर वह और भी आकर्षण का केन्द्र बन जाती है

चौकमें चौकी जराव जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे ।
छोरी धरी हरी कचुकी न्हानको, अंगन ते जगे ज्योतिके कौंधे ॥
छाई उरोजनकी छवि यो, 'पद्माकर' देखत ही चकचौंधे ।
भागि गई लरिकाई मनो, लरिकै करिकै दुहु दुंदुभि औंधे ॥

स्वेदके बूँद कढै तनवाम,
चलै जबै फूलनि भारन सो पचि,
जात है पकज पात बयारी सो,
वा सुकुमारिको लक लला लचि ॥

कविवर मतिरामने भी इसी भावपर लिखा है,

चरन धरै न भूमि विहरै तहाँ इ जहाँ,
फूले-फूले फूलनि बिछायो परजक है,
मारके डरनि सुकुमारि चारु अगम मै
करत न अगराग कुंकुमको पक है ॥
कहै 'मतिराम' देखि बातायन बीच आयो,
आतप मलीन होत वदन मयक है।
कैसे वह बाल लाल बाहरे विजन आवै,
विजन बयारि लागे लचकति लंक है ॥

एक विद्वान कवि टी० लॉज नायिकाका रूप-चित्र खीचते हुए कहता है

With orient pearl, With ruby red,
With marble white Sapphire blue
Her body every way is fed,
Yet soft in touch and sweet in view,
Hight ho, fair Rosaline
Nature herself her shape admires
The Gods are wounded in her sight,
And Love forsakes his hevenly fires,
And at her eyes his brand doth light

उर्दू कवि अकबरने एक ऐसी सुकुमारीका चित्र खीचा है, जिसको सुरमा भी असह्य प्रतीत होता

'नाजुकी कहती है, सुरमा भी कही बार न हो।'

नासिखका भी वर्णन कुछ ऐसा ही है। प्रेयसीका वदन इतना सुकुमार है कि सुरमा भी आँखोमे भारी लग रहा है, उस तरह जैसे बीमार मनुष्यको रात –

यो नजाकत सेगराँ सुरमा है चश्मे यारको,
जिस तरह हो रात भारी मर्दूमे बीमारको।

विहारीकी नायिकाके चरण कल्पनाजगतकी वस्तु है। केशवकी नायिका निसर्ग सुन्दर है। उसकी देह ही इतनी प्रकाशमान है कि उसीसे रात

पद्माकरने नायिकाके जिस सौन्दर्य को वाह्य उपादानो द्वारा व्यक्त किया है, वह शेक्सपियरने एक प्रेमीकी अभिलाषा द्वारा दिखाया है। दोनो चित्रण अपने ढगके अकेले है। शेक्सपियरकी सफलता सरलताके कारण है, पद्माकरकी सफलता अलकारिता के कारण।

पद्माकरके इसी छन्दसे मिलता-जुलता श्रीपतिका एक छन्द इस प्रकार है

> **भोर भयो तकिया सो लगी, तिय कुन्तल पुज रहे बबराय कै।**
> **कजनसे करके तल ऊपर, गोल कपोल धरे अलसाय कै।**
> **आनन पै बिलसै रदकी छबि, 'श्रीपति' रूप रह्यो अति छाय कै;**
> **मानहु राहु सो घायल ह्वै बिधु, पौढो है पकज के दल आय कै॥**

पद्माकर तथा श्रीपति दोनोकी नायिकाओके चित्र प्राय एक ही अवस्था के है। किन्तु पद्माकरने जहाँ नायिका के कोमल रति-चिन्होको अकित किया है, वहाँ श्रीपतिने कठोर रतिके आघातोको बतलाया है। एकने स्वेद-बिन्दु विलसित अलसित आननको मेहदी-चर्चित हाथपर सुलाकर उसकी उत्प्रेक्षा कमल दलपर इन्द्रवधूटियोको बिछाकर बैठे हुए चन्द्रमासे की है तो दूसरेने रति-सग्राममे रदक्षत आनन को हाथोपर स्थिरकर उसकी उत्प्रेक्षा राहुसे घायल उस व्याकुल विधुसे की है, जो अपने सहज विरोधी भावको भूलकर पकज के दलपर आकर पौढ गया हो। दोनो चित्र यद्यपि एक हीसे हुए है, परन्तु कोमल रतिके चिन्हो द्वारा पद्माकरने अपनी नायिकाको उच्चकुलोद्भव, श्रेष्ठ जातिसभूता तथा अनिंद्य सुन्दरी बतलाया है। वह श्रीपतिकी नायिकाके समान बर्बर ताडनाओ को सहनेमे सर्वथा अक्षम है।

एक प्रभातोत्थिता, विपर्यस्तवसना, वारवधूटीका चित्र पद्माकरने इस प्रकार प्रस्तुत किया है। वह सौम्य-से-सौम्य है। उसके सिरकी साडी सरककर गिर जाती है। वह उसे सभालकर नहीं रखती। अगोसे सुगन्धकी तरगे उत्पन्न करती है। उसके बाल हीरोके हारपर बिखरे हुए है। उसके इजारबन्दका छोर धरतीको छूता-सा है। वह आलसमे डूबी हुई प्रतीत होती है

> **आरत सो आरत सँभारत न सीस-पट,**
> **गजब गुजारत गरीबनकी धार पर।**
> **कहै 'पद्माकर' सुगन्ध सरसावै सुचि,**
> **बिथुरि बिराजै बार हीरनके हार पर॥**

नवयौवनाके उत्तुंग उरोजोंका सौंदर्य पद्माकरको ऐसा प्रतीत होता है कि शैशव और यौवनके युद्धमें शैशव अवस्था पराजित होकर अपने स्वर्णिम विजय-नगाड़ोंको औंधाकर भाग गई। उक्तिका अनूठापन ध्यातव्य है। स्नाता-यिनी नायिकाका मूर्तिमान चित्र यहां प्रस्तुत है।

पद्माकरकी रति-क्लान्ता, सम्भोगशिथिला नायिका इस प्रकार लेटी है कि पता नहीं चलता, वह किन्नरी है, कि मानवी है, अप्सरा है, कि कोई छविदार परी है। उसका सहज सौंदर्य देखने योग्य है। लम्बे-लम्बे बाल उसकी कमरमें लिपटे हुए बड़े लहरदार प्रतीत हो रहे हैं। उसकी मलीन कंचुकी उत्तुंग उरोजोंको छिपानेके लिए पर्याप्त नहीं है। उसकी देहसे सुगंध भी निकल रही है। उसके मुख-चंदपर कुछ स्वेद-कण दिखाई पड़ रहे, जो सुगंधमें डुबोये हुए प्रतीत हो रहे हैं।

चहचह चुहके छुभी हैं चोट चुम्बन की,
लहलही लाँबी लटें लपटी सुलंक पर।
कहै 'पद्माकर' मजीन मरगजी मंजु
मसकी सुआँगी है उरोजनके अंक पर॥
सोई सरनाटी औ सुगन्धनि समोई स्वेद,
सीतल सुलोने लोने वदन मयंक पर।
किन्नरी, नरी है, कै छरी है, छविदार परी
टूटी सी परी है कै परी है परिजंक पर॥

इसीसे मिलता-जुलता एक दूसरा चित्र भी मिलता है

कै रति रंग थकी थिर है, परजंक पर प्यारी परी अलसाय कै,
त्यों 'पद्माकर' स्वेद के बिंदु, लसैं मुकुताहल से तन छायकै।
बिंदु रचे मेंहदी के लसै पर, तापर यों रह्यो आनन आय कै।
इंदु मनो अरविन्द पै राजत, इन्द्रवधूनके वृन्द बिछाय कै॥

नायिका अपने मेंहदी-चर्चित हाथके ऊपर अपने मुखचन्द्रको रखकर सोई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कमल के ऊपर इन्द्रवधूटियोंको बिछाकर चन्द्रमा ही सोये हुए हो। वस्तुतः पद्माकरने कमल के ऊपर इन्द्रवधूटियोंको बिछाकर चन्द्रमाके सोनेसे नायिकाकी उपमा देकर नायिकाके सौन्दर्य को प्रस्फुटित किया है। शेक्सपियरने भी ग्लववेष्टित करतलपर जूलियटके रखे हुए मुखड़ेकी सुन्दरता रोमियोके इस आन्तरिक अभिलाषाके व्यक्त करा कर की है —'काश मैं उस हाथका ग्लव ही होता, जिससे उनके कोमल कपोलका स्पर्श सुख हो पाता।'

कहै 'पद्माकर' पगी यो पति प्रेम ही में,
पद्मिनि तोसी तिया तू ही पेखियतु है ।
सुबरन रूप जैसो तैसो शील सौरभ है,
याही ते तिहारो तनु धन्य लेखियतु है ।
सोनेमें सुगन्ध नाहि, सुगन्धमें सुन्यौं न सोनो ?
सोनौं औ, सुगध तामे दोनो देखियतु है ।।

पद्माकरकी मध्या स्वकीया जवानीकी सब कामनाओंसे भरी हुई मोहकी अवस्था तक रति करनेमे समर्थ है । इसकी बाँहे मृणालके समान पतली है । किन्तु सौन्दर्यमे यह रतिसे भी बढी-चढी है । रति इसकी छाया तक भी नही छू सकती । इसके कुच अत्यन्त सुन्दर हैं । आँखोमे लज्जा है, प्राणमे कन्हैया बसे हुए है, जवान मुखर अधिक है ।

आई जु चालि गुपाल घरै ब्रजबाल बिसाल मृणाल सी बाँही ।
त्यो 'पद्माकर' सूरतिमें, रति छू न सकै कितहू परछाहीं ।।
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर, मौज मनोभवकी मन माँही।
लाज बिराज रही अँखियानमें प्रानमें कान्ह, जबानमे नाही।।

पद्माकरकी प्रौढा धीरा नायिका अपने क्रोधको छिपाकर बाहरसे बड़ा आदर और सत्कार दिखानेवाली सौंदर्य और सुगन्धकी खान है । यह अपनी द्युतिसे केलि मन्दिरको प्रकाशित करती, प्रत्येक कोठरी और दालानको सुगन्धसे भर देती है । इसका मुँह चन्द्रमासे भी चमकदार है । प्रियतमके चुम्ब-नार्थ अपना मुँह आगे करनेमे यह सकोच नहीं करती। सर्वत्र यह प्रेम प्रसारित करती रहती है। इसका छल छिपानेपर भी नही छिपता। प्रियतमसे गले लगने के समय यह हार नही उतारती । हारसे इसे इतना ेम है ।

जगर मगर दुति दूनी केलि मन्दिरमें,
बगर बगर धूप अगर बगार्यौ तू ।
कहै 'पद्माकर' त्यो चन्द ते चटकदार,
चुम्बनमे चारु मुख चन्द अनुसार्यो तू ।।
नैननमें बैननमें सखी और सैननमे,
जहाँ देखो तहाँ प्रेमपूरन प्रसार्यौ तू ।
छपत छपाये तऊ छल न छबीली अब,
उर लगिबेकी बार हार न उतार्यौ तू ।।

पद्माकरने मुग्धा वासकलज्जा नायिकाका रूप-चित्र इस प्रकार खींचा है । वह वस्त्र, श्रृगार आदिसे सज-धजकर प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके आगमनकी

छाजत छबीली छिति छहरि छटाको छोर
भोर उठि आई केलि मन्दिरके द्वार पर।
एक पग भीतर सुएक देहरी पर धरे,
एक करकंज, एक कर है किवार पर॥

एहसान दानिशने एक ऐसी ही सुन्दरीका चित्र खीचते हुए कहा है कि उसकी साँस अत्यन्त सुरभित है, उसका चेहरा ऐसा है कि गुलाबका फूल भी उससे ईर्ष्या करता है, उसकी आँखे अत्यन्त मस्त और मादक है

मोअत्तर सांस चेहरा रश्के गुल मस्ती भरी आँखे,
जवानी है के एक सैलाबे रगोबू का धारा है।

पीयूषवर्षी कवि जयदेवकी नायिका भी दर्शनीय है!

व्यालोल केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ,
दृष्टा बिम्बाधरश्री कुचकलशरुचाहारिता हारयष्टिः।
काची काचित् गताशा स्तनजघनपद पाणिनाछाद्य सद्य,
पश्यंती सत्रपमान्तदपि विलुलितस्मग्धरेयन्धुनोति।"

साथ ही सुप्तोत्थिता विद्याका चित्र भी आँखोके सामने खिच जाता है –

"अद्यापि तां कनक–चम्पक दाम गौरीं,
फुल्लारविन्द–नयनां तनु–रोम–राजिम्।
सुप्तोत्थितां मदन–विह्वलतालसाङ्गीं
विद्या प्रमादगलितामिव चिन्तयामि॥"

लज्जा भारके कारण अपने शरीरको संभालनेमे असमर्थ शेलीकी सलज्ज नायिका भी देखने योग्य है

Like a naked-bride
Glowing at once withlove and loveliness
Blushes and trembles at its own excess

पद्माकरकी नायिका आलस्यके कारण अपने शरीरको सभालनेमे असमर्थ है। उसे लज्जा कहाँ? वह तो वार-वधूटी है, गणिका है?

पद्माकरकी स्वकीया नायिका विलक्षण है। उसके शरीरमे सोना और सुगन्ध दोनो है।

शोभित स्वकीय गन गुन गनतीमें तहाँ,
तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।

अर्थात–

अह, वह मशालको द्योतित करती अपनी द्युतिसे,
रखती अपनी उज्ज्वल आभा चमकाती-सी रजनीके मुख,
इथिअप वासिनके कानोपर कर्णफूल शोभित हो जैसे,
महँगी कीमतवाली सुषमा धरती-हित नन्दन-वनका सुख।

आईमोजनकी शरीर-दीप्तिपर शेक्सपियरने इस प्रकार प्रकाश डाला है*–

Cytherea,
How bravely thou becomes thy bad, fair lilly
Add whiter than the sheets
Tis her breathing that perfumes the
Chamber thus, the flame, the taper,
Bows towards her, and would under deep her lids
To see the enclosed light, now canopied,
With blue of heavens own linct.
—Cymbelline.

अर्थात्––

परम सुन्दरी,
सुषमा तनकी कुमुद-फूल-सी उज्ज्वल उज्ज्वल,
विस्तरकी उज्जवल चादरको उज्ज्वल करती,
सुरभि तुम्हारी साँसोकी महमह करती है भव्य भवनको,
मोमवर्तिकाकी लौ लघुतामे डूबी–सी छटपट करती,
चाह रही देखना तुम्हारी आँखोंकी लौ, जो है उसमें दिव्य, दिव्यतर,
बन्द, नील नभमें बिजली ज्यो झलमल करती।

महाकविके दोनो छन्दोमें शरीरकी उज्ज्वल द्युतिका सुन्दर वर्णन हुआ है। किन्तु पद्माकरका वर्णन भी कम सुन्दर नही कहा जा सकता, यद्यपि इसमे विस्तार–लघुताका बन्धन है।

हिन्दीके दो–चार अन्य कवियोकी सौंदर्य–प्रभा की तुलना करनेके लिए यहाँ दिया जाता है ––

प्यारी खड़ी तीसरे रंगीली रंग रावरीमें,
तकि ताकी ओर छकि रह्यौ नँदनद है,
'कालिदास' वीचिन दरीचिन है छलकत,
छविकी मरीचिनकी झलक अमद है।

प्रतीक्षा करती है। अपने केलि मन्दिरको सजाती तथा आरती जलाती है।

सोरह सिंगार कै नवेलीको सहेलिन हू,
कीनी केलि-मन्दिरमें कलपित केरे हैं।
कहैं 'पद्माकर' सुपास ही गुलाब पास,
खासे खस खास खुशबोइनके ढेरे हैं ।।
त्यों गुलाब नीरस सो हीरनके हौज भरे,
दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे हैं।
चोखी चाँदनीनै बिछी चौपर चमलिनके,
चन्दनकी चौकी चारु चाँदीके चँगेरे हैं ।।

अपने बालको सँवारती हुई, प्रियतमकी प्रतीक्षामें रत एक ऐसी ही नायिकाका चित्र एक अंग्रेज कविने खींचा है।

O somewhere, meek unconscions dove
That sittest ranging golden hair,
And glad to find thyself so fair
Poor ehild, that waitest for thy love

× × × ×

And thinking this will please him best
She takes a ribon or a rose,

नायिका अपने बालोंमें कभी रिबन लगाती है, कभी गुलाब, यह सोचकर इससे उसका प्रियतम अधिक खुश होगा।

पद्माकरने एक नायिकाके शरीरकी दीप्तिपर प्रकाश डालते हुए कहा है –

जुवति जुन्हाई सो न कछु और भेद अवरेखि,
धिय आगम पिय जानिगो चटक चाँदनी पेखि।

शेक्सपियरने भी रोमियोकी प्रेमिका जुलियटके बारेमें लिखा है :-
Oh, she doth teach the torches to burn bright,
Her beauty hangs upon the cheek of night,
Like a rich jewel in an Ethiop's ear
Beauty too rich for use, for earth too dear,
–Romeo & Juliet.

कहै 'पद्माकर' त्यो सहज सुगन्ध ही के,
पुज बन-कुजनमें कजसे भरत जात ॥
धरत जहाँ ई जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ,
मंजुल मँजीठ हीकी माठ-सी ढुरत जात।
हारन ते हीरे ढरै, सारी किनारन तैं,
बारन तें मुकुता हजारन झरत जात ॥

तुलनाके लिए हिन्दीके अन्य दो श्रेष्ठ कवियोके उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है —

किसुकके फूलनके फूलन विभूषित कै बॉधि
लीनी बल या बिगत कीन्ही रजनी;
तापर सँवार्यो सेत अबरको डबर,
सिधारी स्याम सन्निधि काहू न कहू जनी।
छीरके तरगकी प्रभाको गहि लीन्ही तिय,
कीन्हीं छीर सिधु छिति कातिककी रजनी;
आनन प्रभा ते तन छॉह हूँ छपाय जाति,
भौरनकी भीर सग लाय जात सजनी।

—दास

अगनमे चदन चढाये घनसार सेत सारी,
छीर-फेन कैसी आभा उफनाती है;
राजत रुचिर रुचि मोतिनके अभारन,
कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है।
कवि 'मतिराम' प्रानप्यारेको मिलन चली,
करिके मनोरथ मृदु मुसुकाति है;
होति न लखाई निसिचदकी उज्यारी मुख,
चदकी उज्यारी तन छाहौ छवि जात है।

— मतिराम

दासकी शुक्लाभिसारिका नायिकाके वर्णनमे कई दोष है। उनके उपादान स्वभाव-विपरीत हो गये है। किसुकके फूलने की प्रसिद्धि बसतमे ही है, न कि कातिककी शरद्-रजनीमे। रजनीमे भौरे भी नही उडते, क्योकि कवि-प्रसिद्धिके अनुसार वे सध्या-समयसे ही 'कमलक्रोडमे वदी' हो जाते है। फिर सगमे भौरोकी भीड होनेसे उसका अभिसार भी समुचित रीतिसे न हो सकेगा, ऐसा आभास मिलता है। मतिरामकी नायिका दोप

लोग देखि भरमैं कहाँ धौं है या घर में,
सुरँग भग्यो जगमगी ज्योतिनको कद है,
लालनको जाल है कि ज्वालिनको माल है,
कि चामीकर चपला है रवि है कि चद है;
—कालिदास त्रिवेदी

चंदकी कला-सी चपला-सो तिय 'सेनापति'
बालमके उर बीच आनँदको बोति है,
जाके आगे कचनमे रचक न पैये दुति
मानो मनमोती लाल माल आगे पोति है।
देखि प्रीति गाढी ओढो तनु सुख ठाढि
ज्योति-जोबनकी बाढी छिन-छिन और होति है,
झलकत गोरि देह बसन झीनेमे मानो
फानुसके अदर दिपति दीप ज्योति है।
—सेनापति

कालिदासने नायिकाके श्रृगार-भावका अधिक उद्घाटन नही करके उत्तेजनामात्र जगाया है। उन्होने आश्चर्य-भावको अभिव्यजित किया है। उन्हें नायिकाकी देह-दीप्तिका कुछ निश्चय ही नहीं होता। सेनापतिकी नायिका कालिदासकी नायिकाकी तुलनामे कम सुदर है, फिर भी नायकके हृदयमें आनदोद्रेक कराने मे पूर्ण सक्षम है। सेनापतिने चद-कला, चपलाको छोड दीप-ज्योतिसे नायिकाके शरीरके सौंदर्यकी तुलना कर उसके सौंदर्यको गिरा दिया है। पद्माकरके समान ये वर्णन स्वाभाविक और सजीव तथा मनोतृप्ति कर नही कहे जा सकते।

पद्माकर उक्त शुक्लाभिसारिकाके अतिरिक्त एक और उदाहरण इस प्रकार रखा है। यह भी सौंदर्य-प्रभाकी दृष्टिसे दर्शनीय है। यह भी चाँदनीसे बढकर सुषमाधारिणी है। इसके शरीरसे सुगधि निकलती और वनकुजोको यह महमह करती है। इसके चरण अत्यत सुकुमार ओर रक्तिम है। यह जहाँ-जहाँ पाँव धरती है, वहाँ-वहाँ लगता है, लाल रगके भरे घडे ढुलक गये। हारो-से हीरे गिरते जाते है, साडीकी किनारी तथा बालोसे हजारो मोती गिरते जाते है —

सजि ब्रजचंद पै चली यो मुखचद जाको,
चद चाँदनीको मुख मंद सो करत जात।

एडमड स्पेंसरकी 'सौंदर्यकी वाटिका' (The garden of beauty) वाली नायिका कुछ ऐही ही है। नायक उसके अधर चूमने जैसे ही गया, उसे प्रतीत हुआ कि मधुर पुष्पसे लदी हुई किसी वाटिकामे चला आया हो। नायकने क्या महसूस किया, इसका वर्णन उन्हीके शब्दोमे यह है –

For coming to kiss her
lips (Such grace I found)
Me seeme'd smelt
a garden of sweet flowers,
That dainty odours
from them threw around
Damsels fit to deck
their lover's bow's

अर्थात्––

अधर चूमने बढ़ा जभी (पाया मैंने ऐसा लावण्य)
मधुर वाटिकाके फूलोने खीच लिया हो ज्यो मनको,
भीनी-भीनी गंध निकलकर कण-कणको मादक करती
सच है, सुंदरियाँ देती है मधुर छाँह प्रेमी जनको।

नायिकाके अधर अत्यत सुगन्धित है। पद्माकरकी नायिकाने तो 'जाही जुही मल्लिका चमेली मन मोदिनी' की वाटिकाकी उपमा ही खराब कर दी है। उसकी सुगन्ध उस वाटिकासे भी मधुर है। वस्तुत अतिशयोक्तिके सहारे पद्माकरने नायिकाकी अपूर्व सुन्दरताकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। अतिशयोक्तिपूर्ण रूप वर्णनके लिए दो-तीन छन्द और भी दर्शनीय है।

अवयवेषु परस्पर बिंबितेष्वतुलकांतिषु राजति तत्तनो
अयमय प्रविभाग इति स्फुट, जगतिनिश्चिनुते चतुरोऽपि क ॥

अर्थात नायिकाके अवयव अपनी निर्मल कातिके कारण परस्पर प्रतिबिम्बित हो रहे है, जिससे उनके विभागका ज्ञान ही नही होता। उनका वास्तविक ज्ञान तो ससारका कोई चतुर प्राणी ही प्राप्त कर सकता है

सुन्दरी (कीदृशी) सा भवेत्येष विवेक केन जायते।
प्रभा मात्रंहि तरल दृश्यते न तदाश्रय । (दण्डी)

अर्थात् सुन्दरीकी सौन्दर्य-प्रभा इतनी अधिक है कि केवल प्रभामात्र दिखाई पडती है, उसमे छिपा हुआ, उसका आश्रयअर्थात् नायिकाका शरीर दृष्टिगत नही होता।

रहित है। इसका वर्णन भी साफ-सुथरा और स्वभाव–सम्मत है। मतिरामके उपादान 'चदन,' 'श्वेतसाडी,' 'मोतिनके आभरन' आदि शुक्लाभिसारिका नायिकाके योग्य उचित और स्वाभाविक है। पद्माकरका वर्णन इनकी अपेक्षा सुदर है। दासकी शुक्लाभिसारिकासे भी बढकर है। मतिराम नें उपादनोको अभिधेय करके रखा है, जहाँ पद्माकरने व्यग्य करके। पद्माकरने 'सजि' शब्दके द्वारा सब कुछ अभिव्यजित कर दिया है।

पद्माकरकी प्रौढाभिसारिकामे भी अपूर्ण रूप लावण्य है। वह गौरवर्णा और सुगधकी खान है। उसके चलनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई सुगंधिका खजाना ही खोल रहा है। वह अत्यत मोहक है। उसके गलेका तार तारोके समूहके समान चमक रहा है। उसकी चाल भी मतवाली है।

> घूँघटकी घूम सो सुझनका जवाहरके,
> झिलमिल झालरकी भूमि लों झुलत जात।
> कहै 'पद्माकर' सुधाकरमुखीके हीर,
> हारनमें तारनके तोमसे तुलत जात॥
> मद-मद मैंगल मतग लौं चले ही भले,
> सुजन समेत भुज भूषण डुलत जात।
> घाँघरे झकोरन चहूधा खोर खोरन है,
> खूब खसबोईके खजानेसे खुलत जात॥

पद्माकरकी एक नायिकाकी सौंदर्य-प्रभा अत्यत ही तेजपूर्ण है। उसके शरीरमे जो सौदर्य है, वह सौदर्य सुदर फूलोसे सुशोभित किसी फुलवारीमे भी नही होता। तारोकी तो बात ही क्या, तारोके सम्राट् चद्रमाकी चाँदनी भी उसकी सौदर्य-प्रभाके आगे फीकी लगती है। इसीसे नायिकाको कविने सूर्यके समान कातिमान बतलाया है।

> जाही जुही मल्लिका चमेली मन मोदिनोकी,
> कोमल कुमोदिनीकी उपमा खराबकी,
> कहै 'पद्माकर' त्यो तारन विचारनको,
> बिगर गुनाह अजगैबी गैर आबकी।
> चूर करी चोखी चाँदनीकी छबि छलकत,
> पलकमे कीनी छीन आव महतावकी,
> या परि कहत पीय कायर परैगी आज,
> जरद गलावकी अवाई आफतावकी।

कहै 'पद्माकर' गुराईके गुमान कुच,
कुभन पै केशरीकी कचुकी ठनै नही ॥
रूपके गुमान तिल उलमा न आनै उर,
आनन निकाई पाइ चन्द्रकिरनै नही ।
मृदुलता गुमान मखतूल हू न मानै कछू,
गनऊै गुमान गुनगौरिको गनै नही ॥

पद्माकरकी यह नायिका वस्तुत उनकी प्रतिभाकी उपज है ।

पद्माकरने प्राकृतिक उपकरणोके सहारे एक नायिकाका स्वाभाविक रूप चित्रित किया है । नायिकाकी सखी नायक कृष्णसे उसकी रूप-शोभा एव मनोव्यथाका वर्णन करती है । वह कुछ इस ढगसे नायिकाके मुखडेको कृष्णके सामने रखती है कि कृष्ण चकित-विस्मित हो जाते है, वह कहती है, वे क्यो नही उस चन्द्रको देखते, जिसमें दो लाल कमल धीरेधीरे लालिमा पा रहे है। उसके ऊपर एक कीर वधू भी बैठी हुई मोती चुग रही है । ऊपरसे तम छाया हुआ है, सूर्यके प्रकाशसे भी वह हटनेका नाम नही लेता। वस्तुत नायिकाकी सखी कहती है वे नायिकाके अपूर्व चन्द्रमुखको लालिमा प्राप्त करते हुए दोनो नेत्रोको क्यो नही देखते ? वियोगके मारे वह डूबी जा रही है । पुनरपि सुन्दर है । उसकी नासिका कीर वधूकी तरह मोहक है । उसके दाँत मोतीकी तरह चमकीले है । ऊपरसे घुघराले केश है, जो सूर्यके प्रकाश लगनेसे और चमकने लगते है ।

देखत क्यो न अपूरब इन्दु मे द्वै अरबिन्द रहे गहि लाली ।
त्यो 'पद्माकर' कीर वधू इक, मोती चुगै मनो व्है मतवाली ॥
उपर ते तम छाय रह्यो, रविकी दब ते न दवै खुलि ख्याली ।
यो सुनि बैन सखीके विचित्र भये चित चकितसे वनमाली ॥

रूढ एव परपरित उपमानोके सहारे पद्माकरने नायिका का जो अपूर्व रूप चित्र खीचा है, वह वस्तुत सुन्दर है । इसकी सबसे बडी विशेषता है, इसमें नायिकाके मनोभावको कविने कुशलतापूर्वक व्यक्त किया है । भावकी ऐसी कुशल अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है ।

पद्माकरकी एक नायिका इस प्रकार है । उसके नेत्र कमलके समान है, अधर मूगेके दुश्मन है, अर्थात् मूगोसे लालिमामे बढे-चढे है । क्यो, इसका कोई आधार नही है । स्तन सूर्यके समान चमकीले है । उनसे एक विचित्र प्रकार

दिला! क्योंकर मैं उस रुखसारे, रोशनके मुकाबिल हूं।
जिसे खुरशीदे महशर देखकर कहता है, मैं तिल हूं॥

—अकबर

नायिकाका मुखमंडल, अत्यन्त कांतिमान है, ज्योतिष्मान् है। प्रलय-भानु तो उसके आगे एक ज्योतिष्कणके बराबर है।

मिल्टन भी ईवका वर्णन करता हुआ आदमके शब्दोंमें कहता है —

So lovely fair that what seemed fair in all
that world seemed now,
Mean or in her summed up in her contained
And in her looks which from time infused
Sweetness into my heart unfelt before

अर्थात

इतनी सुषमावलीकी जगकी सुषमा उसके आगे सज्जित,
अथवा उसकी ही सुषमामें जगभरकी ही सुषमा केन्द्रित।
उसकी केवल एक दृष्टिने डाल दिया ऐसा सम्मोहन,
जिसका भान न पहलेसे था, ऐसा है उसमें आकर्षण!

संस्कृत-कवियों द्वारा वर्णित नायिकाओंमें कल्पनाका चमत्कार अधिक हैं, दण्डीकी नायिका भी उनकी सौन्दर्यकल्पनाकी उपज है। अकबरके सौन्दर्यमें अत्यधिक तेज और मिल्टनका सौन्दर्यानुभूतिमें माधुर्य और मर्यादा बोध है। मिल्टनकी नायिका मस्तिष्कका एक प्रकारकी नैसर्गिक तृप्ति देती है। पद्माकरका सौन्दर्य यद्यपि मिल्टनसे घटकर है, तथापि सुन्दर और ध्यातव्य है

एक गर्विता नायिकाका वर्णन करते हुए पद्माकरने कहा है कि उसकी वाणी इतनी मीठी है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। कोकिल उसकी वाणीकी समकक्षता नहीं कर सकता। शरीर अत्यन्त गौरवर्ण एवं कांतिमान है। उसके रूपके आगे तिलोत्तमाका रूप भी तुच्छ है। मुखका सौन्दर्य चन्द्रकिरणोंसे बहुत अधिक है। चन्द्रकिरणें उसके मुखसे होड़ नहीं ले सकती। उसके शरीरको मृदुलता रेशमकी मृदुलतासे बढ़ी-चढ़ी है। गुणमें वह इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि गनगौरि देवीको भी अपने सामने वह तुच्छ समझती है।

बानीके गुमान करु कोकिल कहानी कहा,
बानीकी सुबानी जाहि आवत जनै नहीं।

पद्माकरकी सौंदर्य-चेतना

सौदर्य, मानव-मस्तिष्कके लिए प्रमुख भोग्य पदार्थ है। पेटकी भूखसे तृप्त हो मनुष्य सौदर्यकी ओर दौडता है और मानसिक क्षुधाकी तृप्ति करना चाहता है। मानसकी भूख पेटकी भूखसे किसी प्रकार भी कम नही है। इसकी तृप्तिके अभावमे वह या तो पशुकी उपाधिसे भूषित करने योग्य होता है या जड अथवा पागल कहलानेका अधिकारी। सौदर्य-दृष्टि मानव और पशुका विभेदक गुण (differentia) है। यदि सौदर्यकी ओर किसीका मन आकृष्ट नही हुआ, तो समझाना चाहिए कि इस मनुष्यके मनमें विकार है। उसका मन या तो क्रियाशील नही है या रुग्ण है। रुग्ण मनुष्य भी सौदर्यसे प्रभावित होता है और उसको आस्वादता देता है। सौदर्य रोगका कभी-कभी उपचार भी बन जाता है।

सौदर्य, कुछ व्यक्तियोके अनुसार, मनुष्यके भाव-जगत्की उपज है। यह निस्सीम भाव-जगत्का, जिसे गोस्वामीजीने 'अपार भावभेद' का विशेषण दिया है, उत्कर्षक है। इसी भाव जगतसे यथेच्छ भावराशि चुनकर काव्यकार काव्य का महल खडा करता है। अत सौदर्य काव्य जगतका विशेष सहायक है। यह काव्य जगतमे रमणीयताको बढाता है और काव्यकी ओर आकर्षण उत्पन्न करता है। काव्यमे जब चयन और साज-सज्जाका प्रश्न खडा होता है, तो यही सौंदर्य चयन और साज सज्जा करनेवालेको पथ प्रदर्शित करता है। सौंदर्य भाव क्षेत्रका सामजस्य है। भावोमे, सौदर्य सामजस्य बिछाता और उनमे अशगत श्रृंखला (symmetry) उत्पन्न कर उनके आकर्षणको बढाता है। प्राचीन आचार्योकी भी यही मान्यता है। प्लेटो, अरस्तू आदि सौदर्यमे विभिन्नतामे एकताकी भावना देखते थे, जिनमे लय (rhythm) सामजस्य (harmony) के साथ-साथ अश-गत श्रृंखला भी विद्यमान हो। आजके आचार्य कल्पनाकी व्यष्टिमूलक अभि-व्यक्तिमें सौदर्य देख सकते है, पर प्राचीन आचार्योके अभिमत बहुत अशोमे ठीक है।

सौदर्य काव्यका एक अभिन्न अग है। डा० श्यामसुन्दर दास इसे 'काव्यका मौलिक उपकरण' कहकर पुकारते है। शिव और सत्यके साथ सौदर्य त्रैत बनाता है, जो कला और साहित्यका प्राण है। इसकी निश्चित व्याख्या और निश्चित रूप स्पष्ट करना मुश्किल है। यह भिन्न-भिन्न आचार्योके द्वारा भिन्न भिन्न

की दीप्ति निकलती है। बाल अंधकारके प्रतिद्वन्द्वी है, अर्थात् कालिमामे अन्धकारको भी पीछे छोड देते है

कमल चोर दृग, तुव अधर विद्रुम रिपु निराधार।
कुच कोकनके बन्धु है, तमके बादी बार ॥
(पद्माभरण)

चोर दृग कहकर पद्माकरने मानो इसकी सूचना दी है कि उसकी आँख जिसको देखती है, उसीका मन चुरा लेती है। यह रूप भी पद्माकरका अपना है। इसमें पद्माकरकी प्रतिभा फूटी पडती है।

पद्माकरने नायिकाओंके अतिरिक्त नायकोंके रूप-चित्रपर प्राय ध्यान नही दिया। यह भी युग-धर्मका ही प्रभाव कहा जा सकता है। नायकोंके अथवा अपने आश्रयदाताओं के एव अपने आराध्य देवके रूप-चित्रको खीचनेकी चेष्टा उन्होने नहीं की। न तो आश्रयदाताओंके शौर्य वीर्यको किसी रूपमें बाँधनेकी चेष्टा की, न अपने आराध्य राम, शिव कृष्ण आदिके ही रूप चित्र प्रस्तुत किये। उन्होंने एकमात्र विलासकी सामग्री जुटाई और नायिकाओंके ही रमणीय चित्र सामने रखे। पुनरपि उनके कृष्णका यह रूप उनके काव्यमें चित्रित मिलता है।

देखकर 'पद्माकर' गोविन्दकी अमित छवि,
संकर समेत विधि आनँद सो बाढो है,
झिमकि झूमत मुदित मुसकात गहि,
अचलको छोर दोउ हाथन सो आढो है।
पटकत पाँव होत पैजनी झुणक रव,
नैंक नैंक नैनन तै नीर कन काढो है।
आगे नँदरानीके तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाढो है।

वस्तुत बाल कृष्णके अमित सौन्दर्यका वर्णन न कर पद्माकरने उनके आग्रह एव हठका मूर्त चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है। पुनरपि शकर और ब्रह्मा तक इनके आग्रहको देखनेके लिए आनन्दसे भर गए है। कृष्णके अनुभावोके सहारे उनके मानसिक क्षोभको हम साकार रूपमे देखते है। कृष्णका यह चित्र भी ध्यान देने योग्य है।

आदर्श प्रतिष्ठित है। भेद अधिकतर अनुभूतिकी मात्रामे पाया जाताहै। न सुन्दरको कोई एकबारगी कुरूप कहता है और न बिल्कुल कुरूपको सुन्दर। सौंदर्यका दर्शन मनुष्य मनुष्यमे नही करता है, प्रत्युत पल्लव-गुफित पुष्पहासमें पक्षियोके पक्षजालमे, सिंदूराभ साध्य दिगचलके हिरण्यमेखला–मडित घनखडमें, तुषारावृत तुगगिरि–शिखरमे, चद्रकिरणसे झलमलाते निर्झरमे और न जाने कितनी वस्तुओमे वह सौदर्यकी झलक पाता है।" आई० ए० रिचर्ड्स सौदर्यको विपयीगत कहकर पुकारता है। वह कॉडवेलकी तरह सौदर्यको सामाजिक भावना नही मानता। सौदर्य उसके अनुसार विपयगत अथवा वस्तुनिष्ठ है।

सौदर्य वस्तुत प्रकृत जगत्की शोभा है। प्रकृतका अर्थ व्यापक अर्थमें मानव और मानवेतर दोनो प्रकृतिसे है। मानव-शरीरमे जो क्रियाएँ चलती है, वे स्वत प्रकृत है। मानव स्वय भी प्रकृति है। इस दृष्टिसे जो कवि मानव प्रकृतिका चितेरा है, वह भी सौदर्यका उपासक कहला सकता है। प्रकृत जगत् जिस अर्थमे रूढ है, उसमे मानवका स्थान हम नही मानते। ऐसा माननेपर हम प्रकृतिके पुजारी कविका अर्थ वाह्य प्रकृति अथवा मानवेतर प्रकृतिके पुजारीसे लेगे। वन-पर्वत, नदी-निर्झर, फूल पौधो आदिके चित्र उतारनेवाला कवि ही केवल प्रकृति-जगत्का कवि नही कहला सकता, वरन् मानव और मानवीके सौदर्यको चित्रित करनेवाला कवि भी प्रकृति-जगतका ही कवि कहकर पुकारा जायगा। मानव और मानवीके अतरग और वहिरग दोनो पक्षके चित्र प्राकृतिक चित्रणके अन्तर्गत आयेंगे। इन दोनो चित्रोमे सौदर्यका स्थान सुदृढ रूपसे सुरक्षित है। सौदर्य वस्तुत रूप-रेखा, रग आदिके सामजस्यमे ही है। यह किसी रूप या आकृतिके सुडौल और समजस विम्बको ही हमारे सामने रखता है। 'Beauty is an attempt to create pleasing forms,' अर्थात् सौदर्य आकृतियोके सुखद सम्बन्ध स्थापनाके प्रयास मे है।

सौंदर्यका मूल्याकन करना कठिन है और इसका निश्चित रूप-निर्धारण तो और भी मुश्किल है। ससारमे जितनी वस्तुएँ है, सबमे किसी न-किसी प्रकारका सौदर्य है। यहाँ जितने भी रूप है, सौदर्यका उतना रूप है। आचार्योके लिए इसको लेकर सौदर्यके रुप-धिरिण और परिभाषा गढ़नेमे जितनी कठनाई है, कवियोके लिए इसको चित्रित और रूपायित करनेमे उतनी ही आसानी और सुविधा है। जिस रुपको कवि अपनी प्रतिभासे चमका दे, वह रूप सुन्दर है, जिस कृतिको वह रूपायित करे, वह कृति सुन्दर है। चाहे वह प्रकृतिका कोई अश चुनें या किसी मानसिक भाव को ही किसी रूपमे व्यक्त करनेकी चेष्टा करे। वाह्य प्रकृति तो वस्तुतः उसके मानसिक भावोके स्पष्टीकरणका सहारा है।

रूपमें देखा गया है । एक कविने क्षण-क्षण बढ़ते हुए रूपमे सौदर्यका निवास माना है । कुछ लोगोने इसे शिवके वाह्य पक्षके रूपमें देखा है । कुछ लोगोने इसमे उपयोगका अश देखा है, कुछ लोगोने इसे अनुपयोगी और स्वप्नलोककी वस्तु माना है । गोस्वमी तुलसीदासने 'सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु' कहकर मानो यह बतलाया है कि सौदर्यकी जो वस्तु अपने लक्ष्य या कार्यके अनुकूल हो, वही सुन्दर है ।

सौंदर्यको कुछ लोगोने आत्मनिष्ठ भाववमात्र माना है । मनुष्य अपने मनसे किसी वस्तुको सुन्दर और किसीको असुन्दर बना देता हे । जब उसकी वृत्ति किसी वस्तुमें रम जाती है, तो वह उसकी दृष्टिमे सुन्दर और यदि नही रमती, तो वह असुन्दर हो जाती है । डा ह्यूमने भी सौदर्यको आरोपित माना है और बतलाया है –फूल इसलिए सुन्दर है की हम उसमे सौदर्यका आरोप करते है, नारी इसलिए मोहक है कि उसमे हम मोहकताका आरोप करते है । कोलरिज तो कहता है –'O Lady ! we receive but what we give!' अर्थात् 'ओ नारी, तुममें इसलिए सौदर्य मालूम पडता है कि हमनेसौदर्यका भाव तुमपर आरोपित किया है ।, विहारीने इसीको 'मनकी रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ' के बहाने सकेतित किया है । सौदर्य शीतल और सुगन्धित होता है, ऐसा यदि माने, तो कहना होगा कि सौदर्यमे हमने शीतलता और सुगन्धको आरोपित किया है । अन्यथा सौदर्य अपने-आपमें न शीतल है न उष्ण, न सुगधित न निर्गन्धित । उसमे किसी प्रकारका विकार नही, वह निर्गुण और निराकार है । गुण और आकारका आरोप हम अपनी सुविधाके अनुसार कर लेते है ।

सौंदर्य मनके अन्दरकी वस्तु है । जैसे वीर कर्मसे पृथक् वीरत्व कोई चीज नहीं है, वैसे ही सुन्दर वस्तुसे पृथक सौंदर्य कोई चीज नही है । कुछ रूप-रंगकी वस्तुएँ ही ऐसी होती है जो हमारे मनको प्रभावित कर लेती है और हम उन्ही वस्तुओके साथ तदाकार हो जाते है शुक्लजीके अनुसार यही तदाकार परिणति सौंदर्यकी अनुभूति है । जिस वस्तुके साथ मनुष्यकी जितनी तदा-कारिता होगी, उतनी ही उसकी सौदर्यानुभूति समझी जायगी । जिस वस्तु मे जिसका जितना मन रमेगा, वह वस्तु उसके लिए उतनी ही सुन्दर है । 'जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम' । शुक्लजी इसी वातको कहते है, "जिस प्रकारकी रूप-रेखा या वर्ण-विन्यासके किसीकी तदाकार-परिणति होती है, उसी प्रकारकी रूप-रेखा या वर्ण-विन्यास उसके लिए सुन्दर है । मनुष्यताकी सामान्य भूमिपर पहुची हुई ससारकी सव सभ्य जातियोमे सौदर्यके सामान्य

शरीरपर श्वेतबिन्दुओंको देखके वे मुग्ध हो गये और उन्हे लगा कि उसका शरीर जितना सुन्दर है, उतना दूसरे किसीका सभव नही है। उसके अग-अगमे जादू है। ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेवने स्वय अपने हाथोसे नारीका शरीर सँवार दिया और उसकी मोहकता बढा दी है। वह वशीकरण मत्र जानती है और सबके हृदय को आसानीसे आकर्षित कर सकती है।

सोभित सुमनवारी सुमन सुमन वारी,
कौन हूं सुमनवारी यो नहिं निहारी है।
कहे 'पद्माकर' यो बाँधनूं बलन वारीं,
वा व्रज बसन हारी ह्यौ हरन हारी है।
सुबरन वारी रूप सुबरन वारी,
सज सुबरन वारी काम कर की सँवारी है।
सी करन वारी स्वेद सीकरन वारी
रति-सी करन वारी मो बसीकरन वारी है।
('जगद्विनोद')

नारीका सुन्दर मन जितना कोमल और सुगन्धित है, उसकी बराबरी कोई फूल नही कर सकता। उसके सुन्दर मनपर फूलको आसानीसे वारा जा सकता है। उसको जिसने देखा, सब विस्मय विमुग्ध हो गए। उसकी चूनर जो बाँधकर रगी गयी है और लहरदार है, सबके हृदयको हर ले सकती है। वह सुन्दर गौर वर्णवाली है, उसपर सोनेको वारा जा सकता है: वह कामदेवके सुन्दर हाथो द्वारा सँवारी गयी है। उसके सीत्कारमे बडा आनन्द आता है। शरीरपर श्वेत बिंदु तो मोतीकी तरह चमक रहे हैं और दर्शकोके मन को अपनी और खीच रहे है। कामदेवकी स्त्री रति की तरह, जो सीत्कार करनेमे प्रसिद्ध है, यह नारी सीत्कार करनेवाली है

मरगजे हार बेसुमार बारुनीके बस,
आधे-आधे आखर सुये हू भाँति जपने।
कहै 'पद्माकर' सु जैसे है रसीले अंग,
तैसी ही सुगन्धकी झकोरनकी झपने।
जैसे बनि आय आप, तैसी ही बनाओ मोहि,
मेरो अभिलाष लाख ये ही भाँति धपने।
लाल दृग-कोरनमै मेरे नैन बोरे अब,
कैधो इन नैननि निबोरौ नैन अपने
('शृंगार सग्रह')

भावोके वास्तविक प्रतिरूप (Objective corelative) चुननेमे प्रकृति कविको सहायता पहुचाती है ।

मानव मन भिन्न-भिन्न रुचिके अनुसार सौदर्यके भिन्न-भिन्न मानदड निर्धारित करता है । किसी देशम छोटे पाँव और छोटी आँखे सुन्दर मानी जाती है तो दूसरे देशोमे सुडौल पैर तथा लबी या गोल आँखे सुन्दर मानी जाती है । कही भूरे बाल और कजी आँखे सुन्दरता-सूचक समझी जाती है, थो दूसरे देशोमे काले बाल तथा काली आँखे ही सुन्दरताका आदर्श है । इसी प्रकार अनेक उदाहरण रखे जा सकते है । अब प्रश्न उठता है कि सौदर्यके मानदडमे ऐसा अन्तर क्यो पडता है ? विचार करनेपर इसका मूल कारण भिन्न सस्कृतियो तथा सभ्यताओके क्रमिक विकास मे पलनेके कारण मानव-मनका रुचि-वैचित्र्य ही जान पडता है । पर इतना तो निश्चित है कि सुडौल शरीर, गुलाब या कमलके फूल, बादल, नदी, निर्झर आदिमें हर व्यक्तिको किसी-न-किसी प्रकारका सौदर्य दिखायी देगा । कविको इनमे सौदर्य की मात्रा अधिक दिखायी देगी, साधारण मनुष्यको कम । साधारण मनुष्य जहाँ इनके बाह्य रूप-पर ही मुग्ध होता है वहाँ कवि इनके अन्तरालमें प्रवेश कर इनके अन्त सोदर्यको भी चित्रित करनेका प्रयास करता है ।

पद्माकरने नारीके प्रकृत रुपमें सौदर्य अधिक देखा । इसका एकमात्र कारण यह है कि उनके समयमे यह बात समान रुपसे आदृत थी कि नारी सौदर्यकी खान है । नारी के सम्पूर्ण शरीरमे इतनी शोभा, इतना सौदर्य है कि उसके सामने प्रकृतिकी सुन्दरता हेय है वस्तुत यह ऊपरी दृष्टिकोण था और नारीके रूप-पर्वमे स्नान करना युग-धर्म समझा जाता था । पद्माकरने युग-धर्मका विरोध नही किया और नारीके रूप-सुधाका छककर पान किया । नारी नरकी अपेक्षा वस्तुत सुन्दरी होती है । उसके अग-अगमे इतना सौन्दर्य निवमित है कि उसका मूल्य नही आँका जा सकता । उसके शरीरका हर भाग खूबसूरत है और उस पर प्रकृतिका सुन्दर-से सुन्दर रूप वारा जा सकता है । नारीके अधरोमे जितनी लालिमा है उतनी लालिमा प्रकृतिके बिम्बाफल, गुलाब अथवा कमलमे नही है । उसके मुखपर जितनी स्निग्धता, तरलता और आल्हादकता है, उतनी चन्द्रमा, कमल आदिमें नही है । उसके केशराशि में जितना सौन्दर्य है, उतना प्रकृतिके ऊदे-ऊदे या काले- काले बादलोमे नही है । उसके चरणोमें, हाथोके तलवेमे जितनी लाली है, उतनी प्रकृतिके सुन्दर से-सुन्दर फूलमे नही है । यह दृष्टि रीतिकालके प्राय हर कविको मिली थी । पद्माकर इससे वचित नहीं थे । उनकी चेतना नारीके सौन्दर्यमे भलीभाँति रम गयी थी। नारीके गौर

वीथिनमें व्रजमें नवेलिनमे वेलिनमें
बननमे बागनमें बगरायो बसंत है
('जगद्विनोद')

पद्माकरकी दृष्टि वसतके किसी खास रूपपर केद्रित नही है। केवल यहा वसत है, वहाँ वसत है, कह देनेसे वसतका कोई सश्लिष्ट चित्र आँखोंके सामने नही आता। यह तो शब्दका चमत्कार है, श्रोताका मन विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। वस्तुत वसतके प्रकाश, उसकी मीठी खुमारीका थोडा बहुत जादू चारो ओर देखनेमे आता है। पर कैसा जादू है, इसका वर्णन नही है। इससे पद्माकरकी सौदर्य-चेतना का पता चलता है। इनकी चेतना प्रकृतिके किसी खास रूपपर मुग्ध नही है। वस्तुत इसका एक समाधान यह जुटाया जा सकता है कि पद्माकरको सुन्दर वातावरणका निर्माण करना ही अभीष्ट रहा होगा। दरबारकी शोभा जो इनका आश्रयस्थान था वर्णित करना इनका लक्ष्य होगा। यही कारण है, षड्ऋतुका वर्णन भी षड्ऋतुके लिए नही हो पाया है। वस्तुत इनका ध्यान दरबारके सौंदर्यपर केद्रीभूत था। बाहर इनकी दृष्टि मानो रमती ही नही थी। इन्होने दरबारमें रहकर ही जैसे फूल-सी सुकुमारीके सौंदर्यका पान किया और उसे फूलोके हिंडोरेमे झुलाकर अपने स्वामीकी सौदर्य-लिप्साकी पूर्ति की।

फूलनके खंभा पाट पटरी सुफूलनकी,
फूलनके फँदना फँदे है लाल डोरेमें
कहै 'पद्माकर' वितान तने फूलनके
फूलनिकी झालरि त्यो झूलत झकोरेमे।
फूल रही फूलन सुफूल फुलवारिनमें,
फूलहि फरस फवै है कुंज कोरेमे।
फूलझरी फूलभरी, फूलजरी फूलनमें,
फूलई-सी फूलति सुफूलके हिंडोरेमे।
(शृंगार-सुधाकर)

कालिदास भी प्रकृतिके सौंदर्यपर मुग्ध थे, पर उनकी दृष्टि भी प्रकृतिसे अधिक विलासवती रमणियोपर केद्रीभूत थी। उन्होने सद्य स्नाताओको छोड कर रतिक्लान्ताओ पर अधिक ध्यान दिया और उनकी प्रत्येक कशिशका चित्रण किया। वस्तुतः कालिदास विलासी प्रकृतिके जीव थे। विलास ही उनके

नारीका अंग-अंग जैसा रसीला है, मादक है, वैसी ही सुगन्ध भी उससे निकलती है। उसने अपने रक्तिम नेत्रोंमें पद्माकरके नेत्रोंको डुबो दिया, अथवा पद्माकरके नेत्रोंमे अपने ही नेत्र निचोड डाले। तात्पर्य यह कि कवि नारीके दर्शनमात्रसे मुग्ध हो गया। नारी इस तरह जादू करनेवाली है।

पद्माकरने काव्य-जगत्‌मे नारी-सौंदर्यको चित्रित करते हुए प्रवेश किया। प्रकृतिका सौंदर्य नारी-सौंदर्यके आगे फीका लगा। युग की प्रथाके अनुसार जो कवि राजाश्रयमें रहते थे, राजाओं, अपने आश्रयदाताओंको प्रसन्न करना ही उनका प्रमुख ध्येय हो जाता था। यही कारण है कि रीतिकाल की कविताएँ 'स्वांत सुखाय' कम, 'स्वामिन सुखाय' अधिक हुआ करती थी। पद्माकर कई राजाओंके राजाश्रयमे रहे। अतएव उनकी विलास-सामग्री जुटाकर उन्हे प्रसन्न करना ही उनका सर्वप्रथम लक्ष्य होता। यही बात उनके काव्य जीवनमे आगे चलकर देखनेमें आयी। जिन रचनाओंको लेकर इन्हे सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली, वे शृंगार-रस की ही रचनाएँ है। शृंगार-रस मे भी विशेषकर नारी-सौंदर्यकी विविध विलासमयी आकृतियोंपर लोग अधिक मुग्ध हुए।

पद्माकरने प्रकृति-जगतपर भी ध्यान दिया और प्रकृतिके सौंदर्यका भी छककर पान किया। पर उनकी दृष्टि प्रकृतिमे उतनी न रमी, जितनी कि नारी-शरीरके तीर्थमे। यही कारण है, प्रकृतिके आंतरिक सौंदर्य का विश्लेषण उन्होंने नहीं किया। प्रकृतिके ऊपरी सौंदर्यपर दृष्टि डाल ली। यह युग-धर्मके अनुसार भी आवश्यक था। रीति-ग्रंथोंकी रचनामें प्रकृतिका वर्णन उद्दीपनके रूपमें अवश्यंभावी था। अतएव पद्माकर इससे कदापि अपनेको बचा नहीं सकते थे। प्रकृतिका चित्र उन्हे खींचना ही था। और रीतिग्रंथके निर्माणके सिलसिलेमें रस-ग्रंथमे ही सही प्रकृतिके कुछ चित्र उन्हे रखने थे। विशेषकर षड्ऋतु-वर्णन तो हर रीति कविके लिए अनिवार्य था। पद्माकरने षड्ऋतु-वर्णनकी परम्परा निभाकर प्राकृतिक सौंदर्यकी ओर भी अपना ध्यान केंद्रित किया।

कूलनमे केलिनमें कछारनमें कुंजनमें
क्यारिनमें कलीन-कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्माकर' परागहूमें पौनहूमें पातनमें
पीकन पलासन पगंत है।
द्वारमे दिसानमें दुनीमें देस-देसनमे
देखो दीप दीपनमें दीपित दिगंत है।

कोचै तकै इहि चाँदनी ते अलि, याहि निवाहि बिया अवलोचै।
लोचै परीं सिगरी परयक पै,बीती घरी न खरी-खरी सोचै ॥

('जगद्विनोद')

उत्कण्ठिता नायिका पलँगपर बिलकुल ठण्डी होकर नायकके बारेमें तरह-तरह-की कल्पना कर रही है।

एक नायिका, जो लज्जावती और कुलांगना है स्नान करते समय अपने ऊँचे स्तनोंको जघाओंमें छिपाती और शरीरको ध्यानसे देखती है। उनकी मानसिक लज्जाका सौंदर्य साकार रूपमें उपस्थित है –

आजु काल्हि दिन द्वैकते, भई और ही भाँति।
उरज उचौहन दै उरू, तनु तकि तिया अन्हाति ॥

('जगद्विनोद')

एक नायिकाके, जो प्रौढा आनन्द-समोहा है जो काम कलाके गूढ रहस्यो से परिचित है, मानसिक विपर्यस्तता का सौंदर्य-चित्र पद्माकरने इस प्रकार खीचा है। वह नायकके साथ रमण कर चुकी है। उसके गलेका हार टूट गया है। वह मुग्ध है। मुग्धा अन्तिम सीमापर है। यहाँ तक कि वह 'कुल कान' की सुधि भूल गई है। कटिबंध और केश सँभालनेका होश उसे चार घडीमे होता है। उसका रूप-सौंदर्य देखने योग्य है –

रीति रची विपरीत रची रति प्रीतम संग अनग-झरी में
त्यों 'पद्माकर' टूटे हरा ते सरासर सेज परी सिगरी में ॥

यो करि केलि विमोहित ह्वै रहीं, आनँदकी सुघरी उघरी मे।
नीवी औ बार सँभारिबेको सुभई सुधि नारिको चारि घरी में ॥

('जगद्विनोद')

एक नायिकाकी लज्जा और औत्सुक्यका सौंदर्य-चित्र पद्माकरने इस प्रकार दिया है। नायिका सुकुमारी और कोमलांगी है, जिसको देखता है, वही मुग्ध हो जाता है। पर उसके मनमे सकोच है, झिझक है। किसीसे बातचीत करती है तो वह डरती भी है। इसलिए घूँघटका वह उपयोग करती है और घूँघटसे ही कटाक्षपात करती है। इसके मुख मोडने, कटाक्षपात करने, दूसरोके साथ बातचीत करनेमे पद्माकरको बहुत आनन्द आता है। उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि वह रसके बीज बोती चलती है –

जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। अतएव कालिदासकी चेतना भी रमणियोके सौंदर्यकी ओर उन्मुख थी। कालिदासका मन या प्रिया मुखोच्छ्वास विकपित मधु पीनेकी इच्छा रखता था या नई व्याही हुई रूपवती बहूके साथ रमण करना चाहता था। इसका फल यही हुआ कि प्रकृतिके भी हर कार्य-कलापमें विलास-सौंदर्य इन्हे अधिक दिख पडा। इनके राम विलासके भूखे अधिक बन पाये। अयोध्यासे लौटते हुए समुद्रमे नदियोको गिरते हुअे देखा, तो इनकी सौंदर्य-चेतना विलासके लिए कटिबद्ध हो गई। इन्हे लगा कि समुद्र विलासी नायककी तरह नदियो, विलासवती रमणियोके अधरोको चूस रहा है और अपने अधरोको भी चूमनेके लिए इशारा कर रहा है। प्रेमका आदान-प्रदान दोनो ओरसे होता है

मुखार्पणेषु प्रकृति प्रगल्भा स्वयं तरंगाधरदानदक्ष
अनन्य सामान्य कलत्रवृत्तिः पिवत्यसौ पाययते च सिंधो।

पद्माकरकी दृष्टि बहुत व्यापक नही थी। वे प्रकृतिकी विविध चेष्टाओ-से अधिक नारीकी चेष्टापर मुग्ध रहनेवाले जीव थे। नर-सौदर्यसे अधिक नारी-सौदर्य इनके लिए आकर्षक था। अपने आश्रयदाताओकी वीरताके चित्र इन्होने प्रस्तुत किये हैं और उन चित्रोमे नर-सौदर्यका रूप निखरा है। किंतु पद्माकरका ध्यान लोलिम्बराजकी निम्नाकित पक्तियोपर अधिक आकृष्ट दिखता है:

येषा न चेतो ललना मुलग्न मग्न न साहित्य-सुधा-समुद्रे।
ज्ञास्यन्ति ते किं मम हा प्रयासानन्धा यथा वारवधू विलासान्॥

तात्पर्य यह कि ललनाओके रूप सौदयका जिसने पान नही किया, उसने ससारका आस्वाद कुछ नही जाना। अन्धा जैसे वार-वधूटियोके विलाससे वचित रहता है, वैसे ही वह मनुष्य भी आनन्दके बहुत बडे अशसे वचित रहा।

पद्माकरने नायक-नायिकाओके मानसिक सौदर्यपर ध्यान दिया। उन्होने शृगारके सयोग और वियोग दोनो पक्ष चमकाये। इस सम्बन्धमें नायक और नायिका दोनोकी मनःस्थितियोका रूप-चित्रण किया। इनकी नायिका जहाँ नायककी प्रतीक्षामें रत और चिन्तित है, वहाँ नायक भी नायिकाके रूप दर्शनके लिए आतुर है। प्रमका आदानप्रदान दोनो ओरसे होता है। एक नायिका की मानसिक उद्विग्नताका चित्र इस प्रकार है :-

सोचे अनागम कारण कन्तको, मोचै उसासन आंसहु मोचै।
सोचे न हेरि हरा हियको, 'पद्माकर' मोच सकै न सँकोचै।

निकली है, जिसमे विष और मदिराका निवास था, अत वे भी सीताकी समानता नही कर सकती। अतएव तुलसीदासने सीताकी उपमाके लिए असमर्थता प्रकट करते हुए कहा– 'जग अस जुवती कहाँ कमनिया'। वस्तुत उन्हे माँ सीताकी अद्वितीयता सिद्ध करनी थी। पद्माकरके सामने ऐसा कुछ बधन नही था। उन्होने तुलसीकी तरह यह नही लिखा –

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप होई।।
सोभा–रजु मदरु सिगारू। मथै पानि-पकज निज मारू।।

एहि विधि उपजे लच्छि जब, सुदरता सुख-मूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहि सीय समतूल।।

पद्माकरके सामने राधा-कृष्णकी मूर्ति अवश्य थी। पर स्वामियोके विनोदके लिए उन्हे सामान्य नर–नारीके रूपमें ही चित्रित करना पडा। यह युग–धर्मका प्रभाव है।

सूरदासके सौदर्य-चित्र भी स्वाभाविक और सुदर है। इनमे आध्यात्मिकता भी है, भौतिकता भी। वस्तुतः सूरदास भक्त कवि थे और राधा-कृष्णकी भक्तिमे डूबे होनेके कारण उनका सौदर्य-चित्र अश्लील और कामुक नही हुआ। उनकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक थी और प्राकृतिक उपमाके सहारे उन्होने राधा और कृष्णका मनोहर चित्र खीचा है। उनकी राधा निर्मल चाँदनीकी तरह गौरवर्ण है। स्याम अलकोके बीच माँगके मोती शकरके सीस-पर गगाकी तरह झलकते है। कानमें कर्णफूल सुशोभित है। गोरे ललाट पर सिंदूर शोभायमान है, नयन मतवाले है। नाक चम्पाको कलीके समान है। उसका शरीर मानो कचनका है उस पर नोली साडी अत्यन्त सुशोभित है। कवि राधाके नख–शिख वर्णनमे अपनेको असमर्थ पाता है –

'नख शिख शोभा मोपै बरनी नहि जाई।
तुमसो तुमही राधा स्यामहि मनभाई।।'

वृषभानु नंदनी अति सुछविमयी बनी।
बंदावन–चद राधा निरमल चाँदनी।।

स्याम अलकनि–सुबीच मोती दुति मंगा।
मानहुँ झलमलति सभुके सीस गगा।।

कंचन-से तनु सोहै नीलाम्बर सारी।
कुहु निसा-मध्य मनौ दामिनी उज्यारी।।

एक सों बतराइ कछू छिन एकनको मन लै चली लै चली ।
एकनको तकि घूंघटमें, मुख मोरि कनैखिन दै चली दै चली ।।
('जगद्विनोद')

नायक भी नायिकाके अभावमें सुखी नहीं है। पावस ऋतुमें उसे नायिकाका अभाव खलता है। वह विधिको कोसता है, दैवको निन्दा करता है। उसके मनमें जो चिन्ता है, उसका साकार रूप पद्माकरने खींचा है। वह प्रकृतिके उद्दीपनकारी रूपसे घायल है। उसके कलेजेमें एक प्रकारकी हूक उठती है। पद्माकरने उसकी इस हूकको सुना है और उसकी तदनुभूति की है;

सांझके सलोने घन सवज सुरगन सों,
  कैसे के अनंग अग अगनि सतावतौ ।
कहै 'पद्माकर' झकोर झिल्ली सोरनको,
  मोरनको महल न कोऊ मन ल्यावतौ ।।
काहू विरहीकी कही मानि ले तौ जो पै दई,
  जगमें दई तौ दयासागर कहावतौ ।।
एरे विधि बौरे गुनसार घनो हो तौ जो पै,
  विरह बनायो तौ न, पावस बनावतौ ।।
('जगद्विनोद')

एक नायककी मानसिक अन्यमनस्कताका चित्र पद्माकरने यों खींचा है। वह उदास खडा हुआ है। कोई सखी उससे आकर कहती है—नायिका किसी प्रकार जीवित है, वस। उसका शरीर जुराफ तेज तज चुका है, वह चलकर उसे मनाये। सखी अप्रत्यक्ष रूपसे नायकका सौंदर्य भी पीती है। उसके रूठनेमें आनन्द भी लेती है। वह कहती है·

रूसि रहे तुम पूसमें, है यह कौन सयान'।

तुलसीदासका सौंदर्य-चित्रण पवित्र और उत्कृष्ट हुवा है। इसके पीछे उनका मर्यादावादी दृष्टिकोण काम करता है। तुलसीदासके रामका सौंदर्य अद्वितीय है। उनकी सीता भी परम सुन्दरी और लावण्यवती है। सरस्वती, पार्वती, रति, लक्ष्मी आदिसे उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। इसका कारण देते हुए तुलसीदासने लिखा है कि सरस्वती मुखर है, सीता नहीं। पार्वतीका शरीर आधा है, सीता वैसी नहीं। रति अपने पतिके शरीरके नष्ट हो जानेके कारण दुखी है, सीतामें उस प्रकारका दुख नहीं। लक्ष्मी समुद्र मन्थनसे

इन्दुमती और रति दिन-रात श्रृंगार करने पर भी सीताकी समानता नही कर सकती। कमल उनकी शोभाके आगे लज्जित है, सूर्यका प्रकाश भी उनके समान तेज नही रखता। कामदेव उनकी शोभा अंकित करनेमें असमर्थ है। अनेक चंद्रमा शायद उनके रूपकी समता कर सके तो कर सके, अन्यथा उनका सौंदर्य, उनकी शोभा अनुपम है।

को है दमयन्ती, इन्दुमती, रति रातिदिन,
होहिं न छबीली छन-छन जो सिंगारिये।
'केशव' लजात जलजात जातवेद आये,
जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये।
मदन निरूपन निरूपम निरूप भयो,
चन्द बहु रूप अनुरूप कै विचारिये।
सीताजीके रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तो वारि वारि डारिये।
(रामचंद्रिका)

पद्माकरने भी इस प्रकारकी कल्पनासे प्राय काम लिया है। वस्तुत भक्ति-भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने सौंदर्य-चित्र अंकित नही किये। उनके सामने दरबारका वातावरण था। स्वामियोको खुश करना ही उनका अभीष्ट था। अत पद्माकरके रुप–चित्रोसे हम सद्य आनन्दकी प्राप्ति कर लेते है और हमारी वासनाकी भी तृप्ति हो जाती है। एक दोहेमे उनके नख-शिख-वर्णनका प्रयास इस प्रकार है –

कमल चोरदृग, तुव अधर विद्रुम-रिपु निरधार।
कुच कोकनके बंधु है, तमके बादी बार॥
('पद्माभरण')

नायिकाकी चोर आँखे कमलके समान है, उसके लाललाल होठ मूँगेके दुश्मन है। उसके कुच कोक पक्षियोके बंधुके सदृश है। उसक केश तमके वादी है, अर्थात् अंधकारके प्रतिद्वन्द्वी है।

पद्माकर भौतिक सौंदर्यकी ओर उन्मुख दीखते है। इनके सौंदर्य-चित्रोमें भौतिक तत्त्वोकी अधिकता है। इन्होने सौंदर्यके आत्मिक अथवा आध्यात्मिक रूपपर अधिक ध्यान नही दिया। सौंदर्य उनके लिए बाह्य पार्थिव आकृति या शारीरिक रूप-रेखापर ही आधारित है। इन्होने मानसिक और पार्थिव

कहा जा सकता है, सूरकी सौदर्य-चेतना वासनाकी भूखी नही थी। पवित्रताकी ओर वह भी आकृष्ट होना जानती थी। पद्माकरकी चेतना इतनी पवित्र नही कही जा सकती।

विद्यापतिका सौदर्य-चित्रण ऐन्द्रिय है। वह कामुक की कामुकता-वृत्तिका सुगम साधन है। राधा और कृष्ण सामान्य नर-नारीके रूपमे चित्रित किये गये है। विद्यापति की दृष्टि इनके बाह्य रूपपर तो मुग्ध हो रही है, इनके साथ मानो अभिसार भी करना चाहती है। कृष्णके प्रति विद्यापतिके भक्तिभावकी जरा भी सुगंधि नही आती। विद्यापतिकी सौदर्य- चेतना वासनोन्मुख है।

> कुच जुग परसि चिकुट फुजि परसल, ता अरुझायल हारा;
> जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल, चाँद बिहिन सब तारा।
>
> चाँद सार लए मुख घटना करु, लोचन चकित चकोरे,
> अमिय धोय आँचर धनि पोछलि, दह दिसि भेल उँजोरे।

पद्माकरका सौदर्य-चित्रण विद्यापतिके सौदर्य-चित्रणसे होड ले सकता है। पर विद्यापतिमे जहाँ विलासकी प्रचुरता है, वहाँ पद्माकरमे सयम और विवेककी प्रधानता। विद्यापतिकी भाँति पद्माकरने अपने चित्रणको बहुत वासनात्मक और बहुत अश्लील नही बना दिया है। पद्माकर इस दृष्टिसे एक सीमित मर्यादावादी सौंदर्यके चितेरे कहे जायेगे।

केशवदास एक चमत्कार-प्राण कवि थे। शायद इन्होने कवि-हृदय नही पाया था। सस्कृत ग्रथोके अध्ययनके फलस्वरूप ये कवि बन गये थे। आचार्य बननेकी धुनमे कविताकी भी हत्या हो गयी है। वस्तुत केशवदासका ध्यान रूप-चित्रणसे अधिक वैचित्र्य और चमत्कारके प्रदर्शन पर अधिक था। उनके रूप-सौदर्य न तो ऐन्द्रिय है, न आध्यात्मिक। उनमें विस्मयोत्पादकताकी मात्रा अधिक है। वे नारीको सौंदर्यका आगार मानते है। उसके मुखमे ब्रह्माने आकाशके चद्रमाकी चौगुनी शोभा दी है।

> गगन चंद्र ते अति बडो, तिय-मुख-चद्र विचारु।
> दई विचारि विरचि चित, कला चौगुनी चारु॥
>
> (रामचद्रिका)

सीताका रूप-सौदर्य खीचते हुए उन्होने सीताके शरीर का कोई स्पष्ट रूप नही दिया, केवल उसकी शोभाका अनुमान मात्र करा दिया। दमयन्ती,

गोश-पेंच, कुंडल कलंगी, सिरपेंच,
पेच पेचन ते खेंच बिनु बेचे वारि आये हो।
कहैं 'पद्माकर' कहाँ वो मूरि जीवन की,
जाको पग धूरि पगरी पै पारि आये हौ।
बेगुनके सार ऐसे बेगुनके हार अब,
मेरी मनुहारि कै वृथा हीं धारि आये हौ।
पाँसा मार खेलौ कित कौन मनुहारिन सौं,
जीति मनुहारि मनु हारि-हारि आये हो।

('जगद्विनोद')

नायिका परम सुन्दरी है। उसके शरीरसे सुगंधि निकलती है। उसने अपने शरीरकी पवित्र सुगंधिसे घर भरको सुवासित कर दिया है। उसका मुख चंद्रमाको भी मात करता है। वह गुणवती और परम चातुरी है। वह छल करना भी जानती है। उसका हार भी सुन्दर है, इतना सुन्दर कि वह नायकसे गले लगने, रमन करनेके समय उसे नही उतारती। हारके इस सौंदर्यमे पद्माकरकी सौंदर्य-दृष्टि अधिक तृप्ति-लाभ करती है—

जगर मगर दुति दूनि केलि मन्दिर में,
बगर बगर धूप अगर बगार्‍यो तू।
कहैं 'पद्माकर' त्यों चंद ते चटकदार,
चुबनमें चारु मुख चंद अनुसार्‍यौ तू॥
नैननमें बैननमें सखी और सैननमें,
जहाँ देख, तहाँ प्रेम पूरन पसार्‍यो तू।
छपत छपाये तऊ छल न छबीली अब,
उर लगिबे की बार हार ना उतार्‍यौ तू॥

-('जगद्विनोद')

पद्माकरने सौंदर्यका विवेचन आचार्यकी तरह खंड खंड करके नहीं किया। न तो उन्होंने दार्शनिकोंकी तरह उसमें उपयोगिताका अभाव बतलाया, न उसे उपयोगी ही करार किया। सौंदर्यको पद्माकरने कविकी दृष्टिसे देखा और कविकी हैसियतसे ही उसकी अभिव्यक्ति दी। इनके अंकित चित्र स्वत सौंदर्यके उदाहरण बन गये। ये इनकी भावानुभूतिकी स्पष्टता और उसके

सौदर्यका साक्षात्कार तो जरूर किया है, पर आत्मिक सौदर्यका आस्वाद उन्होने नहीं लिया है। इन्होंने जिस सौदर्यका वर्णन किया, वह अतीन्द्रिय और भावात्मक नही है। शान्त-रसके प्रसग में आध्यात्मिक सौदर्यका इन्होने सकेत मात्र दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि युग-धर्मके कारण आध्यात्मिक सौदर्यके चित्र खीचनेका इन्हे अवसर नही मिला। 'नाककी नोकमे दीठि दिये नित, चाहे न चीज कहूँ चितचाही' वाले सत-जन ही आध्यात्मिक सौदर्यका पान करते है। इसलिए पद्माकरने इन्हे शिरोमणि बतलाया और कहा कि जिनकी दृष्टि त्रिकुटीमे केद्रित हो जाती है, उसके लिए धनका अभाव, जनका अभाव, परवाहका अभाव ही धन बन जाता है, ऐसे व्यक्ति ही उस आध्यात्मिक सौदर्यका साक्षात्कार करते है जो मरता नही, बदलता नही, छीना नही जाता, जो अजर, अमर और अविनाशी है।

पद्माकरकी सौदर्य-दृष्टि वस्तुओके बाह्य रूपको भेदकर अन्तरालमे प्रविष्ट नही हुई। नर हो या नारी, प्रकृति हो या कोई वस्तु पद्माकरकी दृष्टि प्राय' ऊपर-ऊपर की ही रही। कल्पनाके पखपर चढकर ये वायव्यलोकमे नही गये न जगतमे पैर रखा। इनका भाव-जगत् वायव्य और अतीन्द्रिय नही है। इन्होने नर नारी एव प्रकृतिके स्थूल सौदर्यपर अधिक ध्यान दिया। प्रकृतिके उपकरणका इन्होने कम उपयोग नही किया। वह उद्दीपनके रूपमे, उपमा, उत्प्रेक्षाके रूपमे बहुतायतसे काममे लायी गयी। आलम्बन इनका स्थूल और सहज-ग्राह्य रहा। इससे एक लाभ यह हुवा कि इनके काव्यमे स्पष्ट अभि-व्यक्ति अधिक हो पायी। यही भावोकी स्पष्टता, अभिव्यक्तिकी सफाई इनकी लोकप्रियताका प्रमुख कारण बनी।

पद्माकरकी सौदर्य-दृष्टि केवल शारीरिक या आगिक सुषमामे ही निबद्ध नही रही, बल्कि आभूषणोमे भी वह सौदयके दर्शन कर सकी। नायक जब नायिकाके पास आता है, तो नायिकाकी दृष्टि नायकके आभूषणोपर पडती है और क्षण-भरके लिए खीझती है, नायक किस प्रेमिकाके यहासे होकर आया है। कारण, नायकके कुडल, कलँगी, सिरपेच, पेच, जो कानपर सुशोभित थे, मलिन दिखलाई पड रहे है। उसकी पगडीपर धूल पडी हुई है। उसके गले का हार निष्प्रभ दिखाई पड़ रहा है। वह जरूर किसी प्रेमिकाके साथ रमण करके आया है। इसीसे वह खोया-खोया दिखलाई पड रहा है। नायिकाने नायकको आभूपणोसे भाँप लिया कि वह किसी प्रेमिकासे अपना मन हार आया है –

पद्माकरका कल्पना-चमत्कार

कल्पना काव्यकी विधायिका शक्ति है। कल्पनाके ही सहारे कवि अपने काव्यका विशाल महल खडा करता है। अत काव्यको लोगोने कल्पनाकी अभिव्यक्ति कहकर भी पुकारा है। कल्पना- शक्ति के सहारे कविका पथ-प्रदर्शन होता है। कदाचित् इसीलिए प्राचीन भारतीय आचार्योंने कल्पना पर विचार न कर कवि -प्रतिभा पर ही विचार किया। क्रोचेने इसी शक्ति को 'प्रतिभा ज्ञान' (Intuition) कहकर पुकारा। ब्लेकने इसीको 'विशुद्ध अन्तर्दृष्टि' कहा। शेक्सपियरने इसे अद्भुत शक्ति माना, क्योकि यही अज्ञात वस्तुओको शारीरिक रूपमे प्रगट करती है जिसको कविकी कलम आकृति देती है। वायवी न-कुछ को नाम और स्थानीय जगह प्रदान करती है। विलियम जेम्सने इस शक्ति की तुलना एक पवित्र प्रेतसे की है, जो कि अराजकता पर चिन्तन करता और उसमे कोई-न-कोई व्यवस्था लाकर एक सुन्दर रूप प्रदान करता है। कल्पना सदैव नवीन सृष्टिकी खोजमें रहती है।

कॉलरिजने कल्पना पर विचार करते हुए कहा है कि मनकी कल्पना शक्ति द्वारा हमे जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्षीकरण (Sense-Perception) द्वारा कभी उपलब्ध नही हो सकता। वस्तुत. कल्पना अज्ञात, अप्रकट अस्पष्ट लोक मे प्रविष्ट होकर भी कविके लिये पर्याप्त उपकरण चुन लाती है। कवि कल्पना शक्तिके ही सहारे सौरलोकका दर्शन करता, समुद्रके भीतर डुबकी लगाकर तरह-तरहके दृश्य देखता, अग्निसे उठने धूम्रका सौदर्य निरखता, उसके रगविरंगे बनते हुए चित्रोका अवलोकन करता, वन-पर्वतकी हरीतिमाको धडकन सुनता, पर्वतोके शिखरो पर जमी हुई बर्फमे अपने मनका अभिलषित तत्त्व खोजता है। वह अनागत भविष्यकी बातोके बारेमे विश्वस्त हृदयसे लिखता और दुर्गम अप्रवेश्य, अदृश्य स्थानोमे प्रवेश कर उनकी छानबीन करता है। इसीलिए वर्डस्वर्थने यह बतलाया है कि कल्पनासे वह काम सम्भव हो सकता है, जो काम तर्क और भावनासे सम्भव नही है। कल्पना वस्तुत तर्क (Reasoning) और भावना (Feeling) दोनोसे बढी हुई मानसिक शक्तिका बोधक है। इसी शक्तिके सहारे कवि भावोकी अनुभूति करता और शान्त स्थितिमे उन्हे पुनरावृत्त कर कला का रूप देता है।

वेगको बतलाते है । पद्माकरने अपने आश्रयदाताओके विनोद और मानसिक तृप्तिके लिये ऐसा किया । किन्तु यह जन-साधारणके विनोद और मानसिक तृप्तिका साधन बन गया । इससे स्पष्ट है, पद्माकरकी दृष्टि सौंदर्यके साधारणी-करणपर भी रही । इन्होने सौंदर्यको सर्वसुलभ, सर्वसहज और सर्वग्राह्य रूपमे अभिव्यक्त किया । कालिदासकी सौदर्य चेतनाने भी इसी प्रकार सौदर्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी । कालिदासके चित्र अर्थ-बोधके अभाव मे भी मानसिक तृप्ति प्रदान करते है । यह कालिदासके व्यक्तित्वकी विशेषता है। पद्माकरके व्यक्तित्वमे भी ऐसी विशेषता देखनेमें आती है। पद्माकरकी अभिव्यक्ति-शैली, प्रकाशनका ढग ऐसा आकर्षक है कि सौंदर्यका सृजन बिल्कुल स्वाभाविक रूपमे हो जाता है। यह सौदर्य सर्वसाधारणके लिए आस्वाद्य भी है।

'श्रृगार रस के प्रसग में इनके अनुभावो, हावो, और अगज अलकारो की योचना निस्सन्देह बहुत उत्तम कोटि की हुई है । पद्माकर का आधार-फलक काफी विस्तृत है । सरस चित्रो की योजना में ब्रजभाषा के कम कवि इनकी समानता कर सकते है ।'

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

ही पथ-प्रदर्शनमे उठते है। कल्पना राग और द्वेषकी जननी है। यही सुखात्मक पदार्थोके प्रति रागकी और दुखात्मक पदार्थो के प्रति द्वेषकी और हमारा मन मोडती है। इस दृष्टिसे कल्पना सर्वशक्तिमान है। वस्तुत कल्पनाका यह प्रशस्ति मूलक रूप हो गया। पुनरपि इसमे बहुत कुछ सत्यता है। यह शक्ति व्यापक रूपसे सबको प्राप्त होती है, लेकिन सबके लिए समान गुणकारी नही होती। महाकवि अथवा श्रेष्ठ कवि इसके द्वारा अधिक उपकृत होता है, कवि अथवा निकृष्ट कवि इससे कम लाभ उठाता है। यही कारण है, कल्पना अथवा प्रतिभा काव्य-जगतमे ईश्वरीय देनके रूपमे मानी जाती है।

कल्पना देश और कालसे बधी हुई नही रहती। यह मुक्त रूपमे सर्व-युगीन और सर्वव्यापक है। इससे श्रेष्ट कवि अथवा महाकवि सर्वयुगीन और शाश्वत चीजे काव्य-जगत्‌मे दे जाता है। वह देश और कालके पिजरेमे बंध कर नही रहता। इसका एक-मात्र कारण यह है कि उसे कल्पनाका, प्रतिभाका वरदान मिला रहता है। वह कल्पनाकी, प्रतिभाकी आखसे वह सब देख लेता है, जो साधारण आखसे देखना असभव है। इसीसे कवि जो रचता है, वह सत्य होता है सुन्दर होता है और प्राय शिव भी। कल्पना कविके अन्त र्जगत्‌की आविष्कार-वृत्ति है। माइकेल मधुसूदनदत्तने कल्पनाको 'मधुकरी' की सज्ञा देकर और कविके चित्त-वनके फूलसे मधु-सचय करने को कहकर उसकी जिस कार्य-पद्धतिकी और सकेत किया है, वह आविष्कार-वृत्ति है।

'तुमिओ आइस, देवी, तुमि मधुकरी
कल्पने ! कविर चित्त-फुलवन-मधु
लये रच मधुचक्र गौड़ जन चाहे
आनन्दे करिबे पान सुधा निरवधि।'

कल्पना स्वप्न, निरा मनगढन्त नही है। कल्पनाकी दृष्टि वह दिव्य दृष्टि है, जो अप्रत्यक्ष यथार्थको प्रत्यक्ष करती है। कल्पना जिस सौदर्यको पकडती है। वह सत्य ही है, चाहे यह पहलेसे हो या नही, ऐसा कीट्सका अभिमत है।

पद्माकरने भी कल्पनाका वरदान पाया था। उसके सामने अनेक सम-स्याएँ थी। अत उनकी कल्पना उन्मुक्त रूपसे अपना कार्य नही कर सकी। वह युग-धर्मके अनुकूल सीमित और परपरीण कठघरेमें आवद्ध हो गयी। इसीसे उनकी कल्पनाने युगके अनुकूल सामग्रियाँ जुटायी और युगके वातावरणमें ही विहार करती रही। पद्माकरके सामने दरबारका वातावरण था। इनके सामने रीति ग्रन्थोके लिखनेकी परम्परा थी। इनके सामने अर्थ प्राप्तिका सवाल था।

काव्यमें कल्पनाका चमत्कार रहता है। जिस काव्य मे कल्पना का चमत्कार नही, वह काव्य नीरस और फीका होता है। काव्यका सौष्ठव, काव्यकी सरसता कल्पनाके कारण है। कल्पना नीरस पदार्थों मे भी सरसता ढूंढती और सरस पदार्थों को सरसतर बनाकर रखती है। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। हम इसे उस विशाल वटवृक्षके रूपमे मान सकते है, जिस की जड भूतलके नीचे हो, किन्तु चोटी आकाशकी अनन्त ऊँचाई तक फैली हो, उसमे भूगर्भसे रस मिले और सूर्य एव वायुसे प्राण। इसमे जीवन हो चेतना हो। यह बादलोसे बातचीत कर सकता हो, आँधीसे बोल सकता हो सूर्यसे निवेदन कर सकता हो, पशु पक्षियोकी करुण पुकार सुन सकता हो। इसमें अपूर्व आकर्षण शक्ति हो, अज्ञात लोककी चीजोको यह अपनी ओर खीच सकता हो। तभी कल्पनाकी अनन्त शक्तिका अनुमान लगा सकते है। वस्तुत कवि प्रतिभा अथवा कल्पना ही नवीन लोकोका द्वार कविके सामने खोलती है और कवि रंग-विरगी चीजोको सँजोता तथा उसे सुन्दर रूपमे, काव्य बनाकर अमर तत्त्व प्रदान करता है।

कल्पना असगतिमे सगतिके सूत्र पिरोती है। जो पदार्थ बिखरे हैं, छिन्न भिन्न है, उनमे एक-सूत्रता स्थापित करती और उन्हे सुन्दर रूपमे सजाकर रखती है। यह विभिन्न स्थानोके फूलोमे सामञ्जस्य बिठाती और विभिन्न स्थानोकी नदियो, पहाडोमे ऐक्य भाव महसूस करनेको बाध्य करती है। यह एक प्रकारका अदृश्य तार बनकर सबको अपनेमे गूथे रहती है और अपनेको सबसे सम्बद्ध रखती है। रविबाबूका मत है कि जिस प्रकार भौतिक वातावरणकी विसगतियो का अनुशासन प्रकाशके द्वारा होता है, उसी प्रकार मनुष्यके मानसिक परिवेशके बिखरावका अनुशासन कल्पना के हाथो होता है। कल्पना हमारे भीतर सोये हुए समष्टि मानव को जाग्रत करती और जीवनके बिखरे तथ्योको एक दर्शनके सूत्रमे पिरोकर सघटित करनेमे हमारी सहायता करती है। रविबाबूकी कल्पनाका यह रूप क्रोचेके अनुसार 'प्रतिभाज्ञान या अन्त प्रज्ञा तथा ब्लेकके अनुसार 'विशुद्ध अन्तर्दृष्टि ही है। यह वस्तुत कल्पनाका अतीन्द्रिय रूप हुआ। और इसी रूपमे वह काव्य जगत्मे विख्यात भी है। वस्तुत कल्पनाका ऐन्द्रिय रूप देखना भी मुश्किल है। ससारके विविध पदार्थोंमे यह कल्पना रूपायित होती है। तभी इसका रूप-दर्शन हम करते है।

कल्पना भाव-जगत्की पथ-प्रदर्शिका है। मनुष्यके अन्तर्जगतमे जितनी भी वृत्तिया उठती है–हर्ष-विषाद, आशा-निराशा सुख दुखके जितने भी भाव उठते है आनन्द-क्लेष, सतोष-असतोष भोग-अभोग, सबके सब भाव कल्पनाके

पद्माकरने नायिकाकी कटिका वर्णन विलक्षण रूपमे किया है। नायिका मुग्धा है। उसमे नई तरुणाई है, यौवनावस्था की ओर नया पदार्पण है। उसने कामेच्छाका अनुभव पहले पहल किया है। उसके अग-अग विकसित हो रहे हैं। विहारीलालने इसी समय यौवन-नृपति द्वारा स्तन, मन, नयन, नितम्बके बढनेकी बात कही है। पद्माकरने भी कुचो और नितम्बोको चढाचढीकी बात कही है। इसी समय नायिकाकी कटि यौवन-नृपति आकर लूट लेता है। पद्माकरने आश्चर्य और सकेत द्वारा इसकी सूचना दी है।

> थे अलि या बलिके अधरानमें, आनि चढी कछु माधुरई-सी ।।
> ज्यो 'पद्माकर' माधुरी त्यो कुच दोउनकी चढ़ती उनई-सी ।।
>
> ज्यों कुच त्योई नितब चडे कछु ज्योई नितब त्यो चातुरई सी ।।
> जानी न ऐसी चढ़ा चढी में, किहिधौं कटि बीच हीं लूटि लई-सी ।।

पद्माकरने कटिकी सूक्ष्मताकी ओर ध्यान आकर्षित किया है। कटिकी सूक्ष्मता अनेक कवियो द्वारा वर्णित हुई है। किसीने सिह कटिवत्, किसीने मुदरी तुल्य, किसीने सिवार-समान, किसीने मृणालके तार-सा, किसीने बालस भी बारीक कहकर यही बात कहा है। विहारीने ब्रह्मकी कटि तो ऐसी सूक्ष्म बना दी, जिसको देखा हो नही जा सकता। वस्तुत उन्होंने सूक्ष्मताका हद कर दिया। तुलनाके लिये कुछ वर्णन यहाँ दिये जाते हैं –

> लगी अनलगी-सी जु विधि करी खरी कटि छीन।
>
> –विहारी

> पासके गए तें एक बूंद हू न हाथलगे
> दूर सो दिखात मृग-तृष्णिकामें पानी है
>
> 'शंकर' प्रमाण- सिद्ध रंगको न संग पर,
> जान पडे अम्बरमें नीलिमा समानी है।
>
> भावसे अभाव है अभावमे धौ भाव भरयो ,
> कौन कहे ठीक बात काहू ने न जानी है ,
>
> जैसे इन दोउन में दुविधा न दूर होत
> जैसे तेरे कमरकी अकथ कहानी है
>
> –शकर

× × × ×

इसीसे पद्माकरने अपने आश्रयदाताओकि सुख–स्वाद मनोविनोद एव सतोषके लिए, कल्पना-शक्तिसे उन्हीके मनोवाछित चित्र प्रस्तुत किये। नायक-नायिका निरूपण, भाव, अनुभाव, सचारी भाव, षड्ऋतु वर्णन, दूती-वर्णन, रस–वर्णन आदि उनके समयके प्रचलित और वँधे बधाये विपय थे। द्रव्य प्राप्ति के लोलुप कवियोको इन्ही पर लिखना युग–धर्म था। अन्यथा उन्हे द्रव्य प्राप्तिको कौन कहे, यश और प्रतिष्ठा भी हाथ नही लगता था। पद्माकरने इसी कारण, इन्ही बँधे -बधाये विषयो मे अपनी कल्पना-शक्ति ,अपनी प्रतिभा-शक्तिके उपयोगकी सार्थकता समझी। इसके अलावे उन्होने ज्ञान–भक्ति वैराग्य एव वीर आदि काव्योमें भी अपनी कल्पनाका उपयोग किया।

कहा जा चुका है कि कल्पना अरूपको रूप, अप्रत्यक्षको एव अस्पष्टको स्पष्ट रूपमे रखनेको चेष्टा करती है। इसके लिए वह प्रकृतिके उपकरणोका सहारा लेती है। मनोभाव इसी कारण, साकार रूपमे देखनेमे आते है मनोवेगोके रूपो का दर्शन इसी कारण सम्भव है। पद्माकरने कल्पनाके सहारे प्राकृतिक उपकरणोका खूब उपयोग किया और इससे अपने भाव-चित्रो, अपने रूप-चित्रोको समृद्ध किया, उन्हे सुन्दर, मोहक और आकर्षक बनाया। अपनी नायिकाओको, सहज परम्परासे कुछ भिन्न नवीन करके दिखलानेकी चेष्टाकी। भावोकी अनुभूति को नये रूप मे ढालनेकी प्रयास किया। पद्माकर को कतिपय नायिकाएँ इसी कारण अमर हो गयी। सचमुच, कल्पना भाव-चित्रो, रूप-चित्रों को अमरता प्रदान करती और उनको चिर नवीन भी बनाये रखती है।

पद्माकरकी कल्पनाने नायिकाके साथ त्रिवेणीका जो रूपक प्रस्तुत किया है, वह अपने ढगका अकेला है। बिहारीने कृष्ण और राधा दोनोको मिलाकर त्रिवेणीका रूपक प्रस्तुत किया। वह भी सरस्वतीका संकेत मात्र कर सके, उसको शब्दो द्वारा अभिव्यक्त नही किया। पद्माकरने त्रिवेणीका दर्शन नारीके शरीरमे ही कर लिया। नारी–तीर्थकी प्रसिद्धि को उन्होने और प्रसिद्ध किया और बतलाया कि नारीके रूप दर्शनमेंही त्रिवेणीके दर्शनका पुण्य सुलभ है। नारीकी वेणीको यमुना, हीरोके हारको गंगा और तलवोकी लालिमा में सरस्वतीके होनेकी सूचना मिलती है। इसलिए वह जहाँ जहाँ तैरती है, वहाँ-वहाँ त्रिवेणीका ही दृश्य उपस्थित हो जाता है।

> जाहिरै जागत सी जमुना, जब बूडै बहै उमहै वह बेनी।
> त्यो पद्माकर हीरके हारन, गंग-तरगन की सुख-देनी॥
> पायनके रँग सो रँगि जात-सी, भाँति ही भाँति सरस्वती-सेनी।
> पैरै जहाँ-ई-जहाँ वह बाल, तहाँ-तहँ तालमें होत त्रिवेनी॥

कछु गज-गतिके आहटन, छिन-छिन छीजत शेर।
विधु विकास विकसित कमल, कछू दिनगके फेर॥

कटिको भीरु शेरके रूपमे देखना पद्माकरकी अपनी कल्पना थी।

ज्ञात-यौवना नायिकाके वर्णनमें पद्माकरने उसके कुचोका वर्णन किया है। उसके कुचकी ज्योति चकाचौंधमे डालनेवाली है। वस्तुत वह परम सुन्दरी है। अग-अगमे प्रकाश फूटा पडता है। वह जानती भी है कि यौवनका आगमन हो चुका है। इस समय उसके कुच स्वभावत आकर्षणके केंद्र होंगे। पद्माकरने उनकी कल्पना यौवन अथवा कामदेव के दो नगाड़ोके रूपमे की है। बाल्यावस्था हारकर जाती है, तो यौवन अथवा कामदेवके विजय-नगाड़ोको उलटकर, औंधकर!

चौक में चौकी जराव जरी।
तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।
छोरि धरी हरी कुंचकी न्हान को,
अंगन ते जगे ज्योति के कौंधे॥
छाई उरोजन की छवि यों,
'पद्माकर' देखत ही चकचौंधे।
भाजि गई लरिकाई मनो लरिकै
करिके दुहूँ दुंदुभि औंधे॥

विद्यापतिने भी शैशव और यौवनके मिलन-कालमें कुचा के सौदर्यकी कल्पना की है। कुच उदयाचलकी लालिमाके समान सुन्दर है —

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल,
स्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।
अति थिर नयन अथिर किछु भेल,
उरज उदय थल लालिम देल।

कविवर टी० लॉजका कुचका वर्णन भी दर्शनीय है —

Her paps are centres of delight
Her breasts are orps of Heavenly Fame
Where Nature moulds the dew of light
It feels perfection with the same

बने हुए आनन्द केन्द्र हैं उठे हुए इसके कुचकोर।
दिव्य ज्योति [illegible] स्वर्ग की [illegible] पर [illegible]-विभोर॥
यहाँ-प्रकृति [illegible], ओस-[illegible] अभिराम।
स्वर्गिक [illegible]॥

अनल्पैर्वादीन्द्रैरगणितमहायुक्तिनिवहै–
निरस्ता विस्तार क्वचित् कलयंती तनुमपि
असत् ख्याति व्याख्याधिक चतुरिमख्यातमहिमा-
ऽवलग्ने लग्नेय सुगमतर सिद्धान्त सरणि ।*

– एक संस्कृत कवि

बिहारीने नायिकाकी कटिको सूक्ष्म बतलाया कि लगी हुई भी न लगी हुई सी जान पडती है, शंकरने उसको अकथ्य कहानी कहा, उर्दू कविको कमरका दर्शन ही नही हो सका–कहाँ, किस तरफ, किधरको खोजते रह गये? संस्कृत कविने उसे असत् कह दिया। पद्माकरने 'कहि धौं कटि बीचमें लूट लई सी' कहकर अपनी अद्भूत कल्पना-शक्तिका परिचय दिया है। पद्माकरने कमरको असत् नही कहा, न उसकी दार्शनिक व्याख्या ही की, न उस ब्रह्मको कमरके समान सूक्ष्म और अलख बतलाया, बल्कि 'लूटि लई-सी' कहकर यह संकेत किया, उसे किसीने वस्तुत लूटा नही है, लूटकर उसको बिलकुल गायब नही कर दिया है, बल्कि गायब होनेकी स्थितिमे है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे किसीने लूट लिया हो। इसलिए पद्माकरने 'सी' का प्रयोग किया है। यह उनकी कल्पनाकी सूझ है।

शून्यमें शून्य मिल गया, असत् में असत् समा गया। माध्यमिकोकी असत् ख्याति (शून्यवाद) और लक्ष्मीजीकी कमर दोनो ही असत् है।

–पद्मसिंह शर्मा

पद्माकरने कटिको भीरु शेरके रूपमें भी देखा है। शेर हाथियोके आनेसे डरता नही। पद्माकरने उसे डरता हुआ-सा बतलाया है। वस्तुत उन्होने आश्चर्य उत्पन्न करने और जवानीके दिनोमे क्षण-क्षण कटिके पतला होनेकी ओर संकेत किया है। बात यह है कि युवावस्थामें नायिकाकी जंघेमें गतिशीलता आती जाती है–कटिमें पतलापन आने लगता है। इसीको पद्माकरने यो कहा है:

---

* माध्यमिकोके 'शून्यवाद' को बडे-बडे दार्शनिक शंकराचार्य, वाचस्पति मिश्र, श्रीहर्ष और उदयनाचार्य-जैसे अनेक विकट विद्वानोके मारे संसारमें जब कही जरा भी ठहरनेको ठौर न मिली, तो वह (शून्यवाद) सब औरसे सिमटकर तुम्हारी कमरमें आकर छिप गया। असत् ख्याति अपनी जान बचानेको लक्ष्मीजीको कमरमें आ छिपी, अब उसे कोई पा नही सकता, जब 'आश्रय' ही का कही पता नही, नजरसे गायब है, तो 'आश्रित' की खोज कैसे मिले –'आधार' ही शशश्रृंग है तो उसके आधेयका पता कैसे चले।

रूप रस चाखै मुख रसना न राखै फिर,
भाषै अभिलाषैं तेज उर से मझारती,
कहै 'पद्माकर, त्यों कानन बिना हू सुने,
आनन के बैन यो अनोखे रंग धारती।
बिना पाँव दौरे बिना हाथ हथियार करैं,
कोर के कटाच्छन पटा से झूम झारती,
पाँखन बिना ही करैं लाखन ही वार आँखैं
पावतीं जो पाँखें तो कहा धौं कर डारती ?

नेत्रोके माधुर्य तथा कटाक्षकी तीक्ष्णताके लिए कवियोने उत्तमसे उत्तम उपमाएँ जुटायी है। किसीने उनमें घोडेका रूपक रखा है, किसीने नवाबका रूपक बाँधा है, किसीने उनमे चौदह रत्नोको उपलब्ध किया है और किसीने दशावतारका दर्शन किया है, किसीने सिंदूर-मंडित कमलकी पखुडियोसे उनकी तुलना कर उनमें विलक्षण सौंदर्य भरना चाहा है पद्माकरने आँखोकी तुलना किसीसे नही की है, पुनरपि व्यजनाके सहारे उनमें अनोखी गतिशीलता, शक्ति एव सौदर्य भर दिया है।

पद्माकरने कटाक्षका वर्णन इस प्रकार किया है। सखी नायकसे कहती है-

कहा करौं जो आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाय,
अनियारे चख लखि सखी, कजरा देत डराय।

अर्थात् मेरी सखी नायिकाकी चचल आँखोमें काजल देते इसलिये डरती है कि कही उसकी उँगलियोमें आँखोकी तेज अनी न चुभ जाय। इससे अधिक कटाक्षो की तीव्रता क्या हो सकती है ?

एक कविने नायिकाके तीक्ष्ण कटाक्षके बारेमे लिखा है, वह कवियोकी उक्तियो को ठहरने ही नही देती, अर्थात् वह अनुपम रहना चाहती है-

हरिन निहारि जकि रहे हिय हार मानि,
वारिचर वारिजकी वानिक बिकाती है,
हानि होत तिय पछताती फर छाती दै दै,
धीर मनरजनके खजन जँभाती है।
दीबेको समान उपमान इन नैननकी,
कविनके मनमें उकति अधिकाती है,

लाँजके कुचोका वर्णन मर्यादित और सुष्ठु है। यहाँ लाँजकी कल्पनाने पद्माकरकी कल्पना की भाँति व्यायाम नहीं किया है। यही कारण है कि पद्माकरकी अपेक्षा यह वर्णन अधिक रमणीय नहीं लगता।

पद्माकरकी कल्पनाने एक स्थान पर कुचोको कचन-कलशके रूपमे देखा है। उन पर दूजके दो चन्द्रमाके चित्र भी बने हुए हैं।

कनक-थली ऊपर लसै कचन-कलस विसाल।
तहँ देखे द्वै द्वैज के चन्द विराजत लाल।।

(पद्माभरण)

व्रजभाषाके कवियोने नायिकाओके कुचोके लिए बहुतसे उपमान जुटाये है जिनमे प्रधान है चक्रवाक, कमल, शिव,गिरि, घट, गुम्बज, फूल, फल, करि, कुम्भ, सूर्य, इत्यादि। यहाँ पर स्वर्ण-कलश से कुचोकी तुलना कर और उस पर लाल-लाल दो नख-क्षतोका दर्शन कराकर अपनी विदग्धताका परिचय दिया है।

केशवदासने मन्दोदरीके कुचकी-रहित कुचोका वर्णन इस प्रकार किया है –

बिना कचुकी स्वच्छ वक्षोज राजे।
किधौं साँचहू श्री फलै सोभ साजे।।
किधौ स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे।
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।।

(रामचन्द्रिका)

यहाँ कुचोकी स्वर्णके कुम्भसे तुलना जहाँ एक ओर गुण है, वहाँ दूसरी ओर दोष भी है। क्योकि मन्दोदरीका शरीर श्यामवर्णका है। वह काली-कलूटी है। उसके कुचो को स्वर्ण-कलश कहकर पुकारना कुष्ट रोगकी सूचना देना है। पद्माकरके वर्णनमे यह दोष नही आया है। उनकी कल्पना ने सामान्य रूपसे गुणोपर ध्यान रखा है।

पद्माकरने नायिकाकी आँखोका वर्णन करते हुये अपनी अनोखी कल्पनाका परिचय दिया। नायिकाकी आँखें ऐसी है कि बिना मुख तथा जिह्वाके ही सब रूप-रसका स्वाद चखती है एव हृदयकी तीव्र अभिलाषा-ओको प्रकट करती ह, बिना कानोके सुनती है तथा औरोके वचनोको ग्रहण करती है, बिना पैरके दौडती है बिना हाथ ही हथियार धरती है तथा तीखे कटाक्ष रूपी तलवार चलाती है। उन्हे पख नही है, तब भी लाखो पर वार करती है। पख रहने पर तो न जाने ये क्या करती?

तिल है अथवा रूप-राशिमें शृंगार-रसका अंकुर है अथवा बिजली रूपी बादलोंमें अंधकारका सिमटा हुवा रूप है ? तिल है अथवा कामदेव रूपी कारीगरका सोनेके कागज पर दिया हुआ नुकता है अथवा कमलमें सोया हुआ भ्रमर है ? तिल है अथवा चंद्रमामें पड़ी हुई यमुनाकी बूंद है ? पद्माकरकी कल्पना तिलका उपमान जुटानेमें व्यग्र है।

द्विज कविने भी तिलके वर्णनमें कुछ ऐसी ही कल्पना कीहै –

रूपकी राशिकमें कै रसराजको अंकुर आनि कढयो सुभ होना,
कैं ससिने तम गास कियो तेहिको रह्यो शेष दिखात-सो कोना।
प्यारीके गोरे कपोलन पैं 'द्विज' राजि रह्यो तिल स्याम सलोना,
कै मधुपान पर्यो अलमस्त किधौं अरविंद मलिंदको छौना।

रंगपाल कविकी कल्पना भी दर्शनीय है –

कैधो पोखराज प परो है रसराज छोर,
कैधो मैन आरसीमें नीलम नगीनो है,
तारापति गोदमें तरनिको तनय कैधों
सुमन गुलाबमें मलिन्द वास कीनो है।
'रंगपाल' गाल पैं रसाल तिल सोहैं किधौं,
लपटो रसिक राय मन रस भीनों है,
कैधों रूप रतन खजानेके महल पर,
मदन महीपति मुहर करि दीनो है।

हिन्दीके प्राय सभी शृंगार-काव्यकारोंने तिलकी उपमा का वर्णन किया है। एक मुसलमान कविने तो 'तिल-शतक' नामक एक ग्रंथ ही लिख डाला है। द्विजदेव और रंगपाल के तिल वर्णन प्रतिनिधि-रूपमें यहा दिये गये है। सदेहालकारके सहारे तिलकी सुषमा पर इन्होंने जितना प्रकाश डाला है, वह प्रशसनीय है, पर पद्माकरकी कल्पनाने भी तिलका सौंदर्य कम नही आका है।

नायिकाके श्रम-सीकरोंके बारेमें पद्माकरने अद्भुत कल्पना की है। यह पद्माकरकी अपनी सूझ है। मुखसे कुचों पर श्रम सीकरोंका गिरना ऐसा प्रतीत होता है, मानो चद्रमा मुक्ता–रूपी अक्षतोंसे, महेशकी पूजा कर रहे हो –

यों स्रम-सीकर सुमुख ते करत कुचन पर वेस।
उदित चंद्र मुक्ता-छतनि, पूजन मनहु महेस॥

कदाचित् इसकी प्रेरणा उन्हें मतिरामके वर्णनसे मिली।

चाहत फल तोरो मिलन, निसि वासर बहु बाल,
कुच-सिव पूजति नैन जल, बूंद मुकुतामय माल।

प्यारीके अनोखे अनियारे ईछनन छ्वै-छ्वै,
तीछण कटाच्छन ते कटि-कटि जाती हैं।

पद्माकरकी उक्ति अपेक्षाकृत स्वाभाविक है। यों अतिशयोक्तिसे दोनों कवियोंने काम लिया है, पर जितना चमत्कार पद्माकरमें है, उतना इस कविके वर्णनमें नहीं। पद्माकरने काजल डालनेका प्रसग लेकर अपनी विदग्धताका परिचय दिया है।

पद्माकरने नायिकाकी भौंहोंको बिना रोदाकी दो कमानों से तुलना कर अपनी अपूर्व कल्पना शक्तिका परिचय दिया है। कमल और चन्द्रमामें एक प्रकारसे बैर है। क्योंकि चन्द्रमाके उदय होने पर कमल मुरझा जाता है। कविने नायिकाके मुख-कमल पर अर्ध चन्द्रमा (भौंहो) के दर्शन करा अपनी कुशलताको सूचित किया है। नायिका नायक के लाल नेत्रोंको देखकर क्रुद्ध हो गयी। उसकी भौंहे मान के कारण चढ गयी। इसी पर पद्माकरका कहना है–

छवि छलकन भरी पीक पलकन त्योंही,
श्रम जलकन अलकन अधिकाने च्वै।
कहै 'पद्माकर' सुजान रूपखानि तिया,
ताकि ताकि रही ताहि आपुहि अजाने ह्वै॥
परसत गात मनभावन के भावती की,
चढि गई भौंहे रही ऐसी उपमाने छ्वै।
मानो अरविंदन पै चन्दको चढ़ाय दीनो,
मान कमनैत बिनु रोदा के कमानें द्वै।

एक गोरानी बालाके शरीरके श्याम तिलका वर्णन एक छन्दमें पद्माकरने इस प्रकार किया है–

कैधो रूप रासिमें सिंगार रस अंकुरित,
संकुरित कैधो तम तडित जुन्हाई मे,
कहै 'पद्माकर' किधो यो काम कारीगर,
नुकता दियो है हेम फरद सुहाई में।
कैधों अरविंदमें मलिन्द-सुत सोयो आनि,
कैधो तिल सोहत कपोलकी लुनाईमें;
कैधो प-यो इन्दुमें कलिन्दी जलबिंदु कैधो
गरक गोविन्द गयो गोरीकी गोराईमें॥

सुन्दर रस-मन्दिरमें बैठी हुई कोमलांगी बाला क्रिया कुशला और विदग्धा है। चबाइनो, चुगलखोरिनोका दिल उसके पासमें बैठा है। इसी समय नायक कृष्ण वहाँ पर आ जाते हैं। कोमलांगी बाला नायक कृष्णसे उदासीन है। दूसरे वह उनसे आन्तरिक प्रेम भी करती है। इसका पता नही चल जाय, इससे वह नायकके आते ही उनकी ओर पीठ कर लेती है। ऐसा करके वह अपनी उदासीनताको प्रकट करती है, साथ ही चबाइनो, चुगलखोरिनोको भी सूचित करती है कि नायकसे वह प्रेम नही करती, अन्यथा वह उनके आते ही गलेसे लिपट जाती। अनूतरी फिरगके समान बालाको बतलाकर पद्माकरने अपनी अद्भुत सूझका परिचय दिया है। वस्तुत फिरग पद्माकरके समयमे अनूतरी थी। फिरगका अर्थ अग्रेजीसे है। इसीसे अगरेजोको फिरगी कह कर पुकारते थे। पद्माकरके कालमें फिरगियोका अधिक बोलबाला नही था। अगरेजी का सामान्य प्रचार होना शुरु जरूर हो गया था, लेकिन उनके सहारे अभी अगरेज अपने मनोभाव भारतीयोसे बतलानेमें असमर्थ थे। अत अगरेजी भाषाको पद्माकर फिरग कह कर पुकारे तो कोई अस्वाभाविक नही है। पुन इसीका नायिका पर आरोप करना उनकी कल्पनाकी कुशलताको ही सूचित करता है।

उग्रता सचारीके उदाहरणमें पद्माकरने, विरहिणी नायिका पर सवेदना प्रकट करनेके क्रममे चन्द्रमाको जिन जिन विशेषणोसे सम्बन्धित किया है, वे विचारणीय है। चन्द्र उच्चवशीय है। वह सिंधुके सुपुत्र हैं सिंधुसे इनकी उत्पत्ति हुई है। यह सिंधुतनया लक्ष्मीके बन्धु है। यह अमृतकी खान है। शिवके शीशपर सुशोभित रहते है, तारो के ईश है। चन्द्रवशीय कृष्ण चन्द्रके आदि पुरुष है। तात्पर्य यह कि इनमें श्रेष्ठ रूप और गुण दोनो है। इसलिए विरहिणीको सताना इनके लिए उचित नही कहा जा सकता। पद्माकरने इसीसे इनके प्रति व्यग करते हुए कहा है -

सिंधुके सपूत सिंधुतनयाके बधु,
मंदिर अनद सुभ सुन्दर सुधाई के।
कहै 'पद्माकर' गिरीशके बसे ही सीस,
तारनके ईस कुल कारन कन्हाई के।
हाल ही के विरह बिचारी ब्रजबाल ही पै,
ज्वालसे जगावत जुआल सी लुगाई के।
अरे मतिमद चंद आवत न तोहि लाज,
है के द्विजराज काज करत कसाई के॥

पद्माकर और मतिराम दोनोके व्यक्ति-वके कारण दोनो की कल्पनामे अन्तर है ? मतिरामने जहाँ श्रम-सीकरोको मोतीकी मालाके रूपमे देखा है वहाँ पद्माकरने स्वेद मोतियो को अक्षतके रूपमे। सचमुच पद्माकरकी कल्पना विलक्षण है।

विपरीत रतिके सिलसिलेमे नायिकाके ललाटके सुर्वेदा का वर्णन पद्माकरकी अद्भुत कल्पनाका परिचायक है। यह सुर्वेदा नीलमणि-जटित और ललाटके मध्य भागमे सुशोभित रहता है। विपरीत रतिके कारण नायिकाके ललाटका यह आभषण टूटकर गिर पडता है। पद्माकरने इसीको उत्प्रेक्षा कलानिधिके कलकसे दी है।

रति विपरीत रची दम्पति गुपुत अति,
मेरे जान मान भय मनमथ नेजे तें।
कहै 'पद्माकर' पगी यो रस-रंग जामें,
खुलिगे सुअंग सब रगन अमेजे तें॥
नीलमणि-जटित सुर्वेदा उच्च कुचन पै,
पर्यौ है टूटि ललित ललाटके मजेजे तें।
मानो गिर्यौ हेमगिरि पै सुकेलि कटि,
कढ़िके कलक कलानिधिके करेजे तें॥

सुर्वेदाको कलानिधिका कलक कहना पद्माकरकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्तिका परिचायक है। सचमुच, ललाटका आभूपण विपरीत रतिके समय बाधक प्रतीत होता है। इससे पद्माकरका कलक कहना वहुत युक्ति संगत है। इसी सिलसिलेमे कुचोके लिए हेमगिरि-शृग अर्थात् स्वर्णगिरि—सुमेरुकी चोटी कहना कम विदग्धताका परिचायक नही है।

क्रिया-विदग्धा नायिकाके उदाहरणमें पद्माकरकी कल्पना ध्यातव्य है।

वजुल निकुजनमे मजुल महल मध्य,
मोतिनकी झालरि किनारिनके कुरबिन्द।
आइगे तहाँई 'पद्माकर' पियारे कान्ह,
आनि जुरि गये त्यो चबाइन के नीके वृन्द॥
बैठी फिरि पूतरि अतूतरि फिरग कैसी,
पीठि दै प्रवीनी दृग दृगन मिलै अनद।
आछेय अवलोकि रही आये रस मदिरमें,
इन्दीवर सुन्दर गविन्दको मखारविन्द॥

तलवार चक्रवाली विष्णुसे चालाक है और कालीसे करोड गुनी भयकर है, अतिशयोक्तिपूर्ण यह वर्णन ध्यातव्य है ।

पद्माकरको कल्पना शक्तिका परिचय हिम्मतबहादुरविरुदावली मे भी विभिन्न स्थानो पर मिलता है । तोपोके प्रसंगमे तुपक्के, ऊँटनाले, गनाले, मुगरी नामक अनेक तोपो का नाम लिया है । तलवारोकी चर्चा करते मगरबी, जुनब्बै, बन्दरकी, बन्दरी, सूरती, लीलम, लहरदारै, लालूवारै, खुरीमानो, दलनि-धिखानी, नादौटे, मानासाही, जिहाजी, दरियाई, सुलेमानी, जुनेवहुखानी मिसरी, गुरती, हलब्बी, बरदभानि, पिहानी, बरदानी, दुनाबी, ऊनामी, तमाचै, रुपी, अगरेजै, फरुकसाही, तकब्बरी, अकबरी नामक विभिन्न तलवारोके नाम गिनाये है । इनके वर्णनमे वर्णनात्मकताका दोष भले लगाया जाय, किंतु इन नामोके द्वारा पद्माकरकी कल्पना-शक्तिका दर्शन होता है ।

'राजा – मित्र ! इन के मुँह मत लगो, यह
कविताई मे बडी पक्की है ।
विदूषक – तो साफ साफ क्यो नही कहते कि
हरिश्चन्द्र और पद्माकर इसके आगे कुछ नही है ।

– भारतेदु हरिश्चन्द्र (कर्पूरमजरी)

'मेरा ख्याल है कि साहित्यिक चर्चाओ मे 'पद्माकर' को हम कुछ भुलाते जारहे है । जो लोग कविता के चित्र-पक्ष को ऊपर उठाना चाहते है, उन्हे पद्माकर के काव्य मे अपने पक्ष की काफी सामग्री मिलेगी ।'

–प्रो रामधारीसिंह 'दिनकर'

विरहिणी के लिए चन्द्रमाकी किरणोका दाहक प्रतीत होना नयी कल्पना नही है। किन्तु उनके कामको कसाईका काम कहना विलक्षण प्रयोग है। यह पद्माकरकी अपनी विशेषता है।

गगाकी उज्ज्वल लहरोमे असीम सौंदर्य दिखलानेके लिए पद्माकरने जिन-जिन उपमानोका प्रयोग किया है, उनसे उनकी कल्पना-शक्तिका परिचय मिलता है। गगा गुणसे महान है, विधाताके कमडलकी सिद्धि है, भगवान विष्णुके चरण-कमलके प्रतापकी लहर है, और जन्म-जन्मके पापोको हटानेकी इनमे अद्भुत शक्ति है। गगा के रूपकी महत्ता इन्हीके अनुरूप है।

कलित कपूर में न कीरति कुमोदिनी मे
कुंदमें न कासमें कपासमें न कद में,
कहै 'पद्माकर' न हसनें न हास हू में,
हियमें न हेरि-हारि हरिमके वृन्द में।
जेती छवि गंगा की रंगनमें ताकियत,
तेती छवि छोरमें न छिरधिके छन्द में;
चैतमें न चैत-चाँदनी हू में चमेलिन में,
चंदनमें है न चदचूडमे चद मे॥

हस क्षीर-समुद्रके छदके छोर, चन्दन एव चन्दचूडके रूप एव गुण पर ध्यान देनेस और पुन गगाकी लहरोकी तुलना करने पर पद्माकरकी विदग्धताका पता चलता है।

रघुनाथरावको तलवारके प्रशस्ति-मूलक वर्णनमे पद्माकरकी कल्पना दर्शनीय है। रघुनाथरावकी तलवार जितनी गुणवती नही, उससे अधिक गुणवती पद्माकरकी कल्पना उसे बना देती है।

दाहन ते दूनी तेज तिगुनी त्रिसूलन ते,
चिल्लन ते, चौगुनी चलाक चक्रचाली तें।
कहै 'पद्माकर' महीप रघुनाथराव
ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तें।
पचगुनी पव्वतै पचीस गुनी पावक तें,
प्रगट पचास गुनी प्रलय प्रनाली तें।
साठ गुनो शेष ते, सहस्र गुनी साँपनुतें,
लाख गुनी लूक तें, करोर गुनी काली तें॥

उस समय की अवस्था का वर्णन कर दिया है, जब न शैशव ही होता है और न यौवन ही होता है। हमारे पद्माकर ने बिहारीकी उस नायिका को ध्येय मे नही रक्खा है, जब "अली कली ही ते रम्यो" की सरस लोकोक्ति चरितार्थ हो। यहाँ वृषभानु-किशोरी कली की कलित अवस्था को पार कर चुकी है। यह तो वह अवस्था है, जिसके लिए कहा गया है--
"अद्य श्वो वा कुसुमधनुषो यौवराज्याभिषेक"

अर्थात् आज या कल कुसुमधनुष का यौवराज्याभिषेक होनेवाला है। आज होगा या कल, इसका निर्णय करने की अक्षमता मे जो विदग्धता है, वह सहृदयो से छिपी नही है। बाला, शैशव और यौवन की उस संधि में विचरण कर रही है, जब आज कह देने से यौवन के आगमन की ओर तन्वंगी का झुकाव प्रतीतहोता, और कल कह देने से अभी शैशव में ही है, इस अर्थ की प्रतीति होती। कुसुम- धनुष का अभिषेक कब होगा, यह समग्र सामग्रियों के उपस्थित होने पर भी स्पष्ट रूप मे कह देना बड़ा कठिन है। इसी भाव को एक किशोर शब्द कहके महाकवि पद्माकर ने व्यक्त किया है। श्रीमती राधिका के कीरतिकुमारी से लेकर कृष्णवल्लभा तक हजारो ही नाम हैं, और उनमें से किसी एक का प्रयोग हो सकता था। फिर वृषभानुकिशोरी इनको क्यो कहा गया? वृषभानु-कुमारी कहने से या वृषभानुसुता या इसी प्रकार के अनेक पर्यायवाची शब्दो की प्रचुरता होने पर भी वृषभानुकिशोरी शब्द मे जो मधुरता है जो रमणीयता है, जो विमुग्धत्व है, जो चारु सौंदर्य है, वह दूसरे शब्द मे नही। यहाँ पर संभवत कोई पाठक शका करे कि किशोरी शब्द सार्थक होने पर वृषभानु शब्द से ऐसी कौनसी प्रयोजन-सिद्धि होती है, जो कवि इसका व्यवहार करने के लिए बाधित हुवा? इसका उत्तर यही है कि केवल किशोरी कह देने से वह कौन किशोरी है, इसका ज्ञान नही हो सकता था। और, जब तक प्रणय के आरोप का स्थान अथवा प्रेम के आलंबन का पूर्ण रूप से परिचय न हो जाय, तब तक चित्त वहाँ जमता ही नही। किसी स्थान का निर्देश कर देने पर, जब वहाँ की घटनाओ का वर्णन किया जाता है, तब उन घटनाओ की यथार्थता में बुद्धि को विश्वास होने लगता है और तभी चित्त उसको अनुराग से श्रवण के लिए उत्सुक होता है। यह सत्य है कि चमत्कार के प्राचुर्य से यदि नाम निर्दिष्ट न किया जाय, तो भी चित्त केवल चमत्कार के कारण वस्तु-विशेष के ज्ञान मे विशेष स्पृहालु होता है। परंतु व्यक्तित्व के विषय मे परिज्ञान हो जानेसे वह स्पृहा चतुर्गुणित हो जाती है, यह अनुभव-सिद्ध

पद्माकर की कविता में रस

ये वृषभानुकिशोरी भई इतै व्हाँ वह नन्दकिशोर कहावै ।
त्यो पदमाकर दोउन पै नवरंग तरंग अनग की छावै ।।

दौरे दुहूँ दुरि देखिवे को दुतिदेह दुहूँ की दुहूँन को भावै ।
ह्याँ इनके रस-भीने बडे दृग व्हाँ उनके मसि भीजत आवै ।।

रमणीजन के प्रकृत सुन्दर होने पर भी एक ऐसी साधु वय होती है, जब वह सौदर्य विशेषरूप से प्रस्फुटित हो उठता है। शैशव को पार कर यौवन मे प्रवेश करती हुई बालाओ मे जो प्रतिदिन नई शारीरिक पूर्णता और मानसिक विकास दृष्टिपथ मे अवतरित होता है, उसका प्राय सभी भाषाओ के कवियो ने अपनी-अपनी मनोरम भाषा मे गान किया है। जब शैशव की क्रीडा से मन हटने लगता है, और सखी जनो के रहस्यसलाप की ओर कर्ण अभिमुख हो जाते है, जब त्वरित गमन मे लज्जा का कुछ अनुभव होता है और किसी नई वय मे वर्तमान सुकुमार पुरुष को देखने के लिए नेत्र आग्रह करते है, जब वक्षस्थल पर से वासाँचल के स्खलित हो जाने पर कदाचित् किसी की दृष्टि का पात्र वह न हो गया हो, यह देखने के लिए चचल नेत्राञ्चल सब ओर दृष्टिपात करते है, और गमन मे एक विशेष प्रकार के आलस्य का अनुभव होने लगता है, जब छोटी वालिकाओ की कौतुकभरी वार्ताओ में नीरसता प्रतीत होती है और अधिक वय की सखियो के परिहास मे आनदानुभव की प्रतीति होती है, जब मानो मीनकेतन के पुष्प धनु की एक कोटि से शरीर का स्पर्श हो जाने पर वदनवल्लरी सद्य विशेष कारण न होने पर भी कभी स्वेद-सतति से आर्द्र हो जाती है, कभी कप और कभी रोमाच हो उठता है, जब नेत्र चारो ओर खोजने पर भी किसी को न पाने पर फिर चारो ओर खोजना प्रारभ करते है, जब स्वय हृदय ही खोया हुआसा प्रतीत होता है, उस समय के हृदय की अवस्था का वर्णन बहुत-से सहृदय कवियो ने अपनी लेखनी से अच्छा किया है। हमारे पद्माकर ने राधा-माधव की इस सुकुमार वय मे प्रणय-परिपाटी का कैसा उल्लेख किया है, इसका रसिक समुदाय आस्वादन करे।

इस तरफ वृषभानु-किशोरी है, उस तरफ वहाँ पर वह नदकिशोर कहलाते हैं। किशोरावस्था का प्रारभ मे ही निदेश करने से कवि ने

और कृष्ण की प्रेम लीला देखेंगे, उसके पीछे वृंदावन का चित्रपट है। उस चित्रपट को कवि वृंदावन, व्रजभूमि आदि किसी नाम से उल्लेख नही करता। यदि ऐसा करता, तो वाच्यार्थ हो जाने मे उसका वैसा प्रभाव नही पडता, जैसा केवल उसकी व्यजना से पडता है। कोई-कोई कवि पहले एक-दो पक्ति मे चमत्कारपूर्ण पदो मे वृंदावन का सौदर्य-गान कर फिर अतिम दो पक्तियो मे राधा-माधव को प्रवेश कराकर उनके अनुराग का निदर्शन कराते है। किसी-किसी का वृन्दावन वर्णन तो ऐसा सरस और मनोमोहक होता है की अत तक उसी को सुनने की अभिलाषा बनी रहती है। ऐसे कवि जब आगे चलकर अत्यन्त सरस पदो से राधा-माधव के प्रेम को दिखाते है, तो वह पहले के वर्णन मे डूब-सा जाता है। सफल चित्रकार वही है, जो बहुत ही धुंधले रगो मे पट को अकित कर विशेष प्रभावशाली रगो से आराध्य देवी का चित्र चित्रण करे। जो पहले ही रागभरी कूंची से चित्रपट को जगमगा कर देते है, वे उस पर सुन्दर चित्र बनाने पर भी वैसा प्रभाव उत्पन्न करने मे कृतकार्य नही होते। वह चित्रपट कविता मे व्यजना द्वारा वाच्यार्थ की अपेक्षा कही अधिक प्रभावोत्पादक होता है। यहाँ कवि ने उसी वृत्ति का आश्रय लिया है। वृषभानु-किशोरी शब्द से उनके लीलारगमच का निर्देश न करानेपर भी निर्देश हो जाता है। इसी प्रकार नन्दकिशोर शब्द कहने में चमत्कार है। वृषभानु-किशोरी की व्याख्या करते समय जिन विशेषताओ का दिग्दर्शन कराया गया है, वही नदकिशोर शब्द मे है, इसलिए पिष्ट-पेषण व्यर्थ है।

हमारे रगमच पर वृषभानु-किशोरी और नन्दकिशोर, दोनो ही किशोरावस्था मे पदार्पण करते है। तब फिर एक का वृषभानु-किशोरी "भई, और दूसरे का नन्दकिशोर "कहावै" यह भिन्न शब्दो से परिचय क्यो दिया है? दोनो का ही 'भयै अथवा 'कहावै' कहकर क्या वर्णन नही किया जा सकता था अथवा नन्दकिशोर 'भयै' और वृषभानु-किशोरी 'कहावै' ऐसा कह देने से अर्थ में क्या अतर उपस्थित हो जाता, इसकी मर्मज्ञ पाठकगण विवेचना करे।

कवि ने इन शब्दो को चुनकर जो अपनी मार्मिकता का परिचय दिया है, विदग्धता का निदर्शन कराया है और गभीरतम सुकुमार भावो के अतस्तल तक पहुचने की योग्यता का दिग्दर्शन कराया है, वह आगे पाठको की दृष्टि पथ मे अवतरित होगा। नदकिशोर अब उस अवस्था

विषय है। अत. केवल किशोरी कह देने से किसी भी देश की कुसुम सुकुमार नई वय में वर्तमान बाला का चित्र आँखो के सामने आसकता था। रमणीयता किसी देश-विशेष की अथवा स्थान-विशेष की सम्पत्ति नही है। और, जिस देशमें मनुष्य की विशेष स्थिति रही हो, अथवा जहाँ की वामांगनाओ के विषय में वासनाओ का अकुर विद्यमान हो उसी देशकी सुन्दरी मानस-नेत्रो के सम्मुख आकर उपस्थित हो जायगी, परन्तु कवि को यह अभिप्रेत नही है। वह तो अमरपति के सौंदर्यसार-समुदाय-निकेतन अप्सराओके दिल के विभ्रम को अपनी वदन-श्री से तुच्छ करनेवाली, गोपबालाओ के ललित अगो के लावण्य लीलाजल में सहृदयो को निमज्जन कराना चाहता है, अत वह किसी एक शब्द द्वारा स्थान-विशेष का परिचय कराने को उत्सुक है, और वह अपना अभिप्राय उसने वृषभानु-किशोरी कहकर पूर्ण किया है। यह पहले कहा जा चुका है कि श्रीराधिका के अनेक नामोमे से किसी दूसरे नाम की योजना यहाँ नही की जा सकती थी। अन्य नाम से उनके सौदर्यका द्योतन तो होता, परतु साथ-साथ यदि भक्ति-भाव का भी उदय होने लगता, तो जो प्रभाव उत्पन्न करना कवि को अभिप्रेत है, वह सिद्ध नही होता। यदि हम श्रीराधिका को जगन्माता के रूप मे देखे, तो फिर उनकी प्रेमलीला से हमारे हृदय में श्रद्धा का भाव उदय होगा और हम उनके उस स्वरूप को देखने में अक्षम हो जायँगे, जिसमें वह कदर्प-मोहिनी अवस्था मे विद्यमान है और अपने विभ्रम विलासो से रभा और रतिके हृदय मे भी उस अलौकिक लावण्य को प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न कर देती है। अत. 'वृषभानु-किशोरी' ही कहा। जब हम रगमच पर अभिनय देखने के लिए अपने-अपने गृहसे प्रस्थित होते है, तब दूर से ही दिनकर-प्रभा का अनुकरण करनेवाली सहस्र-सहस्र विद्युत्-दीपकोकी आभा से व्याप्त आकाशमडल को देखकर किसी अलौकिक चमत्कार-दर्शन की कल्पना करने लगते है। मधुर सगीत-धाराओ-के दूर से ही श्रवण विषय होने से वहाँ जाने पर जो दिव्य सगीत-लहरी म मानस उल्लसित होगा, उसका उपक्रम सा होने लगता है। कहने का विषय यह है कि रसास्वाद के पूर्व उस वातावरण का अनुभव होने से रसका आभास पहले हो जाता है---उसी प्रकार, जैसे चित्रकार चित्र खिचने के पूर्व के चित्र पीछे के दृश्य का ऐसा आयोजन कर लेता है कि चित्र मे जो भाव उत्पादित करना है, उसमें वह दृश्य भी सहायक होता है। इसी प्रकार कवि अपनी कविता का आस्वादन कराने के पूर्व उसके आस्वादन के अनुरूप स्थिति का पहले ही निर्माण कर लेता है। वृषभानु-किशोरी कहने से ही वृदावन का चित्र हमारी आँखोके सम्मुख खिच जाता है। जिस रगमचपर हम राधा

को प्राप्त हो रहे है उसके विषय में महाकवि भवभूति ने उत्तर रामचरित मे कहा है-

यत्कल्याणा वयसि तरुणे भाजन तस्य जातः।

उस समय उनके शरीर की द्युति निखरने लगी है, और उनका वह उठता हुवा यौवन सब लोगो की दृष्टि मे आने लगा है। शरीर मे जो उन्नति हुई है, बाहुओ में जो पीनता और वक्षःस्थल में जो नामठता का आविर्भाव हुवा है, वह उनके पुरुष होने मे सबकी दृष्टि में आता है। शरीर में मार्दव के साथ साथ पुष्टि भी हुई है। नेत्रो में सौंदर्य के साथ-साथ राग का भी सन्निवेश हुवा है। गति मे चचलता के साथ-साथ जो मत्तगयद का भाव भी आने लगा है, उसी यौवन के आगमन के यश का विस्तार होने से देखनेवालो ने तो देखा ही कि अब ये बाल्यावस्था को छोड आगे बढ रहे है, परतु देखनेवालो ने उनके अग-श्री की वृद्धि की चर्चा भी चारो ओर करना प्रारभ कर दिया है, जिससे नद के लाल अब किशोर हुए चले जा रहे है। ये लोग केवल देखते ही नही है, परतु कहने भी लग गये है। उनके यौवन की कथा, पुरुष होने से, यथेष्ट वार्तालाप की सामग्री हो सकती है। सभी के प्यारे नद के दुलारे की चर्चा चारो और होने से 'नदकिशोर कहावै' ऐसा लिखना बहुत ही उपयुक्त है। परतु इसके विपरीत वृषभानु-कुमारी के किशोरावस्था में पदार्पण करने के रहस्य को लोगो के मुख से कहलवाना या उसका डिमडिम कराना कवि को अनुचित प्रतीत होता है। पुरुष की शारीरिक स्थिति की आलोचना आलाप का विषय हो सकता है। परतु किसी किशोरी की यौवनकथा की पताका उडाना अत्यत ही निर्लज्जता का द्योतक है। अत विदग्ध-समुदाय मे उसकी चर्चा नही हो सकती। वृषभानु-किशोरी तो किशोरी हो गई है, परतु इसकी चर्चा नही हो पाई है। (इस वर्णन मे जो शील और मर्यादा की रक्षा की है,) उसकी किन शब्दो मे प्रशसा की जाय। इस समय की अवस्था का-

"स्तन मन नैन नितब को बडो इजाफा कीन।"

यह कहकर सुकवि बिहारीलाल ने वर्णन किया है। परतु हमारे पद्माकर इन अगो की वृद्धि को आच्छादित ही रखते हुए 'भई' शब्द से बिना प्रकाश किये सब कुछ समझा देते है। इसीलिए इनको वृषभानु-किशोरी 'भई' कहा है। यहाँ श्रीराधिका की यौवनजनित रमणीयता को अप्रकाशित रखने में कवि ने जो कला का चमत्कार दिखाया है उसे सहृदय पाठक समझें। दूसरे नायक और नायिका, दोनो के किशोरावस्था मे वर्तमान होनेपर भी 'नदकिशोर कहावै' कहकर श्रीराधा की अपेक्षा श्रीमाधव का

जो कुछ अधिक यौवन-श्री का विकास दिखा दिया है वह उचित ही है। फिर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र तो नन्दकिशोर थे नहीं, केवल कहलाते थे, इस बारीकी पर भी विचार किया जाय।

अब दूसरा प्रश्न यहाँ पर यह हो सकता है कि कविता के रंगमंच पर पहले वृषभानु-किशोरी का प्रवेश कराके फिर नंदकिशोर का प्रवेश क्यों कराया? क्या पहले श्रीकृष्ण का वर्णन करके फिर श्रीराधिका का वर्णन नहीं किया जा सकता था? इसका उत्तर यही है कि सरोज-कोष का जल से निर्गमन होने पर भ्रमर आता है या भ्रमर के आने पर पुंडरीक जल से बाहर निकलता है? चन्द्रमा का उदय होने पर चकोर स्पृहा से उसकी ओर देखते हैं, शमा के रोशन होने पर पतंग उसकी ओर झपटते हैं। पतंगों के इकठ्ठे होने पर चिराग रोशन नहीं किया जाता। दोनों ही आलंबन स्वरूप हैं, और दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है, परंतु फिर भी, जिस भावुकता के विचार से श्रीराधा सुन्दरी का चित्र नेत्रों के सम्मुख लाकर उस मुख-कमल के मधुव्रत श्रीकृष्ण को दिखाया है, वह परम प्रशंसा का भाजन है। फिर यहाँ पर "ये वृषभानुकिशोरी भईं" इस पद से उस प्रणय-लीला के चित्र को अपनी ओर खींचते हुए 'ये' और 'वह' कहकर दोनों के दूरदूर स्थित होने की कल्पना को इसीलिए उत्पन्न किया है कि बाद में संयोगरूप से परस्पर सम्मिलन में एक साथ हो जाने के सौंदर्य की वृद्धि हो। पहले दृश्य (लाइन) में हम देखते हैं राधा और माधव। दूसरे दृश्य (लाइन) में दोनों में समानता दिखाई और परस्पर एक दूसरे की ओर अग्रसर होने का हेतु। तीसरे दृश्य में दोनों एक दूसरे की ओर चल पड़ते हैं और चौथे में तन्मयता का भाव उपस्थित हो जाता है। यदि पहले ही दृश्य में दोनों को सम्मिलित अवस्था में कवि दिखला देता, तो उतनी हृदयहारिता न रह जाती।

यों 'पद्माकर' दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावै

पद्माकर कवि कहते हैं कि जिस प्रकार दोनों में किशोरावस्था आ गई है, उसी प्रकार दोनों में अनंग की नवरंग तरंग छा रही है। इस पंक्ति से भी दोनों के यौवन-विकास का वर्णन करना ही कवि का अभिप्राय है। यहाँ शंका यह हो सकती है कि जब किशोरावस्था में पदार्पण करने का उल्लेख हो गया है, तब पुनः यौवन में प्रवेश के वर्णन की क्या आवश्यकता? परंतु यौवन में प्रवेश करने का कथन केवल शारीरिक विकास का द्योतक है और चित्त के विकास का वर्णन जो कवि

उत्पन्न होती है, परतु हृदय ललित भावो से भर ही जाय, ऐसा सर्वदा नही होता। शरीर मे जब यौवन प्रवेश करता है, तब हृदय मे मन्मथ भी। यौवन और मन्मथ दोनो सहचर है, परतु दोनो एक ही नही है। इसीलिए कवि ने यह लिखा कि दोनो पर अनग की नये रग की तरग छा रही है। यह न लिखने से हम ऐसे श्रीकृष्ण की भी कल्पना कर सकते थे, जो यौवन-वारि मे आकठ अवगाहन करने पर भी मन्मथकला से अपरिचित रहते। सभवत पाठको को यह क्लिष्ट कल्पना प्रतीत हो, परन्तु जब हम शृगी ऋषि का उदाहरण सम्मुख रक्खेगे, तब हमारे कथन की पुष्टि होगी। पूर्ण यौवन को प्राप्त होनेपर भी सद्योजात शिशु की भाँति वह काम-कलासे अनभिज्ञ थे, और बहुत दिनो तक कदर्प क्या ह, पुष्पधनु मे क्या शक्ति है, कुसुम- शर मे कितनी तीक्ष्णता है, हृदय - व्रण मे कैसा दाह होता है, अमृत कब विष मालूम होने लगता है, चद्रमा मे कब अग्नि-मडल की भ्राति होती है, सुमन-दल कब कंटक-से प्रतीत होते है और नलिन - पत्र कब आतप - तापित से शरीर को कष्ट देते है, प्रेयसी क्या वस्तु है, नेत्रो मे मादकता का स्वरूप कैसा होता है अधर मे कैसा मधु है, और प्रिय जन के दर्शन से कैसी पीयूष - वर्षा होती है, इन सबका ज्ञान भी उन परम ज्ञानी को न था। इसी लिए शैशव के व्यतीत हो जाने पर भी अनग के आगमन की सूचना देनी ही पडती है। अनग की तरग छा रही है। जो अनग है, उसकी तरग कैसे छावेगी। इसका चमत्कार देखिये, और फिर अनग की तरग इसलिए कहा कि जो अनग है उसकी तरग भी अनगजनित होनेके कारण अदृश्य होनी चाहिए, जैसी कि वह होती भी है। अनग की तरंग मे न दर्शन, न श्रवण, न घ्राण, न स्पर्श, न आस्वादन होता है। वह इन किसी का विषय नही है। वह केवल अनुभव का विषय है। इसी लिए अनग की तरग कहा। नवरग पद के विशेषण से तरग को इसी लिए युक्त कर दिया है कि किसी नवीन का राग का आवेग अभिप्रेत है। चित्त मे प्रत्येक समय कदर्प पीडा नही करता इसलिए जिनके चित्त मे अनग आता और जाता रहता है उनके लिए अनग का आगमन कोई नई वस्तु नही। परन्तु जिनके चित्त मे पहले-पहल मीनकेतन की वैजयन्ती फहराती है, उनके लिए वह अनुभव अवश्य नवीन होता है। पहले कभी उनको इस कुसुम - शर के स्पर्श का अनुभव नही हुआ है, यह दिखलाने के लिए ही 'नव' शब्द का उपयोग किया। पूर्वानुराग का यह प्रथम ही अवसर है। यदि कदाचित् श्रीकृष्ण का किसी के साथ प्रेम हो चुका होता अथवा श्रीराधा सुन्दरी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रणय-परिपाटी का अनुभव कर चुकी होती, तो इस अनुराग मे न वह प्रबलता ही रहती, न वह

लाल को देखने पर मतिराम के बाल के नयन-तुरग मुँहजोर हो जाते है, परतु हमारे पद्माकर के तो वृषभानु-किशोरी और नदकिशोर दोनो ही रस-पान करने के लिए व्यग्र है। 'दौरे' किसी एक को जाते देख दूसरे के चचल गमन से कदाचित् यह सुअवसर विना नैनचकोरो द्वारा मुखचन्द्र-पीयूष का पान किये ही चला जाय, इसकी व्यजना करता ह। दौडना रस को नष्ट नही करता, वह तो रस-परिपाक मे सहायता ही करता है। ध्यान रहे कि यह प्रौढ प्रेमियो की प्रेम-लीला नही है। यह यौवन मे प्रवेश करते हुए किशोर और किशोरी की प्रणय-परिपाटी है। यह उस समय की अवस्था है, जिसके विषय मे एक सस्कृत के कविने कहा है–

रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरं मिश्रं वयो वर्तते।

अर्थात् यौवन और शैशव दोनो के मिलाप की यह कोई रम्य वय है, जब बालोचित क्रीडाओ का पूर्ण रूप से अत नही हो जाता. यौवन का भी पूरा साम्राज्य नही फैलता। कुछ बाते बाल्यावस्था की विद्यमान रहती ही है और कुछ तारुण्य की। इसी लिए दौडते है। परन्तु यौवन-आविर्भाव से वह दौडना दूसरो की दृष्टि मे न आ जाय, इसीलिए 'दुरि' का प्रयोग किया है। और भी कवियो ने नायक के दर्शन के लिए नायिका का खिडकी-खिडकी जाने का और फिरकी-से फिरनेका वर्णन किया है। किसी ने वारवार अटा पर जाने का उल्लेख किया है। इसी चाचल्य के भाव को 'दौरे' शब्द कहकर पद्माकर ने प्रकट किया है। सभवत कोई इसमे वाच्यता का प्रयोग आरोप कर दोष दिखावे। परन्तु यहाँ पर दौडना मुख्य प्रयोजन नही। मुख्य प्रयोजन अनुराग है, और दौडने से उसकी व्यजना होती है। 'दौरे' यद्यपि अभिधा है, परन्तु ध्वनि इससे उत्सुकता की निकलती है। देखने मे और दौडने मे दोनो मे ही जो देहरी-दीपक न्याय से 'दुरि' शब्द लगेगा, वह कवि की सामर्थ्य दिखाता है। यदि देखते समय एक दूसरे को देख ले, तो अपना अनुराग प्रकट हो जाने से जो लज्जा होगी, उसी लज्जा के सचारी भाव को कवि ने यहाँ व्यक्त किया है। यह अनुराग की प्रारभिक दशा है, जब एक दूसरे को देखने से ही तृप्ति हो जाती है। यहाँ पर विशेष विषय-वासना की ओर चित्त की प्रवृत्ति नही हुई है। इसमे वय की किशोरता और अनुराग की नवीनता हेतु है।

"दुति देह दुहूँ की दुहूँन को भावै"

यहाँ पर दुति–देह से उसी काति का तात्पर्य है, जिसका हम पहले वर्णन कर आये है। एक को जो दूसरे का सौंदर्य मनोमोहक प्रतीत होता है, इसमे पय की मधुरता है, मधु की नही। जब विशेष वासना हो जाती है, और

सात्त्विकता ही, जिसको कवि ने वर्णित किया है। इस प्रेम की नवीनता को दिखाने के लिए ही कवि ने इस विशेषण का आश्रय लिया है। राग की व्यजना करने के लिए अनुराग की वीचि मे वर्ण का आरोप किया है। निर्मल जल वर्णविहीन होता है, परतु जब भावो की विशेषकर अनुराग की—प्रबलता का प्रकट करना उद्देश्य होता है, तब रग की कल्पना से प्रेमाधिक्य का निदर्शन कराया जाता है। इसी नवरग - तरग से दोनो पूर्णतया आच्छादित है और शोभित होते है। इसी लिए 'छावै' का प्रयोग किया। प्रात काल का कमल जिस प्रकार दिनकर के स्पर्श से समुल्लसित हो उठता है, सुधामयूख की दीधिति से जैसे कुमुदिनी प्रफुल्लित हो जाती है, शान पर चढाने से जिस प्रकार विविध धातु-निर्मित वस्तुतति का तेज प्रखर हो जाता है, उसी प्रकार अनग के आगमन से शरीर मे एक नई काति से मनोमोहकता आ जाती है। यह 'छावै' शब्द का अभिप्राय है। दोनो में इस प्रकार यौवन और मदन का आरोप कर अब अनुराग-जनित क्रिया को दिखाते है।

"दौरे दुहूँ दुरि देखिबे को"

इन शब्दो का अर्थ स्पष्ट है। अर्थात दोनो देखने को दौडते है। 'दुरि' शब्द 'दौरे' और 'देखिबे को' दोनो का विशेषण हो सकता है। अनुराग की प्रबलता के कारण प्रेम-पात्र जब तक देखने के स्थान पर पहुँचे, तब तक नैन की ओट न हो जाय, यही दौडने का हेतु है। प्रिय पात्र को देखने की जो उत्कठा और अभिलाषा चित्त मे होती है, जिस व्यग्रता से हृदय व्याप्त हो जाता है और विलब को अस्वीकार कर निमेषमात्र में क्षुधित नेत्रो के पारण-स्वरूप प्रेमी जन को अवलोकन करने का आग्रह होता है, वह वर्णन से हृदयगत नही हो सकता। वह तो अनुभव की वस्तु है। जब प्रिय पात्र के सामने आने की सभावना होती है, तब नेत्र लज्जाजाल को छोडकर स्वतत्र हो प्रिय के सौदर्य-सरोवर मे अवगाहन के लिये दौड पडते है। इसी का वर्णन करते हुए कविवर विहारीलाल कहते है -

लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहि,
ये मुँहजोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाहि।

इसी भाव को मतिरामजी ने भी अपनाया है —

मानत लाज लगाम नहि नैकु न गहत मरोर,
होत लाल लखि बाल के दृग-तुरग मुँहजोर

आनन्दयन्ति मदयन्ति विषादयन्ति
यूना मनासि तव यानि विलोकितानि
कि मन्त्रमावहसि तादृशमौषध वा
किंवा कृशोदरि दृशोरियमेव रीतिः ।

अर्थात् तेरे ये नेत्र दृग्टिपात युवाओ के चित्त को आनन्द देते है, मद उत्पन्न करते है और विशादकारक भी है। तुझको कोई मत्र आता है अथवा यह कोई विशेष औपधि है, अथवा कृशोदरि, तेरी दृष्टि की यह रीति ही है।

यदि ससार भर के मकर-केतु के वाणव्रण धारण करनेवाले पुरुषो का वास्तविक इतिहास पूछा जाय कि, प्रथम दर्शन के समय प्रेयसी के किस अग ने हृदय को जर्जरित किया और मोह उत्पन्न कर ललित रस उत्पन्न करनेमे विशेप रूप से सहायक हुए, तो अधिकाश मे यही उत्तर मिलेगा कि वह सौदर्य निधि काता के लोचन–युगल थे। किसी–किसी का चित्त मनोहराकार कबरी-भार के नीचे यदि दब गया होगा, तो सभव है किसी का कलित कर्णपाशो की भूलभुलैया मे पड़कर अपना रास्ता ही भूल गया हो। बहुतो ने बेसर मोती पर मुग्ध होकर अपने चित्त को बेसर के मोती की भाँति चचल कर दिया और बिबपाटलाधर-राग से युवको हृदय के रजित होने की कथा तो प्रसिद्ध ही है। किसी–किसी कवि ने कृशोदरियो के चिबुक-गर्त मे चित्त के पडकर न निकलनेका वर्णन किया है, और स्मित की आभा से चित्त मे प्रकाश हो जाने का हाल भी सुना है परतु सब अगो के सौन्दर्यसे अपने चित्त को अचचल रखते हुए भी काता के चचल दृगचलो से चित्त को स्थिर रखना मुनिवर्ग को भी कठिन प्रतीत हुआ है। क्योकि कवियो की कल्पना मे जो कदर्प के तीक्ष्ण बाण है, वे वही रहते है, और उनमे जो रमणीयता है, वह दूसरे स्थान मे नही। यदि ऐसा न होता, तो प्रेयसी के दर्शन हो जाने पर भी उसके कटाक्षपात के लिए लोग क्यो लालायित रहते है। इसी लिए कवि यहाँ नेत्रो को प्रधानता देने के लिए वाधित हुआ। यहाँ अपने श्रीकृष्ण को हम प्रथम अनुराग मे पगे पाते है, जिसकी तृप्ति विना नेत्रो के दर्शन के नही हो सकती। श्रीराधा-सुन्दरी के लोचन युगल उनकी लालसा के परमधाम है, इसका हेतु वय की किशोरता और अनुराग की नवीनता पहले ही दिखा चुके है। इसलिए फिर लिखना व्यर्थ है।

यदि हम कृष्ण को यहाँ कामुक रूप मे पाते, तो सभवत उनकी दृष्टि श्रीराधा के वक्षस्थल की ओर जाती अथवा किसी ओर ही अग की

श्रृगार की प्रौढ परिपाटियो मे प्रवृत्त होने के लिए चित्त का उत्साह होता है, जब प्रिय पात्र की गात्रयष्टि को बाहुबद्ध करने की अभिलाषा होती है, तब उस उद्दाम अवस्था मे जो लालसा की ज्वाला विस्फुलिंगित हो जलने लगती है, वह दशा यहाँ नही है। यहाँ तो वह अनुराग है, जिसमे एक दूसरे को देखने से आनन्द का अनुभव होता है और कुछ मानने के लिए चित्त व्यग्र नही होता। प्रभात के अनुराग तपन से प्रेमियो का तनु तापित है, मध्यान्ह के प्रखर कदर्प मार्तंड की अग्नि से शरीर नही जलने लगा है, इसी अर्थ की व्यजना करने के लिए 'दुति देह दुहूँ की दुहूँन को' इन शब्दो का प्रयोग किया गया और इसी लिए 'भावै' इस मृदु पद का व्यवहार हुआ है। यही भाव दिखाने के लिए हमने पहले लिखा है कि उनके अनुराग से पय की मधुरता है, मधु की नही।

"ह्याँ इनके रसभीने बडे दृग
व्हाँ उनके मसि भीजत आवै।"

दोनो को एक दूसरे का सौदर्य रमणीयता की राशि मालूम होता है, और अपने आनन सूर्योदय के समय के अभिनय कमल की श्री को धारण करते हुए अपनी काति से सुधाशु के हृदय मे मुखकाति-तस्कर होने की भ्राति उत्पन्न करते हुए जो राधा श्रीकृष्ण एक दूसरे पर इस प्रकार मोहित हो गये है, उसमे श्रीकृष्ण के हृदय मे, सर्वागसुदर होने पर भी, राधिका के कौन से अवयव विशेष रूप से रुचित हुए है, इसी का यहाँ पर उल्लेख हुआ है। किसी एक अग के सौदर्य–का विस्तार करने से यह कल्पना नही करनी चाहिए कि और अगो मे लावण्य की न्यूनता है। जिनकी वदनकाति की दीप्ति से शका होती है, और प्रत्येक अवयव का निर्माण करने मे मानो चतुरानन ने चारो ओर से सौदर्य–सार वस्तुओ का अपहरण कर पुष्पधन्वा की सहायता से शरीर निर्माण किया था, जिनके अगो मे स्वय वसत अपनी श्रीसम्पत्ति को लेकर उद्दीपकता भरने को प्रस्तुत हुआ था. उनके प्रत्येक अवयव कवियो की कल्पना की अवसान-भूमि और श्रीकृष्ण के चित्त को हरण करने के लिए साक्षात वशीकरणमत्र-से है। फिर भी कवि ने और अवयवो को छोड नेत्रो का गुणगान क्यो किया, ऐसी शका पाठको के हृदय मे स्वाभाविक है। हमारे विचार से इसके तीन कारण है—नेत्र शरीर के प्रत्येक अवयव से अधिक सौदर्य की राशि इसलिए माने गये है कि उनमे अनुराग उत्पन्न करने की विशेष शक्ति है, जिनके विषय मे सस्कृत के एक कवि ने कहा है –

कहकर किया है, उसी अनुपम किशोर वय के सौंदर्य को "ससि भीजत आवे" अभी पूर्ण रूप से भीजी नहीं है, भीजती आती है इस सुकुमार पद के साथ पद्माकरजी ने चित्रित किया है। नायिकाजी के नेत्र ऐसे साहसी नहीं कि वे श्रीकृष्ण के नेत्रों की ओर देख सकें। उनकी पलकें लज्जा से झुक जाती हैं, अतः दृष्टि मुख पर आकर रुकती है। लज्जा सुन्दरियों का सार सौंदर्य है और श्रीकृष्ण के तारुण्य कल्याण-भाजन होने के गुण को, उस शृंगार-दीक्षा गुरु के गौरव को, उस नागर शिरोमणि के सौंदर्य को, जो ससि भीजने से कवि ने ध्वनित किया है, वह जैसे ही सहृदयता की पराकाष्ठा है, वैसे ही सरसता की परम कोटि है। इस भाव का हम यहाँ पर बीजरूप से दिग्दर्शन करा देते हैं। सहृदय इस पर विशेष विचार करें। हमें लिखना कुछ नहीं है, जो लिखना था, सो लिख दिया। अन्तिम निर्णय सहृदयों के विचार पर ही है। यह तो प्रकाशनमात्र है। पाठक पद्माकर की काव्य-सरिता में अवगाहन करें और देखें, उसमें रस है या नहीं, और यदि है तो कहाँ तक वह सरिता कहलाने की योग्यता रखती है या नहीं, इसका विचारक सहृदय-समुदाय ही है।

'अत्यन्त आनन्द की बात है कि सूरदास, तुलसीदास, [illegible], बिहारी, पद्माकर आदि जगद्विख्यात कवियों ने अपनी [illegible], मनमोहिनी, प्रासादिक वाणी में यह सिद्ध कर बताया कि हिन्दी कविता किसी अन्य भाषा की कविता से [illegible] है।'

छत्तीसगढ़-मित्र — वर्ष १ अं० ८ [illegible] १९०० [illegible]

'[illegible] भाषा के [illegible] लालित्य [illegible] तल्लीनता है, [illegible] साहित्य [illegible] होगा?'

[illegible]

([illegible])

रमणीयता के शब्द कवि की लेखनी से निकलते, परतु जिस कला का चमत्कार महाकवि पद्माकर ने दिखाया है, वही नष्ट हो जाता। किशोरावस्था मे यौवन का चारो ओर फैलना और उत्तुगता को प्राप्त होते हुए कमलकोरक की शोभा धारण करना प्रसिद्ध है। वैसे ही नितब की पृथुलता की कवियो न बहुत ही रस-भरे पदो मे आलोचना की है। परतु नेत्रो का विकास और उनका एक विशेप प्रकार की मदिरा से भर जाना सभी के दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए महाकवि पद्माकर ने कृष्ण की दृष्टि को अपनी दृष्टि मे रखते हुए, एक विशेप प्रकार की मर्यादा का निर्वाह करते हुए, केवल नेत्रो का वर्णन किया, और उनको उस रूप मे दिखाया है, जिस रूप मे वे रस के वारिधि से है। 'भीने' शब्द यहाँ पर ऐसा सुन्दर रक्खा है कि उसकी जगह दूसरा शब्द रख देने से रस से आर्द्र, प्रेम से ओत-प्रोत जो नेत्र है, उनका चित्र सामने नही आता। इस रस शब्द से आनद देने की योग्यता, मदिरा-रूप से मोह उत्पन्न करने की क्षमता और चित्त मे एक मधुरताभरी बेचैनी भी उत्पन्न करने की शक्ति का परिचय मिलता है। वह 'बडे' दृग कहने से और भी विशेपता को प्राप्त हो जाना है। 'बडे' दृग कहने से जो सौदर्यातिशय और किशोर वय की ध्वनि निकलती है, वह सहृदयगम्य विपय है। प्रथम पक्ति मे जिस ध्येय को सन्मुख रक्खा था, उसकी परिपूर्णता हो जाने पर प्राथमिक भाव की एक मुद्रा-सी लगा दी है, जिससे जैसा रस का उद्रेक होता है, वैसा अन तक परिपाक होता चला जाता है। श्रीकृष्ण की मुखच्छवि के विषय मे क्या लिखें। उसके विषय मे तो कहा गया है कि कोटि कदर्प की छवि उस पर निछावर करने योग्य है। जिनकी वदनेन्दु-चन्द्रिका के रूप का अपने लोचन-चकोरो से पान करने के लालच मे कुलकानि और लोकलज्जा त्याग व्रजललनाएँ पति और परलोक तक को नगण्य मानती थी, उनके ललित रूप मे कवि को क्या दिखाना अभिप्रेत है कि 'ह्वाँ उनके मसि भीजत आवै' यह कहकर कवि ने उपसहार किया ? जैसे राधा सुन्दरी किशोर वय मे है, वैसे ही माधव तारुण्य-सोपान के प्रथम पद पर रक्खे हुए है, यह दिखाकर सदृशका सदृश से अनुराग होना उपयुक्त ही है, इस रत्नकाचन योग को दिखाया है। श्रीकृष्ण के 'मसि भीजत आवै' मे उसी प्रकार यौवन का आगमन दिखाया है, जैसे महाकवि बाण ने लिखा है—मानो करिकलभ के मुख पर पहली बार मदलेखा का आविर्भाव हुआ हो। जिस मुखच्छवि का वर्णन महात्मा सूरदासने—

"कछुक उठत मुख रेखैं री"

अत्युत्कृष्ट ठहरती है । यद्यपि अमरुकने किसी बृहत्काय महाकाव्य की रचना नही की है, तथापि जो कुछ किया है, उसपर सैकडो महाकाव्य निछावर है–

" अमरुककवेरेक श्लोक प्रबन्धशतायते ।"

फिर भला ऐसे उत्कृष्ट कवि की कविता को हिंदी के शृगारी कवि कब बिना अपनाए छोडते ? हिंदी के प्रधान शृगारी महाकवि बिहारी ने अमरुक के भावो से मजमून लडाया ही है । जिसका प्रदर्शन हिंदी के प्रसिद्ध समालोचक प पद्मसिंह शर्मा अपने 'सजीवन भाष्य, की भूमिका में कर चुके है । यद्यपि शर्माजी का यह प्रदर्शन पूर्ण नही कहा जा सकता कि बिहारी के और भी कतिपय दोहे ऐसे है, जिनपर अमरुक की स्पष्ट छाया पडी है । विषयातर होने के कारण उनका दिग्दर्शन किसी दूसरे लेख मे किया जायगा। पर इस अलौकिक कवि की कविता को केवल बिहारी ही अपनाकर छोड देते और हिंदी के किसी अन्य कवि का ध्यान इस ओर न जाता यह सभव न था । अन्य प्रसिद्ध शृगारी कवियो के काव्यो की छानबीन करने पर ज्ञात हुआ कि बिहारी के अतिरिक्त केशव, मतिराम, दास और पद्माकरने भी अमरुक के भावो को अपनाया है । पर इस 'मीरास' मे, 'ज्येष्ठाश' कविवर पद्माकर को ही प्राप्त है । प्रस्तुत लेख का उद्देश्य पद्माकर के उन्ही पद्यो का निदर्शन कराना है, जिनमे अमरुक के पद्यो का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है । पर इस निदर्शन के पूर्व अमरुक के विषय की थोडी सी जानकारी अप्रासगिक न होगी । (कम से कम ईसा की नवी शताब्दी के पूर्व इनका आविर्भाव हो चुका था।)

अमरुक के विषय की उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का उल्लेख करके अब हम पाठको को अमरुक और पद्माकर के बिम्बप्रतिबिम्ब भाववाले पद्यो की सैर कराना चाहते ह ।

(१)

तद्वक्त्राभिमुख मुख विनमित दृष्टि कृता पादयो–
स्तस्यालापकुतूहला कुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया ;
पाणिभ्या च तिरस्कृत सपुलक : स्वेदोद्गमो गडयो
सख्य कि करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके सधय ।

– अमरुक ११

अनुरागवती नायिका को सखियो ने मान के बहुत से पाठ पढाये, बहुत कुछ उलटा सीधा समझाया, पर कुछ भी कारगर न हुआ। ऐन वक्त पर कलई खुल गई। 'सिखवलि बु[illegible] उपराजलि माया अत करावति हासी' बेचारी

अमरुक और पद्माकर

किसी का कथन है :—

भाखा साखा जानिए, सस्क्रित है मूल।
मूल धूल मे रहत है, साखा मे फल फूल ॥

यदि दोहे की आकस्मिकता, अत्युक्ति, और अतिरजना को छोडकर केवल उनके अतर्निहित तथ्य पर ध्यान दिया जाय, तो मालूम होगा कि दोहा बडा मार्मिक है। सचमुच हिन्दी पर सस्कृत का प्रभाव उपेक्षा का विषय नही। सस्कृत के समृद्ध भण्डार से हिन्दी काव्य की यथेष्ट श्री-वृद्धि हुई है। यह बात हिन्दी के प्रसिद्ध कवियो की कृतियो के आलोचनात्मक अनुशीलन से प्रकट है। हिन्दी के कितने ही कवियो ने सस्कृत के सुदर अनूठे भावो को निसकोच हो अपनाया है। उन्होने उन भाव-रत्नोको अपनी प्रखर प्रतिभा की 'सान' पर चढाकर उनमे एक नई चमक पैदा करने की कोशिश की है, अपने उर्वर मस्तिष्क की सहायता से सस्कृत के 'मूल' को 'पल्लवित' करने की चेष्टा की है।

आज हम ऐसे ही उपजीव्य और उपजीवक दो कवियो के कुछ पद्य-रत्न पारखी पाठको के सामने रखना चाहते है। उनमे उपजीव्य महाकवि अमरुक सस्कृत के एक परम प्रसिद्ध कवि हो गये है। सस्कृत साहित्य मे उनका बडा मान है। उनके एकमात्र ग्रथ 'अमरुशतक' को सस्कृत सरस्वती का देवच्छद (सौलडा) हार कहना चाहिए। सस्कृत मे साहित्य शास्त्र विषयक शायद ही ऐसा कोई ग्रथ हो जिसमे उनके पद्यरत्न या ध्वनि के उदाहरण मे उद्धृत न किए गये हो शृगार रस की जैसी सुदर, सरस, उत्कृष्ट एव ध्वनि पूर्ण रचना अमरुकने की है, वैसी शायद ही किसी ने की हो। रस का पूर्ण परिपाक जैसा उनके पद्यो मे हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी रचना शृगार से शराबोर, रस से परिप्लुत, ध्वनि से धन्य और गुणो से गर्भित है। मानव हृदय के सूक्ष्म कोमल भावो के चित्रण मे तो उन्होने कमाल ही कर दिया है। शब्द सौष्ठव तो देखते ही बनता है। प्रसाद तो ऐसा है, जैसे किसी स्वभाव रमणीय कुसुम का प्रसरणशील सौरभ। तात्पर्य यह कि क्या भाषा, क्या भाव, क्या रस, क्या ध्वनि, क्या गुण, क्या छद, सभी दृष्टि से उनकी कविता

कर की जिस भावुकता एव सहृदयता का परिचय मिला है—वह प्रशसनी है। अनुवाद मे उत्तम अनुप्रास तथा मुहाविरे के प्रयोग के कारण मौलिक क आनद मिलता है। [1]

(२)

नि शेषच्युत चन्दन स्तनतट निर्मृष्ट रागो ऽधरो
नेत्रे दूरमनजने पुलकिता तन्वी तवेय तनु
मिथ्यावादिनि दूति ! बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे !
वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिके।

अमरूक – १०५

नायिका ने नायक को बुलाने के लिये दूती भेजी। वह गई और लौट भी आई, पर नायक को साथ न ले आई। चतुर नायिका दूती के रगढग देखकर ताड गई कि माजरा कुछ और है। उसने कहा— 'क्यो ? देख तो, यह तेरे स्तनतट का चन्दन बिलकुल पुछ गया है, अधर की लाली मिट गई है, आखो का काजल गायब है, और तेरे सारे तन मे पुलकावलिया उठरही है। अरी झूठी ! तू कोरी बाते बनाती है ? तुझे आत्मीयके दुख दर्द की कुछ भी परवाह नही। अरी निर्मोही ! तू सीधे बावली नहाने चली गई और उस शठ के पास न गई।'

काव्य प्रकाश के शक्ति ध्वनि प्रस्थापक परमाचार्य मम्मटने इस श्लोक को ध्वनि काव्य के उदाहरण मे उद्धृत किया है। श्लोक का 'अधम' पद प्रधानतया यह व्यजित कर रहा है कि तू उस शठ के पास रति के लिए ही गई थी।

अब पद्माकर का कवित्त देखिए और अमरुक के पद्य से उसकी तुलना कीजिए—

धोइ गई केसरि कपोल कुच गोलन की
पीक लीक अधर अमोल धोय लाई है
कहे 'पद्माकर' त्यो नैन हू निरञ्जनमे
तजत न कप देह पुलकन छाई है,
बाद मति ठानै झूठ बादिनि भई री अब
दूतपनो छोड धूतपन मै सुहाई है ;

१. मिलाइये —पद्माकर की काव्य साधना अखौरी गगाप्रसादसिंह पृष्ठ १७३–१७४
डॉ वीरेन्द्रकुमार बडसाल। रीतिकाव्य और विद्यापति पृष्ठ – ९७

लाचार होकर लगी कहने 'एजी'! तुम लोगो की कही करने मे मैने कोई बात उठा न रखी। उनके 'सौहे' होतेही मैने मुह लटका लिया। आखे नीचे पैरो की और गडा ली–उनकी रस भरी बातो को सुनने के लिए आकुल इन कानो को बद कर लिया कपोलो पर रोमाच या पसीना हो आया, तो हाथो से पोछ डाला पर सब बेकार! चोली निगोडी धोखा देगई। ऐसी मसकी कि बद–बद उखड गये। भला बताओ, अब मान रहे, तो कैसे रहे, कैसा सुदर भाव है। कैसी लाचार बेबमी है। देखिए कविवर पद्माकरने इन्ही भावो को कैसे सुदर शब्दो मे व्यक्त किया है।

'जाके मुख सामुहे भयोई जो चहत मुख
लीन्हो सो नवाइ डीठि पगन अवागी री;
बैन सुनबै को अति व्याकुल हुते जे कान
तेऊ मूद राखे मजा मनहू न मागी री।
झारि डार्यो पुलक, प्रसेद हू निवारि डार्यो;
रोकि रसना हू त्यो भरी न कुछु हागी री,
ऐते पै रह्यो न मान मोहन लटू पै भटू,
टूक टूक व्है कै ज्यों छटूक भई आगी री॥

–पद्माकर छद – २७४

'किसी अनुरागवती नायिका को उसकी सखियो ने मान की शिक्षा दी। किंतु जिस भावना का हृदय मे निवास ही नही है उसका नाट्य कहाँ तक सफल होसकता है। उसने नाट्य तो अवश्य किया पर नायक के सम्मुख उसका भेद खुल गया। वह लज्जित होगई। प्रात काल अपनी सखियो से मिलकर उसने जो विवरण दिया, उसीका उल्लेख कविवर अमरुक ने अपने काव्य मे किया है, और अच्छा किया है। जिनके दर्शन के लिये आखे तरसती थी, उनके सामने आने पर उसने मुख नीचा कर दृष्टि पैरो पर गडाई जिनकी वाणी सुनने के लिये उसके कान व्याकुल थे, उन्हे उसने मूद रखा। कपोल पर जो पसीना आया उसे उसने पोछ डाला पर सब व्यर्थ हुआ। हृदय मे आनन्द का जो तूफान उठा तो कचुकी टुकडे टुकडे होगई। अब वह बेचारी क्या करती, सब तरह से लाचार थी। पद्माकरने अमरुक के श्लोक के इसी भाव का ज्यो का त्यो अनुवाद किया है, पर साथ ही सखियो के सदेह को दूर करने के विचार से उसने वाणी से तो कुछ नही कहा–यह पक्ति अपनी ओरसे और जोडदी है–" रोकि रसना हूँ त्यो भरी न कछु हॉंगी री।" इससे पद्मा-

नायिका– इतनी शिथिल क्यो होरही हो ?
दूती – वाह ! इतनी दूर गई और आई क्या थकी नही ?
नायिका– अच्छा, मानलिया, पर यह तो बता मेरी आली
तेरे ये होठो कैसे कटे ?

दूती ने देखा, अब तो कलई खुल गई, । उसे और कोई बहाना न सूझा । लाचार लज्जित हो चुप रही ।

पद्माकर जी ने अमरुक के इस पद्य को भी अपनाया है पर शब्दश नही। इसी भाव को उन्होने थोडा सा फेर फार करके यो कहा है–

बोलति न काहे ए री ? पूछे बिन बोलौ कहा,
पूछति हौ कहा भई स्वेद अधिकाई है ?
कहै 'पदमाकर' सुसारग के गए आए.
साची कहु मोसो आज कहा गई आई है ?
गई–आई हो तो पास सांवरेके ; कौन काज ?
तेरे लिये ल्यावन सु तेरियै दुहाई है ;
काहे ते न ल्याई फिर मोहन बिहारी जू को ?
कैसे वाहि ल्याऊ ? जैसे वाको मन ल्याई है ।[४]

पद्माकर छन्द-१२७

जिस पुरुष की दो पत्नियाँ होती है, उनमे जिसपर उसका अनुराग अधिक होता है, उसे ज्येष्ठा तथा जिस पर कम होता है, उसे 'कनिष्ठा' कहते है । दोनो पत्नियो को सतुष्ट करने मे कभी नायक को 'छल' का आश्रय लेना पडता है । महाकवि अमरुक का एक प्रसिद्ध श्लोक है –

(३)

दृष्ट्वैकासनसस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानबधच्छल ,
ईषद्वक्रितकन्धर सपुलक प्रेमोल्लसन्मानसा –
मन्तर्हासलसत्कपोलफलका धूर्तोऽपरा चुम्बति

– अमरुक – १९

---

४ मिलाइये पद्माकर की काव्यसाधना [illegible] पृष्ठ [illegible] तथा आर्यभट्टिला [illegible] का ऐतिहासिक [illegible] लेखक श्री [illegible] काशी [illegible]

आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू,
पापी लो गई न कहू नापी न्हाइ आई हैं । [२]
— पद्माकर छन्द-१२८

अनुवाद प्राय मूल के अनुरूप हुआ है। अन्यत्र 'पीकलीक अधर अमोलन लगाई है' का प्रयोग चिन्त्य है। मूल मे 'निर्मृष्ट रागोधर' प्रयोग आया है । जिसका अर्थ होता है' अधरो से राग स्वच्छ होगया' पर अनुवाद मे कही वही पीक लीक लगाई है, जो मूल के सर्वथा विपरीत है और काव्य के विचार से भी हीन है। मने अपने एक मित्र से इसका पाठ 'पीक लीक अधर अमोल धोय लाई है' सुना है और यही उचित भी जान पडता है। मेरा अनुमान है कि लिपि प्रमाद के कारण ही यह अशुद्ध पाठ प्रचलित हो गया था।

(३)

खिन्नं केन मुखं दिवाकरकरैस्ते रागिणी लोचने
रोषात्तद्वचनोदितादिलुलिता नीरालका वायुना
भ्रष्टं कुङ्कुममुत्तरीय कदनात् दलान्तालि गत्यागतैं
रूतत सत्सकल किमत्र यत् हे दूति क्षतस्याधरे ।

नायिका ने नायक को बुलाने के लिये दूती को भेजा। दूती लौट आई जरूर, पर साथ मे नायक को तो लाई नही, हा सभोगचिन्ह लेती आई। नायिका शक्ल देखते ही भाप गई कि इस दुष्टाने मुझसे विश्वासघात किया है। वह लगी उसके शरीरपरके एकएक सभोगचिन्ह का कारण पूछने । चतुर दूती भी एक एक वहाना करके लगी छिपाने। पर अततोगत्वा नायिका एक ऐसा प्रश्न कर बैठती है कि दूती की सारी कलई खुल जाती है—

नायिका— तेरा मुह इतना मुरझाया क्यो है ?
दूती — धूपसे ।
नायिका— और आखे क्यो लाल होरही है ?
दूती — उनकी (नायक की) बातो पर गुस्सा आने से ।
नायिका— भला बाल क्यो बिखरे है ?
दूती — देखती नही हो, हवा कैसी तेज चल रही है ।
नायिका— अच्छा सही पर चदन कैसे पुछा ?
दूती — चादर की रगड से ।

---

२. मिलाइये कुमारमणि रसिकरसाल (१९८८) छन्द ११ पृष्ठ ३,

लाल गुलाब सो लीन्ही मुठी भरि बाल के गाल की ओर चलाई
वा दृग मूदि उतै चितई इन भेटी इतै वृषभानु की जाई ।,
— देव [५]

'केलि के मंदिर बैठी हुती दोऊ प्रेम भरी तहँ प्रीतम आयो ,
दोउन सो करके मधुरी बतियाँ अपने ढिग मै बिठरायो ।।
'भानु' सुगंध सुँघायबे के मिस एक के नैन कपूर लगायो ,
मोजन जौलो लगी तब लौ हँसि दूजि को आपने अंक लगायो
— भानु

यद्यपि तीनो छन्दो मे प्राय एक ही भाव को व्यजित किया गया है, किंतु देव तथा भानु के नायको ने अपनी नायिका की दृष्टि बचाने मे पद्माकर के नायक की अपेक्षा अधिक कठोर उपायो का आश्रय लिया है, जिससे उनके हृदय की अविदग्धता का परिचय मिलता है, पर पद्माकर का नायक बडा चतुर है उसने जिस स्वाभाविक कौशल से एक नायिका की दृष्टि पर परदा डाल दूसरी का मनोरजन किया है, वह स्तुत्य है।

धनजय ने अपने 'दशरूपक' के द्वितीय प्रकाश के १७ वे श्लोक मे 'मध्या साश्रुकृतागसम्' लिखते हुए 'मध्याधीरा' को आँसुओ के साथ आक्षेप और वक्रोक्ति से अपराधी प्रियतम को खिन्न करनेवाली बतलाया है तथा अमरुक के निम्नलिखित छन्द को उदाहरण-स्वरूप यो लिखा है परित्यक्तव्रीडयन्त्रणावैदग्ध्यप्रायाः प्रगल्भाव्यवहारा वेदितव्या यथा —

(४)

'बाले' नाथ विमुञ्च मानिनि रुष रोषान्मया किं कृतम् ।
खेदो ऽस्मासु न मे पराध्यति भवान् सर्वे ऽपराधा मयि ॥
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा ? कस्याग्रतो रुद्यते ?
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥
— अमरुक — ५७

प्रियतम — 'बाले'
नायिका — 'नाथ !'
प्रियतम — 'हे मानिनि ! क्रोध छोड दो'
नायिका- 'क्रोध करके हमने क्या कर लिया ?'
प्रियतम — 'हमारे हृदय मे खेद उत्पन्न कर दिया'
नायिका — आपका तो कोई अपराध ही नही, सब अपराध मेरे ही है।

---

५ देव के छंद के सदृश ही कृपाराम का यह छंद प्राप्त हुआ है —
दोऊ ढिग है बाल इक आँखिन नाखि गुलाल ।
अक [illegible] लई, चूमि कपोलनि लाल ॥ पृ ८०

किसी 'दक्षिण' नायक की दो नायिकाए एक ही स्थान पर बैठी परस्पर विनोदालाप कर रही हैं। इतने मे कही से नायक आजाता है, पर दवे पाव। वह चुपके से उनके पीछे जाकर उनमे से बडी की (जेष्ठकी) आखे आखमिचौनी के बहाने मीच देता है। ज्येष्ठा ने समझा, नायक मुझी पर अधिक प्रीति रखता है, तभी तो छोटी की आखे न मीचकर मेरी ही आखे मीची। पर बात कुछ और ही थी। चतुर नायक थोडा झुककर बगल मे बैठी हुई छोटी कनिष्ठा का अनवरत चुम्बन करके पुलकित हो रहा है। नायक की यह लीला देखकर छोटी नायिका मन ही मन खूब प्रसन्न होती और हसती है।

अमरुक ने कैसा सुदर सजीव चित्र खीचा है। अब देखिए पद्माकर ने इसे किस प्रकार स्पष्ट कर खोल दिया है। —

दोऊ छबि छाजती छबीली मिलि आसन पैं
 जिनहि विलोकि रह्यो जात न जितै – जितै
कह 'पद्माकर' पिछौहें आइ आदर सों,
 छलिया छबीलो छैल बासर बितै बितै
मूदे तहा एक अलबेली के अनोखे दृग,
 सुदृग मिचाउनी के ख्यालन हितै – हितै;
नेसुक नवाइ ग्रीव धन्य – धन्य दूसरी को,
 औचक अचूक मुख चूमत चितै – चितै।

– पद्माकर छद ७४[1]

'पद्माकर का यह अनुवाद बहुत अच्छा नही हुआ है, क्योकि मूल के 'सपुलक प्रेमोल्लसन्मानसम्' तथा 'अतर्हासलसत्कपोल फलकाम्' आदि पदो के लिए कुछ भी नही लिखा गया है, फिर भी स्वतत्र रूप से छद को बुरा नही कहा जा सकता।'

कविवर 'देव' तथा 'भानु' ने भी ठीक इसी प्रकार का 'छल' अकित किया है। यथा —

'खेलत फागु खेलार खरे अनुराग भरे बडे भाग कन्हाई,
एक ही भौन में दोउन देखि कै 'देव' करी इक चातुरताई

---

१ पद्माकर की काव्यसाधना पृष्ठ–१७२–१७३

मे पद्माकरने जिस कवित्वका परिचय दिया है वह सर्वथा श्लाघ्य है। यह बात उपर्युक्त दिग्दर्शन से प्रत्यक्ष है। सस्कृत के मूलभाव को इन्होने कहीसे विकल या विकृत नही होने दिया है, बल्कि जहा कही कुछ कोर-कसर जान पडी, वहां अपनी ओर से कुछ सन्निवेशित कर उसे और चमका दिया है। इससे यह नही समझ लेना चाहिए कि पद्माकर अमरुकसे कोसो बढ आये है, जबर्दस्ती मजमून छीन लिया है। नही—अमरुक के शब्द और अमरुकके भाव अमरुक के ही है। हॉ यह अवश्य है कि उनके भावो को अपनाने मे पद्माकर न उनकी मौलिकता पर आच नही आने दी है। यद्यपि उन्होने अमरुक के पद्यो का अधिकाश स्थलोपर अविकल अनुवाद ही कर डाला है, फिर भी उनके अनुवादमे अनुवादकी गध नही। यही उनकी खूबी है और यही है उनकी मौलिकता

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्यं रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवभान्ति मधुमास इव द्रुमा ॥

× × × ×

'क्व प्रस्थिता ऽसि करभोरु ! घने निशीथे ?
प्राणाधिको वसति यत्र प्रियोजनो मे।
एकाकिनी वद कथन्न बिभेषि बाले ?
नन्वस्ति पुखितशरो मदनो सहाय।'

— अमरुक — ७१.

कौन है तू ? कित जात चली ? बलि बीति निसा अधराति प्रमानै
है ! 'पद्माकर' भावती है निज भावते पै अबही मोहि जानै।
तौ अलबेलि अकेली डरै किन, क्यों डरै ? मेरी सहाप्रय के लानै
है सखि सग मनोभव सों भट कान लौ बान सरासर तानै ॥

पद्माकर — छद. २३२.

पद्माकर का सवैया उक्त सस्कृत श्लोक का अक्षरश अनुवाद है। यद्यपि श्लोक वसततिलका जैसे छोटे छद मे होने के कारण कुछ अधिक गठित है। किंतु अनुवाद का सवैया जैसे अपेक्षाकृत विस्तृत छद मे होने के कारण, कवि को इच्छा न रहते हुए भी शब्द-सघटन कुछ बिखर सा गया है, फिर भी अनुवाद को बुरा नही कहा जा सकता। इसी सस्कृत श्लोक का अनुवाद दोहा छद मे भी हुआ है।

'घोर निसा कहँ जाति चल. जहॉ वसत मम नाथ।
निपट अकेली डर वा हिय मदन — महीपति साथ ॥*

---

* डॉ नगेन्द्र देव और उनकी कविता पृष्ठ २६०–२६३.

अपराध ही नही, सब अपराध मेरे ही है ।

प्रियतम – फिर गद्गद वचनो के साथ क्यो रो रही हो ?'

नायिका – मै किसके सामने रोरही हूँ ?

प्रियतम – 'यह देखो मेरे ही सामने ? '

नायिका – 'मै तुम्हारी कौन हूँ ? '

प्रियतम – 'तुम मेरी प्रियतमा हो '

'नायिका – 'प्रियतमाही नही हूँ इसी से तो रो रही हूँ ।

'ए बलि कहौ हौ कित ? का कहत कत ? अरी !
रोस तज ! रोस कै कियो मै का अचाहे को ?
कहै 'पद्माकर' यहै तौ दुख दूरि करौ ,
दोष न कछू है तुम्हे नेह निरवाहै को ।
तौ पै इत रोवति कहा हौ कहौ ? कौन आगे ?
मेरे ई जु आगे, किए आँसुन उमाहै को ,
को हौं मै तिहारी ? तू तो मेरी प्राणप्यारी
आजु होती जो पियारी तब रोती कहौ काहे को ?' [1]

– पद्माकर. छद – ६२.

उपर्युक्त उभय छदो मे सापराध नायक एव खडिता (मध्याधीराधीरा) नायिका का कथोपकथन है । अनुवाद मे कोई त्रुटि नही आने पाई है ।

'मान' और रोष के त्याग देने का अनुनय अमरुक की इन पक्तियो से देखिए –

'इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या
नयनजलमनल्पं मुक्त मुक्तं न किञ्चित् ॥

– अमरुक ३९

इस लेख मे पद्माकर के जितन पद्य उद्धृत है वे सभी उनके 'जगद्विनोद' 'से लिये गये है । उनके और किसी शृगार रसात्मक ग्रन्थ मे वहुत ढूढने पर भी कोई ऐसा पद्य नही मिला' जिसपर 'अमरुशतक' की झलक पडी हो। 'जगद्विनोद' उनका नायिका–भेद और रस विषयक लक्षणग्रन्थ है। अत प्राचीन सस्कृत आलकरिको के समान उन्होने भी अपने लक्षणग्रन्थ में उदाहरणके लिये अमरुक के पद्य पेश किये है । सच तो यह है कि अमरुक के पद्यो के सदृश सजीव उदाहरण और मिल कहाँ सकते थे ! पर अमरुक के भावो को अपनाने

---

१ - हिदी काव्य मे श्रृगार परपरा और महाकवि विहारी डॉ गणपतिचद्र गुप्त पृ. २५४

मुग्धा नायिका 'कैशिकी' के अग हैं । आत्मोपक्षेप तथा सभोगनर्म के द्वारा विरह की असह्यता एक ओर कर्तव्यकी निष्ठा के प्रति अमगल का वारण दूसरी ओर व्यक्त हो रहा है।

सस्कृत कवियो ने यौवनान्धा प्रगल्भा की कोपचेष्टाओ का काव्य मे वर्णन किया है । दशरूपककार धनजय ने 'धीरेतरा क्रुधा सतर्ज्य ताडयत्' लिखा है तथा अमरुशतक के इस श्लोक को उसके उदाहरण मे प्रस्तुत किया है –

> 'कोपात् कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्ध्वा दृढम्
> नीत्वा वासनिकेतन दयितया साय सखीना पुरः ।
> भूयो ऽप्येवमितिस्खलन् मृदुगिरा संसूच्य दुश्चेष्टितम्
> धन्यो हन्यत एव निन्हुतिपर प्रेयान् रुदत्या हसन् ।।'

अमरुक – ९

प्रियतमा अपनी कोमल और चचल बाहुलता रूपी पाश मे प्रियतम को दृढतापूर्वक बाँधकर निवासस्थान पर अपनी सखियो के सामने ले आई। अपनी कल मधुरवाणी मे जो कोप के कारण स्खलित हो रही थी उसकी दुश्चेष्टाओ को सकेत के द्वारा सूचित करते हुए अर्थात् उसके नखक्षत इत्यादि रतिचिन्हो की ओर हाथ से सकेत करते हुए सखियो से कहा कि देखो अब कभी ऐसा मत कहना कि यह अपराधी नहीं है । उस समय प्रियतमा रो रही थी और प्रियतम हँस हँस कर अपने अपराध को छिपाने की चेष्टा कर रहा था । उस समय प्रियतमा उसे मारने लगी । सचमुच इस प्रकार का सौभाग्य जिसे प्राप्त होता है–वह धन्य ही है ।

वक्ता कवि है । नायिका अधीरा प्रगल्भा है । नायक धृष्ट है । ईर्ष्या मानात्मक विप्रलभ सभोगश्रृंगार में परिणत है । चचलबाहुलता के कप तथा स्खलद्वचन से स्वरभग सात्विक भाव सूचित होता है। रुद्रट रचित 'श्रृगारतिलक' मे इस प्रकार का यह श्लोक मिलता है –

> 'कोपात किञ्चिदुपानतो ऽपि रभसादाकृष्य केशञ्वलं
> नीत्वा मोहनमन्दिर दयितया हारेण बद्ध्वा दृढ ।
> भूयो यास्यसि तद् गृहानिति मुहु · कर्णाद्धरुद्धाक्षर
> जल्पन्त्या श्रवणोत्पलेन सुकृती कश्चिद्रहस्ताड्यते ।।'

कवि पद्माकर ने प्रौढा अधीरा के उदाहरण मे उक्त आशय का

घोर निशा से रात्रि की भयानकता की प्रतीति होती है, और 'निपट अकेली' से नायिकाकी असहायावस्था एव भय की पुष्टि होती है। किंतु राजा का काम असहाय प्रजा की रक्षा करना है और मदन महीपति साथ में ही है, फिर भय के लिए कोई स्थान नही रह जाता। शब्द–सघटन एव भावोत्कृष्टता की दृष्टि से उक्त दोनो छंदो की अपेक्षा पाठको को शब्द–सघटन के कारण यह दोहा ही अधिक उत्तम प्रतीत होगा।

'प्रहरविरतौ मध्य वान्हस्ततो ऽपि परेण वा
किमुत सकले याते वान्हि प्रिय! त्वमिहैष्यसि।
इति दिनशतप्राप्यं देश प्रियस्य प्रियासतो
हरति गमन बालालापै सबाष्पगलज्जलै:

— अमरुक* १२

'सौ दिन को मारग तहाँ को बेगि मागी बिदा
प्यारी 'पद्माकर' परभात राति बीते पर,
सो सुन पियारी पिय गमन बराइबे को
आँसुन अन्हाइ बोली आसन सुतीते पर।
बालम बिदेस तुम जात हौ तो जाहु पर;
साँचि कहि जाउ कब ऐहौ भौन रीते पर;
पहर के भीतर के दो पहर भीतर ही
तीसरे पहर कैधौं साँझ ही बितीते पर॥

— पद्माकर छन्द–२५२

सस्कृत का यह श्लोक गच्छत्प्रवास विप्रलभ का उदाहरण है। दशरूपककार धनजय ने भी इसे उसी सन्दर्भ मे उद्धृत किया है। नायक अनुकूल तथा नायिका मुग्धा है। 'अश्रु' सात्विक भाव ह तथा 'दैन्य' सचारी भाव व्यक्त हो रहा है। पद्माकर का यह अनुवाद मूल से भी कही सुन्दर बन पडा है। सस्कृत छन्दके उत्तरार्ध को पूर्वार्ध मे लेकर 'भौने रीते पर' मध्य में कहते हुए पूर्वार्ध से छन्द की समाप्ति कर निश्चित ही दिनशतप्राप्य देश को जानेवाले अपने उन्मुख प्रिय को कुछ क्षणो तक तो सन्मुख कर विलम्बित कर लिया होगा। पहर, दोपहर, तीसरे पहर या साँझ शब्दो मे अवधि की मर्यादा को बडी व्याकुलतासे सूचित किया गया है। अनुकुल नायक तथा

---

* इस श्लोक के रचयिता 'सूक्तिमुक्तावली' और 'सुभाषितावली' में 'झलज्झलिका वासुदेव' तथा 'शार्ङ्गधरपद्धति' में 'गलज्जल वासुदेव' बताये गये है।

तत्वो की ओर सकेत किया है, सस्कृत श्लोक मे उसका कही पता भी नही है । इस दृष्टि से सस्कृत की अपेक्षा हिंदी का यह सवैया उत्कृष्ट होगया है । ऐसे छन्दो को अनुवाद कहना बहुत उचित नही है ।

कृष्ण की बाललीला लेकर कवियो ने कमाल दिखाये है। यहाँ पद्माकर ने भी 'व्रजचद,' 'गोविद,' और 'गोपाल' के नामस्मरण और स्तुति-पाठो के कलाम की निरर्थकता सिद्ध हो जाने पर कवि और चोर के समान शीलव्यसन का सबध स्थापित कर उन्हे छिपने के लिये अपने हृदय का कैसा सुन्दर स्थान बता रहे है [1] दुलारेलाल भार्गवने भी अपनी दुलारेदोहावली मे 'भिखारिन' कह कर 'मति तम तोम अपार' 'मन' के ठीकरे मे भगवानसे रूपज्योतिकण मागने की प्रार्थना की है। [2] वह दोहा है :-

'कवलै ले मत ठीकरो, खरी भिखारिन द्वार।
रूप ज्योति कन देहरो, मति तम तोम अपार ॥'

राजा भोज की गज दानशीलता तथा गजानन के सबध मे किसी कविका सस्कृतका एक श्लोक है -

'निजानपि गजान् भोज ददान प्रेक्ष्य पार्वती !
गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुन पुन ॥'

कवि पद्माकर का 'लाखिया' छन्द भी इसी आशयका है जिसे उन्होने सागरनरेश गजगजबख्श रघुनाथराव के दान की प्रशसा मे कहा था छन्द है -

'सपति सुमेर की कुबर की जु पावै ताहि
तुरत लुटावत विलब उर धारै ना,
कहै 'पद्माकर' सु हेम हय हाथिन के
हलके हजारन के बितर बिचारै ना,
गंज गज बकस महीप 'रघुनाथराव'
याहि गज धोखे कहूँ काहु देइ डारै ना;
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही
गिरि तै गरे तै निज गोद तै उतारै ना।'

प्रसग के अनुरूप उक्त सस्कृत श्लोक के भाव को उन्होने अपने कवित्त मे जिस कौशल से सम्मिलित कर दिया है वह प्रशसनीय है। साथ ही सस्कृतश्लोककार जिस भाव को 'रक्षत्यद्य पुन पुन' कहकर भी व्यक्त

---

१. माधुरी जुलाई सन् १९४६ लेख श्री रमेशचन्द्र अवस्थी पृष्ठ ६३४
२. माधुरी ज्येष्ठ ३११ तुलसी सवत्, पृ ५७३.

निम्नलिखित छद लिया है –

रोस करि पकरि परोस ते लियाई घरैं
पी को प्राणप्यारी भुजलतनि भरैं भरैं।
कहै 'पद्माकर' ए ऐसो दोष कीजै फेरि
सखिन समीप यो सुनावति खरैं खरैं।
प्यौ छल छपावै बात हँसि बहरावै, तिय
गदगद कठ दृग ऑसुन झरैं झरैं।
ऐसी धन्य धन्य, धनी धन्य है सु ऐसो जाहि
फूल की छरी सी सो खरी हनति हरैं हरैं॥

– पद्माकर : छद ६८

कवि पद्माकर के इस छद मे 'ए ऐसो दोप कीजै फेरि' शब्दो से नायक का दोप, जो लक्षण की दृष्टिसे सार्थक है, स्पष्ट लक्षित होता है। प्रत्युत ऐसे काम को समाज की दृष्टि से दोप भी बतलाया है। प्रिय के लिए 'प्यौ' शब्द का प्रयोग तो सात्विक भाव के आवेग में स्वरभग का सूचक है। उक्त उदाहरण मे दोप, रोप, तर्जन और ताडन सभी स्पष्ट हैं।

× × × ×

सस्कृत का एक पद्य ह –

क्षीरसारमपहृत्य शकया स्वीकृत यदि पलायन वया।
मानसे मम नितात तामसे नन्दनन्दन कथ न लीयसे॥'

कवि पद्माकर का भी इसी आशय का एक छद है –

'ए ब्रजचद गोविंद गोपाल सुनो किन केते कलाम किए मैं
त्यौं 'पद्माकर' आनंद के नद हौ नँदनदन जानि लिए मैं॥
माखन चोरि के खोरन व्है चले भाजि कछू भय मानि जिए मैं॥
दूरिहु दौरि दुरयो जो चहौ तो दुरौ किन मेरे अधेरे हिए मैं॥

हे कृष्ण तुम मक्खन चुराकर भय के कारण गलियो में, पकड जाने के भय से, छिपते फिर रहे हो? अच्छा, यदि तुमको कही दूर जाकर छिपना है, जहाँ से तुम्हे कोई ढूढ न सके, तो क्यो नही मेरे अधकार परिपूर्ण (अज्ञानाधकार भरित) हृदय–गव्हर मे आकर छिप रहते? यहाँ पर तुम्हे कोई पकड नही सकता। तुम ब्रजचद हो, अत मेरा हृदय प्रकाशमान हो जायगा। तुम गोविंद हो, अत तुम से मेरे हृदय की बात अज्ञात नही, वह कैसा है, इसे तुम भली भाँति जानते हो, तुम गोपाल हो, अत.मेरे हृदय का, जो एक गो (इन्द्रिय) है, परिपालन करोगे। ब्रजचद, गोविंद तथा गोपाल इन तीन सबोधनो द्वारा पद्माकर ने जिन सूक्ष्म

'चॉद सार लए मुख घटना करु, लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोय आँचरि धनि पोछलि, दह दिसि भेल अजोरे
— विद्यापति (बेनीपुरी) पद १४

यहाँ साज-शृगार को वर्णन का विषय वनाये विना ही विद्यापति ने नायिका के अनुपम एव सहज सौदर्य का उल्लेख किया है। उनके उनुसार चन्द्रमा का सार-भाग लेकर विधाता ने नायिका राधा के मुख की रचना की। इस अनुपम रूप को देखनेवाले नेत्र इसकी ओर चकोरवत् आकृष्ट हो जाते है। चकोर चन्द्रमा को अपलक देखता रहता है। उसे भी अपलक देखते रहने का अभिलाष जागता है, नेत्रो मे। इसने अपने मुख-चन्द्र को ऑचल से पोछकर जो अमृत धो-बहाया वही चॉदनी के रूप मे दसो दिशाओ को उजागर कर रहा है। ऐसी सुन्दरी की रचना किसने की? इसका अनुपम सौदर्य अवर्णनीय है।

ललित :— नायिका के सरस अगो की छवि के साथ जहाँ उसकी विशिष्ट गमन और चितवन का उल्लेख होता है, कवि-जन उसे 'ललित' हाव का वर्णन कहते है —

'जहँ अगन को छवि सरस बरनत चलन चितौन।
ललित हाव ताको कहत. जे कवि कविता-भौन ॥'
—पद्माकर कृत जगद्विनोद, ४४४

देखल कमल मुखि बरनि न जाइ,
मन मोर हरलक मदन जगाइ।
तनु सुकुमार पयोधर गोरा,
कनक लता जनि सिरिफल जोरा ॥
—विद्यापति (ब्रजनन्दन सहाय) पृ ३० ३१

यहाँ नायिका की गति चितवन और अग छवि के मोहक और मदनोत्तेजक होने का जिक्र तो है ही, इससे बढकर बात यह है कि उसकी गति चितवन और अग छवि पर रसिक का मन हर लिया जाता है।

मोट्टाइत — दयित या भावते का नाम सुनने पर जहाँ भावोदय दृग्गत होता है, कवि गण उसे 'मोट्टाइत हाव' गिनते है —

'सुनत भावते की कथा, भाव प्रगट जहाँ होत।
मोट्टाइत तासो कहै. हाव कविन के गोत ॥
— पद्माकर कृत जगद्विनोद, ४४७

उक्त लक्षण डॉ वरिन्द्रिकुमार वडग्त्रालाने श्रीरामरत्न पुस्तकभवन से वसन्तपचमी सवत १९०१ में पद्माकर-पंचामृत के प्रकाशित जगद्विनोद से लिये हैं।

करने मे असमर्थ रहा. उसे उन्होने 'गिरि तै, गरे तै, निज गोद तै उतारै ना' कहकर इतना चमका दिया है कि उनकी कला-कुशला लेखनी को बरबस चूम लेने की इच्छा होती है।

उक्त आशय का ऐसाही कवित्त बुन्देलखडकेसरी महाराज छत्रसाल का रचित है, जिसमे उन्होने श्री राम-जन्म के बधावनेके समय महाराज दशरथराज द्वारा किये गये गजदानका वर्णन किया है और गज के भ्रमवश गणेशको गिरिजा द्वारा छिपा लेनेकी बात कही है। परतु पद्माकर के इस छन्द की ऐतिहासिक छटा दर्शनीय है। *

पद्माकर तथा विद्यापति

विद्यापति हिंदी के श्रेष्ठ श्रृगारी भक्त कवि है और निस्सन्देह सर्व प्रथम रीति-कवि है। वस्तुत ये श्रृगार के उसी अखड परम्परा के कवि थे, जिसमें आगे चलकर बिहारीलाल, पद्माकर आदि श्रृगारी कवि दिखाई देते है।

लीला – नायक अपनी प्रिया के और नायिका अपने प्रिय के वस्त्राभूषण आदिको जब धारण करते है तब कवि लोग उनमें जिस चेष्टा का बखान करते है, उसे 'लीला हाव' कहते है –

'प्रिय तिय को तिय पीव को, धरे जु भीषन चीर।
लीला हाव बखानही, ताही को कवि धीर॥

–पद्माकर कृत जगद्विनोद, ४२७

चतुर नागर कृष्ण ने नागरिका का जो मुग्धकर वेष विन्यास किया वह सचमुच चमत्कृत करनेवाला है –

'वर नागर साजइ नागरि बेसा।
मुकुट उतारि सीमंत संवारल
बेनी विरचित केसा॥

– विद्यापति (बेनीपुरी) पद–१६३

विच्छित्ति .– अत्यल्प साज-श्रृगार से ही जिस नायिका में महा-छवि के दर्शन होते हो, वहाँ कवि-जन 'विच्छित्ति' हाव बखान करते है :–

'तनक सिगार में जहाँ, तरुनि महाछबि देत।
सोई विच्छित्ति हाव को, बरनत बद्धि–निकेत॥

– पद्माकर कृत जगद्विनोद, ४३५

* देखिए 'छत्रसाल-छन्द अत्रैव पृष्ठ – १७७
अत्रैव पृष्ठ ५३ से ५५ तक

हटाकर अपने चरणो मे लगाया—नीचे की ओर देखने लगी। परतु जैसे मधु-पान से मत्त मधुकर उड नही पाता, तो भी उडने की चेष्टा मे पख पसार देता है वैसेही मेरे नेत्र पुन. पुन दयित के मुख की ओर उठने लगे। लज्जानम्रा एव पुनरपि दयित-मुख-छवि पानोत्कण्ठा दृष्टि का यह कैसा मनोरम चित्र है।

कुट्टमित :— दयित के द्वारा तनमर्दित होने पर जब नायिका कृत्रिम रोष को प्रदर्शित करे अपना अघर, उरोज, केश आदि के गृहीत होने पर बाहर प्रकट मे रूक्षता का भाव धारण करे और अन्तर मे सुख पावे वहाँ सुकविलोग 'कुट्टमित हाव' कहते है —

'तन मर्दत पिय के तिया, दरसावत झुठ रोष।
याहि 'कुट्टमित' कहत है, भाव सुकवि निर्दोष॥

—पद्माकर कृत जगद्विनोद, ४५६

'जतने आएलि धनि सयनक सीम
पांगुर लिखि खितिनत रहु गीम,
सखि हे पिया पास बैठलि राहि
कुटिल भौंह फरि हेरइछि काहि।

— विद्यापति (बेनीपुरी), पद ७८

यहाँ सखी के शब्दो मे नायिका का नायक से प्रथम मिलन का दृश्य अकित है। अनेक प्रयत्नो के वाद शैया के समीप नायिका पहुँची। वहाँ भी सिर झुकाए पैर की अगुलियो से धरती को कुरेदती खडी रही। फिर राधा प्रिय के समीप बैठ गई लेकिन न जाने कैसी कुटिल भौहो से देखने लगी ? कृत्रिम रोष को प्रगट करने लगी।

× × ×

'ए अलि या बलि के अधरान में आनि चढी कछु माधुरईसी।
ज्यौं 'पद्माकर' माधुरी त्यो कुच दोउन की चढती उनई सी
ज्यों कुच त्योही नितब चढे कछु ज्योही नितब त्यो चातुरई सी।
जानि न ऐसी चढा चढि मे केहि धौं कटि बीचहि लूट लई सी॥

शैशव पर यौवनराज ने चढाई की. जिसमे यौवन की विजय हुई। विजयी सेना द्वारा ऐसे अवसर पर किसी पदार्थ का लुट जाना कोई अस्वा-भाविक बात नही। विद्यापतिने भी वय सन्धि के अवसरपर इसी प्रकाराक यद्ध कराया है ·

'सैसव जोबन दरसन भेल
दुहु दल-बले दंद परिगेल।'

कि कहव माधव पुन फल तोर,
तोहर मुरलि रव राइ विभोर।
ते पुन सुनल नाम तोहार,
से सब भाव हम कहहि न पार ॥

– विद्यापति (ब्रजनन्दनसहाय) पृष्ठ ११६

सखी रूप से विद्यापति ने यहाँ कहा है कि हे माधव ! तुम बडे सौभाग्यशाली हो कि तुम्हारे मुरली–रव को सुनकर राधा विभोर हो उठती है और तुम्हारा नाम-श्रवण करतेही उसके हृदयमे जिन भावो का उदय होता है उन्हे हम शब्दो मे नही बाध सकते है । उसके अग स्वाधीन नही रहते, कम्प और अबोधता छा जाते है । वह मूर्छित–सी हो रहती है । उसकी रीति समझ से परे है। भला क्या है इसकी प्रतीति भी उसे नही रहती। सभवत वह अब कल तुम्हारे पास आवेगी । अन्त मे विद्यापति ने सखी का अनुमोदन किया कि यहाँ आनेसे ही उसका काम सरेगा।

विहित :– दयित से भेट होने पर भी जब नायिका लज्जावश उसके सामने अपने हृदय को खोल कर न रख सके तो कविजन उसे 'विहित' हाव कहते है –

'लाजनि बोलि सकै नहीं, पियहि मिले हूँ नारि।
विहृत हाव ता सो सबै कविजन कहत विचारि ।।

– पद्माकर कृत जगद्विनोद, ४५३

सात्विक भाव स्वेद, रोमाच, कम्पादि के साथ विहित हाव का विद्यापति कृत भाव-चित्र इस प्रकार है –

'अवनत आनन कए हम रहलिहुँ
वारल लोचन चोर ।
पिया मुख-रुचि पिबए धाओल
जनि से चाद चकोर ॥

– विद्यापति (वेनीपुरी), पद ३८

विद्यापति की नायिका ने यहाँ सखी से निवेदन किया है कि हे सखि ! श्यामसुन्दर से भेंट होने पर लज्जावश मुँह नीचे ही किए रही अपने नेत्र रूपी चोरो को उधर जाने से वारित किया, लेकिन दयित-मुख-शोभा का पान करने के लिये वे उसी प्रकार दौड पडे जिस प्रकार चकोर अधीर होकर चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाता है । प्रिय मुख की ओर से अपने नेत्रो को मैने बलात्

सम सम्मिश्रण है- दोनो ही सम भाव से सजीव एव मूर्तिमान हो उठे है। उनके राधामाधव के द्वैत भाव के नाश तथा अद्वैत सबध के विकास को-दो शरीर एक प्राण के समवाय मे देखा जा सकता है। कवि पद्माकर का ऐसा ही एक सवैया छद और है –

'दोउन को सुधि है न कछू बुधि वाही बलाय मे बूडि वही है।
त्यौं 'पद्माकर' दीन मिलाय क्यो चग चाइन की उमही है॥
आजु हि की वा दिखादिख मे दसा दोऊन की नहि जात कही है।
मोहन मोहि रह्यो कबको कब की वह मोहिनो मोहि रही है॥'

× × × ×

'प्रानन के प्यारे तनताप के हरन हारे
नंद के दुलारे ब्रजवारे उमहत है।
कहै 'पद्माकर' उरूझे उर अतर यो
अतर चहे हूँ ते न अन्तर चहत है।
नैनन बसे है, अग अग हुलसे है
रोम रोमनि रसे है, निकसे है को कहत है?
ऊधो वे गोविद कोऊ और मथुरा में यहाँ
मेरे तो गोविद माहि मोहि में रहत है।'

प्रेम और विरह की वह अवस्था, जिसमे प्राणी अपने और अपने प्रेमी के अतर को भूल कर न केवल अपने ही रोम रोम में वरन् सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ मे अपने ही प्रेम पात्र की मनोहर मूर्ति का दर्शन करता है और उसी मे तन्मय हो जाता है, बडी ही तृप्तिकर होती है। उस समय विरह अथवा प्रेम तृष्णा की अनन्त ज्वाला से शाति का एक ऐसा सुधा–स्रोत उत्पन्न होता है, जिसमे अवगाहन कर अन्तर्देवता का प्राण शीतल और अनन्त आनद मे निमग्न हो जाता है। यही समाधि है यही ब्रह्मानन्द है। उपर्युक्त छन्द मे पद्माकरने राधाकी इसी अवस्था का वर्णन किया है। वर्णन में जैसी उनकी तल्लीनता दिखाई गई है, परमात्मा करे वह प्रत्येक विरही प्राणी को प्राप्त हो। पद्माकर के इस भाव-चित्र से अनेक कवियो की कल्पना का सादृश्य पाया जाता है –

'जो न जी में प्रेम तब कीजै व्रत नेम
जब कज मुख भूलै तब संजम बिसेखिए।
आस नहीं पी की तब आसन बाँधियत
साँसन कै सासन को मूदि पति पेखिए॥

'ये इस घूघट घालि चलै उत बाजत बॉसुरी की धुनि खोलै
ज्यो 'पद्माकर' ये इते गोरस लै निकसै यो चुकावत मोलै ॥
प्रेम को पथ सुप्रीति के पैठ में पैठत ही है दसा यह जोलै ॥
राधामयी भयी स्याम की मूरति स्याममयी भयी राधिका डोलै ॥

विद्यापति का चित्र भी कुछ ऐसा ही हुआ है –

'पथ गति नयन मिलल राधा कान
दुहु मन मनसिज पुरल सँधान ।
दुहुँ मुख हेरइत दुहुँ भेल भोर.
समय न बुझए अचतुर चोर
विदगधि सगिनि सब रस जान, ।
कुटिल नयन कएलन्हि समधान ।
चलल राज-पथ दुहुँ उरझाइ,
कह कवि सेखर दुहुँ चतुराइ । '

विद्यापति तथा पद्म कर दोनो ही ने प्राय एक ही अवस्था का चित्र अकित किया है । किंतु विद्यापति की अपेक्षा पद्माकर के चित्र मे प्रसाद तल्लीनता एव विदग्धता कही अधिक पाई जाती है । मैथिल-कवि-कोकिल का यह चित्र उनके चित्र के सम्मुख फीका पड गया है । इसकी अपेक्षा देव जी का चित्रकही उत्तम बन पडा है –

रीझि-रीझि रहसिरहसि–हँसि–हँसि उठै
आँखे भरि आँसू नित कहत दई दई ।
चौंकि-चौंकि चकि-चकि उचकि-उचकि 'देव'
जकि-जकि बकि-बकि परत बई बई ॥
दुहुँन को रूप गुण दोऊ बरनत फिरै
घर न थिरात रीति नेह की नई नई
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय
राधा मन मोहि-मोहि मोहन मई मई ॥ '

पद्माकर की राधा की लज्जा भारतीय आदर्शके अनुरूप है, साथ ही, देव की राधा की प्रेमज्वाला की अपेक्षा उनकी प्रेमज्वाला भी कम नही है । इसके अतिरिक्त पद्माकर के काव्य में उभय पक्ष के सम प्रेम तथा सम व्यवहार का चित्रण हुआ है, जो सर्वथा स्वाभाविक है, किन्तु देव के काव्य में राधा की व्याकुलता, जिस मात्रा में प्रदर्शित की गई है कृष्ण की वैसी नही । पद्माकरके इस काव्य–चित्र मे आध्यात्मिक एव आधिभौतिक भावो का

A two fold existence
I am where thouart,
My heart in the distance
Beats close to thy heart
Look up, I am near thee
I gaze on thy face
I see thee, I hear thee
I feel thine embrace

– Lord Lytton

पृथक् रहते हुए भी मैं तुम्हारे साथ हूँ, दूर रहने परभी तुम्हारे साथ हूँ दूर रहने पर भी मेरा हृदय तुम्हारे ही हृदय के साथ है। देखो, मैं तुम्हारे निकट हूँ, तुम्हारे मुखमडल को देखता हूँ, तुम्हे–देखता हूँ, तुम्हे सुनता हूँ, और तुम्हारे आलिगन का अनुभव करता हूँ।

Here lies the body of Ellen Adair
And here the heart of Edward Gray

– Tennyson.

उक्त सभी काव्यो मे प्रेमी और प्रेमिका के ऐक्य सबध को प्रदर्शित किया गया है। देव का काव्य संयत और तर्कयुक्त हुआ है, मतिराम के काव्य मे तर्क की अपेक्षा प्रेम का आधिक्य है। रवीद्रनाथ की पक्तियो मे प्रेम की तल्लीनता और आध्यात्मिकता का आवेश है, लार्ड लिटन के छन्दो मे भावानुभूति की तीव्रता है और टेनिसन के वृत्तार्व में लुटे हुए प्रेमी हृदय की समाधि। किन्तु पद्माकर के काव्ये मे जैसी तीव्र सवेदना, तन्मयता या भावलीनता पायी जाता है वह उक्त किसी काव्य मे नही है।

'काव्य के अनेक प्रतिमान होते है, जो विभिन्न युगो मे तथा विभिन्न पाठक-समूहो के बीच बदलते रहते है, परन्तु पद्माकर की लोकप्रियता और उनके कवित्तो की सहज स्मरणीयता आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है।'

–आचार्य प. नन्ददुलारे वाजपेयी

नख तें सिखा लौं जब प्रेममयी वाम भई
 बाहिर लौं भीतर न दूजो 'देव' देखिए।
जोग करि मिलै जो वियोग होय बालम जू
 ह्यां न हरि होय तब ध्यान धरि देखिए॥

– देव

'निसिदिन स्रोनन पियूष सो पियत रहै
 छाय रह्यो नाद बाँसुरी के सुर ग्राम को,
तरनि-तनूजा-तीर, बन कुज, बीथिन में
 जहाँ-तहाँ देखियत रूप छबि धाम को।
कवि 'मतिराम' होत हाँ तो ना हिए तें नेक
 सुख प्रेम गात को परसि अभिराम को,
ऊधौ तुम कहत विजोग तजि जोग करौ
 जोग तब करैं जो विजोग होय स्याम को।'

मतिराम

" My beloved is ever in my heart,
That is why I see him everywhere,
He is in the pupils of my eyes
That is why I see him every where,
I went for away to hear his own words,
But, ah, it was Vain !
When I came back I heard them
In my own Songs
Who are you to see him like a beggar
 from door to door ?
Come to my heart and see his face
 in tears of my eyes "

– Ravindranath Tagore

मेरे प्रियतम सर्वदा मेरे हृदय मे निवास करते है, इसी से मै उन्हे सर्वत्र देखता हूँ। वे मेरे आँखो की पुतलियो मे रहते है, इसी से मैं उन्हे सर्वत्र देखता हूँ। मैं दूर देश में उनकी वाणी सुनने के लिये गया। परतु, आह, वह व्यर्थ ही था। जब मै लौट कर आया तो अपने ही सगीत मे मैने उसे सुना, तुम कौन हो जो उन्हे भिखारी की भाँति घर घर ढूँढ रहे हो ? आओ, मेरे आँसुओ मे उनकी मधुर मूर्ति का दर्शन करो।

पद्माकर तथा केशव

'जगद्विनोद' तथा 'पद्माभरण' रचनाये पद्माकर को हिन्दी के आचार्य कोटि मे लाती हैं। रीतिकाल मे विहारी के बाद सबसे अधिक लोक प्रियता का श्रेय इन्हीको है।

पद्माकर ने जगद्विनोद नामक ग्रथ मे केशवकी रसिकप्रिया के समान ही शृगाररसान्तर्गत नायिका-भेद तथा विभिन्न रसो का वर्णन किया है, तथा केशव के ही समान इस ग्रन्थ मे प्रमुख रूप से शृगार रस का वर्णन है। अन्य रसो का वर्णन बहुत ही सक्षेप मे किया गया है। नायिका भेद के अन्त-र्गत स्वकीया, परकीया तथा गणिका अथवा सामान्याका उल्लेख दोनोही आचार्योने किया है, किन्तु केशवने गणिका का वणन नही किया है। स्वकीया के भेदो मुग्धा, मध्या और प्रौढा का दोनोही आचार्यो ने वर्णन किया है किन्तु उपभेदो मे अन्तर है। पद्माकर ने मुग्धा नायिका के ज्ञात और अज्ञात यौवना तथा नवोढा और विश्रव्ध नवोढा आदि भेद बतलाये हैं। मध्या के भेद पद्माकर ने नही दिये हैं। इनके अनुसार प्रौढा के दो भेद हैं, रतिप्रीता और आनदसम्मोहिता। केशव ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढा आदि प्रत्येक भेद के चार चार उपभेदो का वर्णन किया है। मध्या तथा प्राढा के धीरा अधीरा तथा धीराधीरा भेदो का वर्णन दोनो आचार्यो ने किया है। स्वकीया के जेष्ठा कनिष्ठा भेदो का केशव ने उल्लेख नही किया है।

'परकीया' नायिका के ऊढा और अनूढा भेदो का वर्णन दोनो आचार्यो ने किया है। पद्माकर ने 'परकीया' के गुप्ता, विदग्धा, कुलटा, मुदिता और अनुशयना आदि छ भेदो का भी वर्णन किया है। पद्माकर के अनुसार 'गुप्ता' तीन प्रकार की होती है। भूत-सुरति-सगोपना, वर्तमान रतिगोपना तथा भविष्यरतिगोपना। विदग्धा के दो उपभेद है, वचन-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा, तथा अनुशयना के तीन भेद है:- प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अनुशयना। केशव ने इन भेदो और उपभेदो का कोई उल्लेख नही किया है।

पद्माकर के अनुसार उक्त सब नायिकाये तीन प्रकार की हो सकती है- अन्यसुरतिदुखिता, मानवती तथा वक्रोक्ति-गर्विता और फिर गर्विता के भी दो उपभेद प्रेमगर्विता और रूपगर्विता बतलाये गये है। केशव ने इन भेदो का वर्णन नही किया है। स्थिति के अनुसार पद्माकर ने मतिराम के ही समान दस प्रकार की नायिकाये मानी है। केशव ने इनके

केशव तथा पद्माकर

पद्माकर (सवत १८१०–१८९० वि) भी आचार्य केशव से पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित है। 'जगद्विनोद' मे प्राप्त भाव-साम्य के उदाहरणो के लिए केशव के 'किलकिंचित' हाव को ही ले लीजिए -

'श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हर्ष भय भाव।
उपजत एकही बार जहँ, तहँ किलकिंचित हाव ॥

रसिक प्रिया, छठवाँ प्रभाव छन्द ३९

'पद्माकर' ने उक्त छदसे ही प्रभावित होकर अपने किलकिंचित का लक्षण इस प्रकार व्यक्त किया है .–

'होत जहाँ इक बारही त्रास हास रस रोष।
तासो किलकिंचित कहत हाव सबै निर्दोष ॥

जगद्विनोद छन्द ४४१

एक अन्य स्थलपर आचार्य केशवने 'अनुकूल' नायक का जो लक्षण दिया है वही पद्माकरने दिया है :-

'जो परवनिता ते विमुख सोऽनुकल सुखदानि।'[1]

जगद्विनोद छन्द २८६

स्वकीया का लक्षण दोनोही आचार्योने समान रूप से प्रस्तुत किया है। आचार्य केशव का कथन है –

सपत्ति विपति जो मरत हु, सदा एक अनुहारि।
ताहि स्वकीया जानिए, मन क्रम वचन विचारि ॥'

रसिक प्रिया तृतीय भाव, छन्द १५

पद्माकरके लक्षणका भी यही भाव है –
निज पति ही के प्रेममय, जाको मन वच काय।
कहत स्वकीया ताहि सो, लज्जा शील स्वभाव ॥

– जगद्विनोद छन्द - १७

---

१. मिलाइये ' रसिकप्रिया - द्वितीय प्रभाव छन्द. ३

पद्माकर ने 'अनुभाव' के अन्तर्गत सात्विक भाव, हाव तथा सचारी भावो का वर्णन किया है। प्रसिद्ध आठ सात्विक भावो के अतिरिक्त इन्होने 'जृभा' नवे सात्विक का उल्लेख मतिराम तथा देव के समान केशव से अधिक किया है। पद्माकर ने इनके लक्षण और उदाहरण भी दिये है, किन्तु केशव ने लक्षण अथवा उदाहरण नही दिये। हावो के अन्तर्गत केशव ने 'मद' का उल्लेख पद्माकर से अधिक किया है अन्यथा शेष हावो का वर्णन दोनो आचार्यो के ग्रथो, 'जगद्विनोद' तथा 'रसिकप्रिया' मे समान है। सचारी भावो मे केशव द्वारा उल्लिखित 'निंदा' तथा 'विवाद' के स्थान पर पद्माकर ने 'असूया' तथा 'अवहित्था' सचारी भावो का उल्लेख किया है। शेष ३१ सचारी दोनो आचार्यो के एक ही है।

श्रृगार रस के दो भेद सयोग और वियोग दोनो ही आचार्यो को मान्य है। पद्माकर ने वियोग श्रृगार के तीन भेदो पूर्वानुराग, मान और प्रवास का वर्णन किया है, केशव चौथा भेद 'करुण' मानते है। 'मान' के भेदो लघु, मध्यम और गुरु का पद्माकर तथा केशव दोनो ही आचार्यो ने वर्णन किया है किन्तु केशव के बतलाये हुये मान–मोचन के छ उपायो का पद्माकर ने वर्णन नही किया है। पद्माकर के बतलाये हुये 'प्रवास' के भेदो 'भविष्य' तथा 'भूत' को केशव ने छोड दिया है। विरह की दश दशाओ का वर्णन दोनो ही आचार्यो ने किया है। अभिलाषा, गुणकथन, उद्वेग तथा प्रलाप का पद्माकर ने प्रत्यक्ष वर्णन किया है और शेष छ के विषय मे कहा है कि चिता आदि विरह की छः दशाओ का वर्णन सचारी भावो के अन्तर्गत किया जा चुका है।[1]

विभिन्न रसो का वर्णन करते हुये केशव ने साधारणतया प्रत्येक रस का लक्षण सक्षेप मे दे दिया है। पद्माकर ने प्रत्येक रस का लक्षण देते हुये उसके स्थायी भाव, आलवन, उद्दीपन, हाव, भाव, अनुभाव, सचारी भाव तथा रस विशेष के रग और देवता का विस्तार–पूर्वक वर्णन किया है। केशव ने हास्य रस के चार भेद मदहास, कलहास, अतिहास और परिहास वतलाये है, पद्माकर ने इन भेदो का उल्लेख नही किया है। दूसरी ओर पद्माकर के वीर रस के भेदो युद्धवीर, दयावीर, दानवीर, तथा धर्मवीर का केशव की 'रसिकप्रिया' मे कोई उल्लेख नही है।

---

१ 'इक वियोग शृगार में, दसी अवस्था थाप।
अभिलापा गुनकथन पुनि, पुनि उद्वेग प्रलाप ॥ ६४५ ॥
चितादिक जे षट कहीं, विरह अवस्था जानि।
संचारी भावन विषै हौं आयहु जो बखानि' ॥ ६४६ ॥
जगद्विनोद, पृ० स० १२१।

आठ ही भेद माने है और पद्माकर की 'प्रवत्स्यतप्रेयसी' तथा 'आगतपतिका' नायिकाओ का कोई उल्लेख नही किया है। पद्माकर ने स्वकीया, परकीया तथा गणिका के भेदो मुग्धा, मध्या व प्रौढा के अन्तर्गत इन आठो प्रकार की नायिकाओ के उदाहरण प्रस्तुत किये है। केशव ने केवल अभिसारिका भेद के अन्तर्गत स्वकीया, परकीया तथा सामान्या नायिका के अभिसार का लक्षण दिया है और प्रेमाभिसारिका, कामाभिसारिका तथा गर्वाभिसारिका के उदाहरण प्रस्तुत किये है। पद्माकर ने इन भेदो का कोई उल्लेख नही किया है। उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिकाओ के भेदो का वर्णन दोनो ही आचार्यो ने किया है। केशव के कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रथो के आधार पर दिये गये भेदो पद्मिनी, चित्रिणी, शखिनी, हस्तिनी तथा नायक-नायिका के प्रथम मिलन-स्थानो का वर्णन पद्माकर ने नही किया है।

केशव ने नायक के चार भेदो का ही वर्णन किया है यथा अनुकूल दक्षिण, धृष्ट तथा शठ। पद्माकर ने इन भेदो का भी वर्णन किया है और इनके अतिरिक्त अन्य दृष्टिकोणो से भी नायको के विभिन्न भेदो का उल्लेख किया है यथा पति, उपपति तथा वैसिक अथवा मानी, वचन-चतुर तथा क्रिया-चतुर। इन व्यापक भेदो के अतिरिक्त पद्माकर ने प्रोषित और अनभिज्ञ नायको का भी वर्णन किया है और प्रोषितनायक के पति, उपपति तथा वैसिक के अन्तर्गत उदाहरण प्रस्तुत किये है। नायक-नायिका के प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न तथा प्रत्यक्ष दर्शनो का दोनो ही आचार्यो ने वर्णन किया है।

शृगार रस के उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत पद्माकर ने नायक के सखा, नायक-नायिका की सखी, दूती आदि का वर्णन किया है। पद्माकर ने सखा के चार भेद माने है पीठमर्द, विट, चेट तथा विदूषक। केशव ने सखाओ का वर्णन नही किया है। पद्माकर ने सखी के भेदो का उल्लेख नही किया है। केशव ने सखी के अन्तर्गत परोसिन, मनिहारिन, शिल्पकारिन अदि का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। सखी के कार्यो मे पद्माकर ने मडन, शिक्षा, उपालभ तथा परिहास का वर्णन किया है। केशव ने 'परिहास' को छोड दिया है और विनय, मनाना और झुकाना, सखी के यह तीन अन्य काम बतलाये है। पद्माकर ने उत्तमा, मध्यमा और अधमा, तीन प्रकार की दूतियाँ बतलाई है और विरहनिवेदन तथा सघटन उनके कार्य बतलाये है। इसके अतिरिक्त उन्होने नायिका के स्वयदूतीत्व का भी वर्णन किया है। केशव ने स्वयदूतीत्व का वर्णन तो किया है किन्तु दूती तथा उसके कार्यो का वर्णन नही किया है।

पद्माकर के अनुसार 'दक्षिण' नायक वह है जो

'जु बहु तियन को सुखद सम, सो दक्षिन गुनखानि' ॥[६]

केशव के 'विच्छत्ति' हाव का लक्षण है

भूषण भूषब को जहाँ, होहि अनादर आनि।
सो विच्छित्त विचारिये, केशवदास सुजान' ॥[७]

पद्माकर के अनुसार 'विच्छित्ति' का लक्षण है :

तनक सिगारहि में जहाँ, तरुनि महा छवि देत।
सोई विच्छिति हाव को, बरनत बुद्धि निकेत' ॥[८]

पद्माकर का प्रत्येक लक्षण स्पष्ट है किन्तु केशव के श्रृंगार रस, विभाव, हाव आदि के लक्षण अस्पष्ट है। केशव के द्वारा दिये लक्षण क्रमश निम्न-लिखित हैं।

श्रृगार रस

'रति मति की अति चातुरी, रतिपति मंत्र विचार।
ताही सो सब कहत है, कवि कोविद श्रृगार' ॥[१]

विभाव

'जिनते जगत अनेक रस, प्रकट होत अनयास।
तिनसों विमति विभाव कहि, वर्णत केशवदास' ॥[२]

हाव

'प्रेम राधिका कृष्ण को, है ताते श्रृगार।
ताके भाव प्रभाव ते, उपजत हाव विचार' ॥[३]

इस प्रकार लक्षणो के व्यवहारिक ज्ञान के लिये 'रसिकप्रिया' की अपेक्षा 'जगद्विनोद' ग्रन्थ अधिक महत्वपूर्ण है। मौलिकता की दृष्टि से केशव का स्थान पद्माकर से उँचा है। पद्माकर के 'जगद्विनोद' मे इस विषय के सस्कृत लक्षण-ग्रन्थो से अधिक कोई विशेषता नही है। केशव के श्रृगार रस आदि के 'प्रच्छन्न,' 'प्रकाश' भेद, जाति के अनुसार नायिकाओ का विभाजन, अगम्या-वर्णन, नायिकाओ की चेष्टा, नायक-नायिका के प्रथम मिलन-स्थानो तथा सखी भेद वर्णन आदि केशव की मौलिकता के परिचायक है।

६. जगद्विनोद, छ० स० २८६, पृ० सं० ५६।
७. रसिकप्रिया, छं० सं० ४५, पृ० स० ११०।
८. जगद्विनोद, छ० स० ४३७, पृ० स० ८३।
१. रसिकप्रिया छ० स० १७. पृ० सं० १२।
२. रसिकप्रिया, छं० सं० ३, पृ० सं ९०।
३. रसिकप्रिया छ० स० १५, पृ० सं० ९५।

पद्माकर तथा केशव दोनो आचार्यों के विभिन्न लक्षणो मे यद्यपि किंचित् अतर है किन्तु अधिकाश लक्षणो का भाव एक ही है। कुछ लक्षण अवश्य ऐसे है जो दोनो आचार्यों के भिन्न है। जिन लक्षणो का भाव प्राय समान है, उनमे से कुछ यहाँ प्रस्तुत किये जाते है। केशव की स्वकीया नायिका का लक्षण है

'सम्पति विपति जो मरण हू, सदा एक अनुहार
ताको स्वकीया जानिये, मन क्रम वचन विचार'[२]

पद्माकर के अनुसार 'स्वकीया वह है जो

'निज पति ही के प्रेममय, जाको मन बच काय।
कहत स्वकीया ताहि सौं, लज्जासील सुभाय'॥[३]

केशव का 'अनुकूल' नायक वह है जो

'प्रीति करै निज नारि सों, परनारी प्रतिकूल।
केशव मन वच कर्म करि, सो कहिये अनुकूल'॥[१]

पद्माकर के 'अनुकूल' नायक का लक्षण है.

'जो पर-बनिता तैं विमुख, सोऽनुकूल सुखदानि'।[२]

केशव का लक्षण पद्माकर की अपेक्षा अधिक विशिष्ट है। केशव के 'किलकिंचित' हाव का लक्षण है

'श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हर्षमय भाव।
उपजत एकहि बार जह किलकिंचित हाव'॥[३]

पद्माकर के लक्षण का भी यही भाव है·

'होत जहाँ इक बारही, त्रास हास रस रोष।
तासों किलकिंचित कहत, हाव सवै निर्दोष' ॥[४]

दोनो आचार्यों के कुछ लक्षण भिन्न है, उदाहरणस्वरूप केशव के अनुसार 'दक्षिण' नायक वह है जो

'पहिली सो हिय हेतु डर, सहज बढाई कानि।
चित्त चलैहुँ ना चलै, दक्षिण लक्षण जानि'॥[५]

---

२. रसिकप्रिया, छ० स० १५, पृ० स ३४।
३ जगद्विनोद, छ० स० १७, पृ० स० ४।
१. रसिकप्रिया, छ० स० ३, पृ० म० २१॥
२. जगद्विनोद, छ० स० १८६, पृ० स० ५६।
३. रसिकप्रिया, छं० सं० ३९, पृ० स० १०५।
४. जगद्विनोद, छ० सं० ४४१, पृ० स० ८४।
५ रसिकप्रिया छं० स० ७ पृ० स० २२।

मिचावनी के ख्याल मे " नैसुक नवाइ ग्रीवा " इत्यादि के कारण पद्माकर की वाहवाही के " औचक अचूक " पुल बाध सकते है, पर रसिक रसाल में " आँखिन नाखि गुलाल " की सूझ विलक्षण है और नायक की तात्कालिक कृति का उदाहरण है, जिसमे उसे अपेक्षित समय प्राप्त हो जाता है। पद्माकरने आधे कवित्त मे उसकी भूमिका बाँधी है और कुमारमणि ने उसे दोहे के भीतर सुदर अनुपम ढग से कह डाला है। इसे हम भावापहरण कह सकते है।

कुछ पाठक इसे बलात्कार की धाधली कहकर पद्माकर के लिए न्याय माग सकते है, पर हम भी अपने कथन की पुष्टि करे बिना नही रह सकते। द्वितीय उदाहरण

' रसिक रसाल '

खौर को राग छुट्यौ कुच को मिटिगौ
अधरारस देख्यौ प्रकासहि,
अंजन गौ दृग कंजन ते तनु
कपत तैरो रुमच हुलासहि।
नैकु हितू जन को हित चीन्हों न,
कीन्ही अरी! मन मेरो निरासहि
बावरी! बावरी न्हान गयी कै
वहाँ न गई उहि पीव के पासहि ॥ प्रथम उल्लस ११ ॥

जगद्विनोद —

धोई गई केसरि कपोल कुछ गोलन की,
पीक-लाक अधर - अमोलनि लगाई है,
कहै ' पद्माकर ' त्यों नैनहू निरंजन मे
तजत न कप देह पुलकनि छाई है॥
बाद मति ठानै झूठवादिनि भई री अब,
दूतिपनो छोडि धूतपन में सुहाई है,
आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू
पापी लौं गयी न, कहुँ वापी न्हाई आयी है ॥ १२८ ॥

उक्त सवैया और कवित्त मे क्रमश अर्थ का मिलान करते करते अर्धांश तक भावानुवाद का परिज्ञान कर सकते है। आगे चलकर कुछ अभिप्राय बदल गया हे, पर अतिम चरणो में केवल शब्दों का हेरफेर ही रह जाता है। क्या यह भावापहरण नही है? जगद्विनोद के उक्त पद्य पर क्या रसिकरसाल के उक्त सवैया की छाया स्पष्ट नही झलकती? कौन

कुमारमणि और पद्माकर

कवि कुमारमणि के जीवन चरित्र में लिखा जा चुका है कि इनके शिष्य क्षेमनिधि ' थे जो कवि पद्माकर के पितृव्य थे, अत सभव है, पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट ने भी कुमारमणि के समीप हिंदी साहित्य शास्त्र का अध्ययन किया हो, और इसी कारण पद्माकर को भी कुमारमणि के निर्दिष्ट पथ का अनुगामी बनना पडा हो। जगद्विनोद और पद्माभरण की रचना के समय पद्माकर के ध्यान-पथ मे कुमारमणि का ' रसिक रसाल ' ग्रथ होगा, अथवा उन्होने उसकी अख्याति से लाभ उठाया होगा। ' रसिक रसाल ' काव्य प्रकाश का प्राय अनुवाद है। अत यह सभव है की पद्माकर का पाठ्यग्रंथ ही वह रहा हो, पर यह नि सदिग्ध ह की पद्माकर की कविता पर कुमारमणि के काव्य की छाया पडी है और अच्छी प्रकार पडी है- फिर चाहे वह इच्छाकृत हो या अनिच्छाकृत।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए थोडेसे उदाहरणो का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। पाठक देखे कि पद्माकरने कुमारमणि के काव्य का किस प्रकार अपहरण किया है -

' रसिक रसाल ' -

दोऊ ढिग है बाल इक आंखिन नॉखि गुलाल
अक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल ॥ पंचम उल्लास ६७ ॥

जगद्विनोद -

मूदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग
सुदृग मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै।

नेसुक नवाई ग्रीवा धन्य धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै चितै ॥ ७४ ॥

उक्त दोनो पद्य ' ज्येष्ठा कनिष्ठा ' नायिकाके उदाहरणस्वरूप है जिनमें कवियो ने अपने कल्पना-कौशल का परिचय दिया है। यद्यपि दोनो ने ज्येष्ठा कनिष्ठा के लक्षण पृथक् पृथक् लिखे है जो एक दूसरे से भिन्न ह, जिसकी गहराई मे हमें यहाँ उतरनेकी आवश्यकता नही है। हमें तो केवल यह कहना है कि पद्माकरने ही उक्त भाव में कुछ दूसरा चोला चढाकर भावापहरण किया है। पद्माकर के पक्षपाती कवि यद्यपि उनके ' मुदृग

पद्माकर के इस शब्द और भाव के अपहरण को कहाँ तक कोई छिपा सकता है ? नीचे के पद्य के शब्द उच्चैर्घोष से अपने स्थान का परिचय दे रहे है। कवि ने कुछ शब्दो मे परिवर्तन कर किस प्रकार 'रसिक-रसाल' के माल को उदरसात् कर लिया है। उक्त उदाहरण चित्र-दर्शन के है अत कहना पडेगा कि पद्माकर ने नि सकोच होकर इस सुदर भावपूर्ण 'कान्ह चित्र' को चुराया है—इसमे वह अपने लोभ का सवरण नही कर सके है।

प्रस्तुत भावापहरण प्रकरणमे एक उदाहरण दिया जा कर यह विषय समाप्त किया जाएगा।

रसिक रसाल

फूल बहार के भार भरी
इक डार है 'नंदकुमार नवाई। पचम उल्लास १८॥

जगद्विनोद —

निज निज मन के चुनि सबे फूल लेहु इक बार;
यहि कहि कान्ह कदब की हरबि हिलाई डार' ॥ २९० ॥

दिन दहाडे की इस चोरी के लिए और क्या प्रमाण चाहिए ? यह उदाहरण स्वय अपना प्रमाण है।

कदब की डाल पर चढकर अपनी प्रियतमाओ को पक्षपातहीन होकर प्रसन्न करने के लिए नायक की दक्षिणता की सुदर भावोत्पत्ति कुमारमणि के मस्तिष्क से ही हो सकती है,। उसे चुराकर पद्माकर ने अपने लिए धन्यवाद का गठ्ठर बाधा ह। पर है यह 'पराया माल' ही, आखिर बरामद हो ही गया है।

इन्ही कारणो से कहना पडता है कि पद्माकर ने कुमारमणि के सुदर भावो का अपहरण किया है और उससे ख्याति प्राप्त की है।

विज्ञजनो के सम्मुख कुछ शब्दापहरण के निदर्शन रखकर हम यह और बतलाना चाहते है कि पद्माकरने कुमारमणि के शब्दो को यथावत् अपने काव्य मे स्थान ही नही दिया है. प्रत्युत उनके द्वारा अपने छदो की पूर्ति भी की है। प्रथम एक उदाहरण अर्थापहरण का देना भी अप्रासगिक न होगा।

'रसिक रसाल' —

'रचि बनाउ जो प्रेमबस तिय पहुँचै पिय पास'
निज पास पिय को वुलावे सोऊ अभिसारिका कहत है।

'जगद्विनोद' —

'बोलि पठावै पियहि कै पिय पै आपुहि जाय ॥ २२७॥

इसे अस्वीकार कर सकता है? कहना पडेगा, पद्माकरने कुमारमणि की सूझ से काम लेकर अपना काम बनाया है।

हाँ स्मरण होता है, कई सहृदय व्यक्ति इसे अनुचित पक्षपात कह सकते है और तदर्थ एक सस्कृत का श्लोक उपस्थित कर मकते है, जिसके यह दोनो पद्य अनुवाद स्वरूप है वह श्लोक इस प्रकार है

नि शेषच्युतचन्दनं स्तनतट निर्मृष्टरागोऽधरो'
नेत्रे दूरमनञ्जन पुलकिता तन्वी तवेय तनु
मिथ्यावादिनि दूति बाधवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।

हमे इस कथन के मानने मे कोई विप्रतिपत्ति नही है और उसका कारण स्पष्ट है कि उक्त दोनो कवियो की यह सूझ मौलिक नही है। परतु कुमारमणि ने इस ध्वनि के उदाहरण में लिखा है– जैसा कि 'रसिक रसाल' के लिए काव्यप्रकाश का अनुवाद होने के कारण आवश्यक था पर पद्माकरने इसे 'अन्युसुरतिदुखिता' नायिका के उदाहरण मे लिखा है उसे 'रसिकरसाल' से लेकर परिवर्तित रूप मे ला रखा है।

पद्माकर का कवित्त यद्यपि श्लोक का पूरा अनुवाद कहा जा सकता है और इससे उनकी पीठ ठोकी जा सकती है, परतु हम यह निसकोच कह सकते है कि ध्वनिप्रकरण का उदाहरण होने से कुमारमणि का उक्त सवैया पद्माकर के कवित्त और मूल श्लोक दोनो से ही बढ चढ गया है। "मिथ्यावादिनि! दूति बाधवजनस्याज्ञात पीडागमे" इस वाक्य और उसके अनुवाद – "बाद मति ठानै झूठवादिनि भई री अब, दूतिपनो छोडि धूतपन मे सुहाई है" की अपेक्षा 'नैकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हौ अरी मन मेरो निसारहि' इस कुमारमणि के पद्याश मे कितनी मधुरता और ध्वनि है, जो काव्य को अतिशय चमत्कृत कर रही है। अस्तु। 'तुष्यतु' न्याय से इस विवाद को छोडकर भावापहरण के दो उदाहरण और उपस्थित किए जाते है जिसका अपलाप नही किया जा सकता है

रसिक रसाल:–

रूप सौं विचित्र कान्ह मित्र को विलोकि चित्र
चित्रित भई तू चित्र पूतरी सुभाई है" तृतीय उल्लास २१॥

जगद्विनोद –

"मोहन मित्र को चित्र लिखैं
भई चित्र ही सी तो विचित्र कहा है"॥ ३२७

'कछु परतीति' से लेकर 'वरनत' तक पद्यांश पद्माकर ने उडा लिया है। इस चोरी के समय उन्हे पुनरुक्ति का भी ध्यान नही रहा है-'नवोढा नारि' और 'नवोढ तिय' यह दोनो शब्द एक ही पद्य मे दो बार आगए है। इन प्रत्यक्ष उदाहरणो के सम्यगालोचन करने के बाद कौन साहित्यज्ञ समालोचक इससे नकार कर सकता है कि पद्माकर के काव्य पर कुमारमणि की छाया नही पडी है ?

Thourgh शृगारमजरी has not been mentioned by name in any of the Hindi works, from its treatment of the subject it is evident, that it did influence at least some of them, particularly रसिक-रसाल of कुमारमणि शास्त्री and रस-प्रबोध of रसलीन All this clearly shows that there has been a continuous flow of ideas, views and works among the authors, belonging to distant parts of this subcontinent and writing in different Languages.-

—डॉ. छैलबिहारी लाल गुप्त (डॉ राकेश गुप्त)

'रसिक रसाल' के उक्त पद्य और गद्य भाग को मिलाकर पद्माकर ने अपने दोहे का कलेवर बनाया है, जो छद के आवरण से आवृत होने पर भी वर्णसकरता को छिपा नही सका है। अस्तु।

अब शब्दापहरण की झाकी देखिये

नायक के उदाहरण मे पद्माकर का यह कवित्त प्रसिद्ध है –

ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार
नद को कन्हाई सो सुनद को कन्हाई है॥ जग० २८ ॥

क्या इस पद्य के 'ठाकुर' पद का अनुमान पाठक कर सकते है कि वह कहाँ का है ? क्या यह पद्माकर का मौलिक शब्द है ? नही! कुमारमणि 'रसिक रसाल मे नायक के उदाहरण मे ही इसे इस प्रकार लिख चुके है –

कुंवर कन्हैया लोक ठाकुर ठसक को॥ पचम उल्लास ९॥

'ठाकुर' ठसक के नगीने को चुराकर पद्माकरने अपने कवित्त के आभरण मे यद्यपि फिर बैठा दिया है और ठाकुर के शब्दालकारमे छिपाकर उसे अपनाने की कोशिश की है पर 'रसिक-रसाल' के अवलोकन से प्रकट हो जाता है कि यह 'ठाकुर ठसक' का सयोग कुमारमणि कृत है।

अब आगे चलकर एक दूसरा उदाहरण लीजिये –

'रसिक रसाल –

है उपमेय परसपरहि सोई है उनमान॥ अष्टम उल्लास १२॥

पद्माभरण –

'उपमेयोपम परसपर उपमेयहु उपमान'॥ २७॥

दोनो के परसपर पदो पर ध्यान देने से विदित हो जायगा कि 'रसिक रसाल' के लक्षण मे ही कुछ परिवर्तन न कर यह 'पद्माभरण' का उक्त लक्षण बना लिया गया है

एक अन्य उदाहरण दिया जाता है, जिसमे एक शब्द ही क्या दोहा का अर्धांश तक उडा लिया गया है –

'रसिक रसाल'

रतिरस सो पिय सग सो जाके कछु परतीति।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत कविता रीति॥ ५ उल्लास॥

जगद्विनोद –

पति की कुछ परतीति उर धरै नवोढा नारि
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत विबुध विचारि॥ ३८॥

कहे 'पद्माकर' सुमद चलि कच हू तें भूमि,
भ्रमि भाई सी भुजा में त्यो भभरिगो।
भाई सी भुजा तें भ्रमि आयो गोरी गोरी,
बाँह गोरी बाँह हूँ तें चपि चूरिन में अरिगो।
हेरे हेरे हरें हरि चूरिन तें चाहौं जो लौं,
तौ लौं मन मेरो दौरि हाथ तेरे परिगो।
(पद्माकर–जगद्विनोद)

इन दोनो छन्दो में मूलभाव एक ही है, पर उसकी अभिव्यक्ति में थोडा अन्तर है। दोनो मे ही नायिका के विभिन्न अगो में नायक के मन का लोट पोट होना दिखाया है। पहले वह अग अग से उलटता–पलटता हुवा अन्त मे कटि मे जाकर कट जाता है। दूसरे मे मस्तक से चलता है, और विभिन्न अगो पर फिसलता हुआ अन्त में नायिका के हाथ मे पड जाता है। इन छन्दो का, तथा इनसे ऊपर दिए छन्दो के मूल–भाव काफी प्रसिद्ध और पुराने है। देव से पूर्व भी अन्य कवियो ने इन दोनो को अभिव्यक्त किया है, अतएव यह निश्चयपूर्वक कहना तो कठिन है कि पद्माकर ने इन्हें देव से ग्रहण किया है–अथवा सीधा पूर्ववर्ती कवियो से परन्तु अभिव्यजनाओ के परीक्षण से इतना आभास अवश्य मिलता है कि उनकी दृष्टि से देव के दोनो छन्द जरूर गुजरे होगे।

भावो के प्रभाव की अपेक्षा कुछ विशेष पक्तियो की प्रतिध्वनियाँ अधिक स्पष्ट है। उदाहरण के लिए:

देव– मोहि नोहि मोहन को मन भयो राधामय
राधामन नोहि मोहि मोहन मई भई।

पद्माकर–मोहनी को मन मोहन में बस्यो
मोहन को मन मोहनो मांही।
राधामयी भई स्याम की सूरत श्याममयी भयी राधिका डोलै।
(ज० वि०)

देव–पूरन प्रीति हिये हिरकी खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी-सी।
पद्माकर–झाँकती है खिरकी मैं फिरै
थिरकी थिरकी खिरकी खिरकी मैं।
(ज० वि०)

देव झूठी झलमल की झलक ही मैं झूल्यो,
जलमल की पखाल, खल, खाली खाल पालो तै।
पद्माकर–रीती राम नामसे रही जो बिन कामतो,
या खारिज खराब हाल खाल की खलीती है। (प्र प, २७)

देव और पद्माकर

पद्माकर पर देव का प्रभाव अत्यन्त सीमित है। पद्माकर ने सर्वथा स्वतंत्र रूप से भाषा और छन्द-शैली का विकास किया है। और वास्तव मे पद्माकरी भाषा तथा पद्माकरी छन्द-प्रवाह का ब्रजभाषा मे एक पृथक् ही अस्तित्व है जिस पर देव या किसी भी पूर्ववर्ती कवि की छाप नही है। बस उनके दो-एक ही छन्द ऐसे है जिन पर देव के भावो की छाया है, इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी पक्तियाँ मिल जाती है, जिनमे देव की कुछ पक्तियो की प्रतिध्वनि है।

सोन सरोज कलीन के खोज उरोजन को उरबो जु निहारो।
'देव जू' बाढ़त ओप घरी पल त्योहि नितम्ब भयो कछु भारो।
कानन की ढिग व्है दृग दौरत चातुरी चाउ चवाउ पसारो।
दाब्यो दुहूँन दुहूँ दिशि ते भयो दूबरो सो दबि लक बिचारो।

(देव)

ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढी कछु माधुरई-सी।
ज्यो पद्माकर माधुरी त्यौं कुच दोउन की चढती उनई-सी।
ज्यो कुच त्योहि नितम्ब चढे कछ ज्यौंहि नितम्ब त्यो चातुरई-सी।
जानी न ऐसी चढ़ाचढि में किहि धौं कटि बीच ही लूटि लई-सी॥

(पद्माकर—जगद्विनोद)

चरननि-चूमि, छ्वै छवानि व्है चकित 'देव,'
झूमि कै दुकूलन न घूमि कर घटि गयो।
कोरे कर-कमल करेरे कुच-कंदुकनि,
खेलि खेलि कोमल कपोलननि पटि गयो।
ऐसो मन मचलो अचल अग अग पर
लालच के काज लोक लाजहि ते हटि गयो।
लट मे लटकि लोइननि में उलटि करि
त्रिबली पलटि कटि-तटी माँहि कटि गयो।

(देव)

ईश की दुहाई शीशफूल तें लटकि,
लट—लर तें लटकि, लर कंध पै ठहरिगो।

—सामग्री का प्रश्न है, उसकी दृष्टि से अवश्य ही कति-पय स्थलो पर हमारे आलोच्य कवि के ऋणी रहे हैं। तुलना के लिए देखिए —

(१) जोबन मदगज मदगति चली बाल पिय गेह।
पगनि लाज आँदू परी चढ्यो महावत नेह ॥ १६६ ॥
मतिराम रसराज

हूल इते पर मैन महावत लाज के आँदू परे गथि पाइन।
त्यो 'पद्माकर' कौन कहै गति याते मतगन की दुखदाइन।
ये अँग-अग की रोसनी में सुभ सोसनी चीर चुभ्यो चित चाइन।
जाति चली ब्रज ठाकुर पै ठमका ठुमकी ठमकी ठकुराइन ॥ २३०
(पद्माकर 'जगद्विनोद')

(२) गुच्छनि के अवतस लसै सिर पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव सौं 'मतिराम' सुहायो॥
गुजनि के उर मंजुल हार सुकुजनि तै कढि बाहिर आयो।
आज कौ रूप लखे नँदलाल को आजुहि नैननि को फल पायो ॥२३८॥
(मतिराम रसराज)

आई भले हौं चली सखियान मैं पाई गोविन्द के रूप की झाँकी।
त्यों 'पद्माकर' हार दियो गृह काज कहा अरु लाज कहाँ की॥
है नख ते सिख लौं मृदु माधुरी बाँकीयै भौहैं बिलोकनि बाँकी।
आज की या छबि देखि भटू अब देखिबे को न रह्यो कछु बाकी ॥३३१॥
(पद्माकर वही 'जगद्विनोद'

(३) मोतिन को मेरो तोर्‌यो हरा गहि हाथन सौ रहे चूनरी पोढे।
ऐसे ही डोलत छैल भए तुम्हे लाज न आवत कामरीं ओढे॥
(मतिराम रसराज)

फाग यो लाडिली को तिहि मैं तुम्हे लाज न लागति गोप कहूँ के।
छैल भए छतियाँ छिरको फिरो कामरी ओढे गुलाल के ढूके ॥४५१॥
(पद्माकर वही 'जगद्विनोद')

यहाँ छन्दो से स्पष्ट ही है कि पद्माकर ने मतिराम से भाव और प्रसग-दोनो ही ग्रहण किये हैं। इसी प्रकार —

(१) साँझ समै ललना मिलि आई खरो जहाँ नद लला अलबेलो।
खेलन को निसि चाँदनी माँहि बनै न मतो 'मतिराम' सुहेलो॥

पद्माकर और मतिराम

कविवर पद्माकर ने अपने सरस छन्दो के कारण उतनी ही लोकप्रियता प्राप्त की थी, जितनी कि महाकवि मतिराम को मिली थी। मतिराम की कविताओ के पश्चात् मर्मस्पर्शी एव हृदयहारी भावो के लिए यदि किसी सरस कवि का नाम लिया जा सकता है, तो भाग्यशाली कवि पद्माकर ही है। ये मूलतः कवि थे, आचार्य नही। किन्तु समय प्रवाह मे आकर इन्होने भी अपनी उत्तम रचनाओको लक्षणानुकूल बनानेका प्रयत्न किया है। नायिका-भेद सम्बन्धी इनकी रचना 'जगद्विनोद' है, जो नायिका भेद ग्रन्थो मे 'रसराज' की भाँति ही प्रसिद्ध है। रसराज द्वारा स्थापित नायिका-भेद की परम्परा का सर्वोत्तम उदाहरण यदि हम किसी को मान सकते है तो वह पद्माकर का जगद्विनोद ही है। मतिराम की सी भाँति इन्होने आरम्भ मे नायिका का लक्षण दिया है जो उनके लक्षण का ही भावानुवाद जान पडता है।[1] नायिका भेद का वर्णन क्रम भी पद्माकर ने मतिराम जैसा ही रखा है।

जगद्विनोद मे कुछ बाते ऐसी पायी जाती है जिनका उल्लेख रसराज मे नही मिलता। मतिराम ने प्रौढा नायिका का एक भी भेद नही माना है, किन्तु जगद्विनोद मे उसके रतिप्रीता और आनन्द समोहिता नामक दो भेद लिखे गए है। प्रौढा के इन दो भेदो का कथन कई प्रमुख कवियो ने किया है। नायिका-भेद समाप्त कर लेने के पश्चात् रसराज की भाँति ही इन्होने नायक का भेद-वर्णन किया है और तत्पश्चात् भाव, अनुभाव तथा सचारियो का सुन्दर वर्णन किया है। सखी, दूती आदि उद्दीपनो का वैसा ही सुन्दर वर्णन है, जैसा 'रसराज' में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त जगद्विनोद मे किया गया ऋतुओ का अनूठा वर्णन रसराज मे नही मिलता। पद्माकर की यह अपनी विशेपता थी कि उन्होने दूसरो के भावो को सरलतम, सुन्दर एव नवीन स्वरूप प्रदान किया है, जगद्विनोद जिसका ज्वलन्त उदाहरण है।

मतिराम और पद्माकर –

दास के पश्चात् रीतिकाल के अन्तिम प्रसिद्ध कवि पद्माकर आते है। इनकी भाषा–शैली और छन्द–योजना सर्वथा मौलिक थी–किसी पूर्ववर्ती कवि का अनुकरण नही, अतएव भाषा–शैली अथवा अभिव्यजना की दृष्टि से इनके ऊपर मतिराम का प्रभाव देखना समीचीन न होगा। जहाँ तक भाव

हॉ, पद्माकर के साथ अवश्य ही व्रजभाषा के कलात्मक प्रयोग की दृष्टि से तुलना की जा सकती है, कारण दोनो का वर्ण्य विषय शृगार ही है। किन्तु यहॉ यह कह देना असगत न होगा कि पद्माकर की कविता मे कल्पना की उडान तथा भावना का आवेग मतिराम की अपेक्षा अधिक है। और यही कारण कि इन दोनो कवियो के भाषा प्रयोग में पर्याप्त अन्तर होगया है। मतिराम जहॉ अपनी रचनाओ मे मधुर सगीत की सृष्टि करते ह, वह पद्माकर की भाषा मे नाद-सौन्दर्य मिलता है। दूसरे शब्दो मे मतिराम के काव्य मे 'स्वर-सगति' अधिक है, तो पद्माकर के व्यजनोके सघात द्वारा ' मृदग घोप उत्पन्न किया है। वस्तुत यदि एक मे वीचि-विलास है तो दूसरे मे गम्भीर घोष करने वाला नाद- प्रवाह। 'पदमाकर मेरा प्रिय कवि है। उसमें देव की सी गभीरता न हो, किन्तु प्रवाह अपूर्व है। बिहारी जैसी काट छॉट न हो, किन्तु एक विशेष प्रकार की सादगी और सजावट उसीके वॉटे पडी है। उसमे मतिराम के समान योग्यता न हो, किन्तु स्फूर्त्ति उसीमे है। जितने शब्दचित्र पद्माकरजीने खीचे है, उतने अन्य कवियो ने कदाचित् ही खीचे हो।

मैथिलीशरण गुप्त

मतिराम चटुल वीचियो मे क्रीडा करनेवाले स्वच्छ सरोवर है तो देव गहन गभीर वाणी। यह गभीरता आपको पदमाकर में मिलेगी। पद्माकर के भावो मे गाढा रसपरिपाक और उनकी भाषा मे तरगायित नाद प्रभाव है।

– डॉ नगेन्द्र

आपनि-आपनि पौरि बताय कै बोलि कह्यौ सिगरीन नवेलो।
त्यों हँसिकै ब्रजराज कह्यौ सब आज हमारिहि पौरि में खेलो ॥२४८॥
(मतिराम रसराज)

देखि 'पद्माकर' गोविंद को आनंद भरी
आई सजि साँझ ही तें हरषि हिलोरे में।
ए हरि हमारे ई हमारे चलो झूलन कों
हेम के हिंडोरन झुलान के झकोरे में ॥
या विधि बधून के सुबैन सुनि बनमाली
मृदु मुसुक्याइ कह्यौ नेह के निहोरे में।
कालिह चलि भूलैंगे तिहारेई तिहारी सौंह
आज तुम झूलो ह्याँ हमारेई हिंडोरे में ॥२२६॥
(पद्माकर वही 'जगद्विनोद')

(२) मो तें तो कछु न अपराध पर्‌यो प्रान प्यारी
मान करि रही यौं ही काहे को अरस तें।
लोचन चकोर मेरे सीतल है होत तेरे
अरुन कपोल मुख चंद के दरस तें ॥
कहै 'मतिराम' उठि लागु उर मेरे किन
करत कठोर मन अँसुवा बरस तें।
कोप तें कटुक बोल बोलते तऊ मोकौं
मीठे होत अधर सुधारस परस तें ॥ २५१ ॥

पियत रहै अधरान को रस अति मधुर अमोल।
ताते मीठे कढ़त है बाल बदन तें बोल ॥ २५२ ॥
(मतिराम रसराज)

करि कंद को मंद दुचंद भई फिरि दाखन के उर दागती है।
'पद्माकर' स्वादु सुधा तें सिरैं मधु तें महा माधुरी जागती है ॥
गनती कहा एरी अनारन को ये अँगूरन ते अति पागती है।
तु बातें निसोठी कहौं रिस में मिसिरी से मिठी हमें लागती है॥२६५॥
(पद्माकर वही 'जगद्विनोद'

यहाँ पर प्रसंग-योजना में थोड़ा-सा अन्तर है, पर भाव दोनो ही कवियो के एक जैसे है।

पद्य-अनुक्रमणिका

पंक्ति के आगे जहाँ संदर्भ नहीं है वे पद्य जगद्विनोद में से हैं

ख

— औ —

— क —

– फ –

– ब –

ग्रन्थकार नाम-सूची

कवि नाम-सूची

बुन्देलखडका इतिहास. गोरेलाल तिवारी
भानु अभिनन्दन ग्रन्थ
होलकर रियासत
Datia Gazetteer .
Sauegor Gazetteer
Brown M. H. Gwalior Today
Grant Duff History of Marathas
Philip Francis Speach on Indian affairs
Poona Residency Correspondence
Todd Rajasthan
Jindal K B A History of Hindi Literature
Keay F E. Hindi Literature,
Lala Sitaram A brief History of Hindi Literature,

हस्तलिखित ग्रथ-सूची

अनूप प्रकाश — मानकवि
कवि कल्लोल नाटक — विद्याधर कवि
केसर सभा विनोद — गदाधर कवि
गंगालहरी — पद्माकर कवि

शोध ग्रंथ

डॉ रेवतीसिह यादव – कवि पद्माकर आलोचनात्मक अध्ययन
(आगरा विश्व विद्यालय) १९५९

डॉ ब्रजनारायण सिह – पद्माकर और उनके समसामयिक कवि
(लखनऊ विश्वविद्यालय) १९५९

डॉ भारतेदु सिन्हा – पद्माकर का काव्य
(नागपुर विश्वविद्यालय) १९६७

शोध कार्य

अलकार साहित्य: भामह से पद्माकर तक – (मगध विश्वविद्यालय)
पद्माकर के काव्यग्रन्थो का मूल्याकन सौ सुषमा शर्मा
(मराठवाडा विश्व विद्यालय)

प्रकाशित ग्रंथ

१ पद्माकर ग्रथावली आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
काशी नागरी प्रचारिणी सभा
२ पद्माकर की काव्य साधना अखौरी गगाप्रसाद सिह, साहित्य सेवासदन, काशी
३ पद्माकर कवि- श्री शुकदेव दुबे साहित्यभवन, प्रयाग
४ पद्माकर व्यक्ति, काव्य और युग –श्री उमाशकर शुक्ल,
५ कवि पद्माकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी अभिनव साहित्य प्रकाशन सागर
६ पद्माकर–श्री डॉ भालचन्द्रराव तेलग, सुषभानिकुज, बेगमपुरा औरगाबाद

घरूवार्त्ता	गोकुलनाथ महाराज
छन्दो मजरी	गदाधर कवि
जगद्विनोद	पद्माकर कवि
तेंदुवारी युद्ध	पद्माकर कवि
प्रतापसिंह विरुदावली	पद्माकर कवि
प्रबोध पचासा	पद्माकर कवि
पद्माभरण	पद्माकर कवि
यमुना लहरी	पद्माकर कवि
राम रसायन	पद्माकर कवि
हिम्मत बहादुर विरुदावली	पद्माकर कवि
राज्यकल्पद्रुम	परमानद कवि

मासिक--पत्र--पत्रिकाऐं

उत्थान, रायपुर
कर्मवीर, खडवा
काव्य कलाधर
चाँद इलाहाबाद
छत्तीसगढ मित्र, रायपुर
जागृति, कलकत्ता
देवनागर, कलकत्ता
प्रेमा, जबलपुर
मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन विवरणिका जबलपुर
मधुकर, टीकमगढ
मनोरमा
माधुरी, लखनऊ
राजस्थान, भारती
विश्वम्भरा
विशाल भारत, कलकत्ता
सरस्वती, प्रयाग
सुधा, लखनऊ
हितकारिणी, जबलपुर